Regd. No. 2607/1-V8522 **ISSN: 0970-1745**

Shodh

[A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities]

Vol. XVI [Issue No. 1, 2 & 3 combined] Jan.– Dec. 2019

Chief Editor

Dr. Surendra Pandey

Editors

Dr. Vikash Kumar

Dr. Shailendra Kumar

Published by
History & Historical Writing Association, U.P., Varanasi (INDIA)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari, Varanasi
Mob. 9451173404, Email:

Note: The responsibility of the facts given and opinions expressed in articles of journal is solely that of individual author and not to the publisher.

First Issue Publication 1984

Chief Editor :
Dr. Surendra Pandey
C-2, Satendra Kumar Gupta Nagar,
Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

Editor
(i) Dr. Vikash Kumar
Civil Line, Takiya Road,
Sasaram, Rohtas, Bihar

(ii) Dr. Shailendra Kumar
Assistant Professor,
Department of Management
Sikkim University, Sikkim

Executive-Editor
Dr. Santosh Bahadur Singh
Assistant Professor
Department of English
Lady Irwin College, University of Delhi

Co-Editor
Dr. Ripunjay Kumar Singh
Assistant Professor, Hindi,
S.N.R.K.S. College, Saharsa (Bihar)

Sub-Editor
Dr. Abhay Kumar
Assistant Professor, Dept. of Hindi,
Deshbandhu College, Delhi University

Shodh

......A Triannual Bilingual Refereed Research Journals of Arts & Humanities

Patrons

Dr. Jai Ram Singh

Principal Degree College, Palahipatti, Varanasi

Editorial Board

1. **Prof. Hirocko Nagasaki**, Osaka University, Japan.
2. **Prof. Ashok Singh,** Department of Hindi, Banaras Hindu University.
3. **Prof. Ravindra Nath Singh,** AIHC Department, Banaras Hindu University.
4. **Prof. Rangnath Pathak,** Department of Hindi, Banaras Hindu University.
5. **Prof. Chandrakala Tripathi,** Department of Hindi, Banaras Hindu University.
6. **Prof. Anita Singh,** Department of English, Banaras Hindu University.
7. **Prof. Abha Singh,** Pro Vice Chancellor, B.N. Mandal University, Bihar.
8. **Prof. Yogesh Kumar Sharma,** Department of English, Swami Shraddhanand College, University of Delhi.
9. **Prof. Sanghmitra,** Department of Political Science, Bodoland University, Assam.
10. **Dr. Nirmla Kumari,** Associate Professor, Hindi Department, Shri Varshney College, Aligarh.
11. **Dr. O.P. Singh,** Harishchandra P.G. College, Varanasi.
12. **Santosh Patel,** President Bhojpuri, Jan Jagaran Abhiyan, New Delhi.
13. **Dr. Ratnesh Tripathi,** Assistant Professor, Department of History, Satyawati College, University of Delhi.
14. **Dr. Vikash Kumar Singh,** Assistant Professor, AIHC Department, Banaras Hindu University.
15. **Dr. Varsha Singh,** Assistant Professor, English Department, Deshbandhu College, Delhi (DU).
16. **Vijay Kumar,** Assistant Professor, Department of English, Satyawati College, University of Delhi.
17. **Dr. Bhartendu Kumar Pathak,** Assistant Professor, Department of Hindi, Kashmir University, Shrinagar (J&K).
18. **Dr. Priyadarshini,** Assistant Professor, Department of Hindi, The English Foreign Languages University, Haiderabad, Telangana.

Content

1.	प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर तक भूगोल शिक्षण –उभरते प्रश्न **डा0 राजीव कुमार**	7-13
2.	विश्व भाषा, विश्व साहित्य और पहचान : परिप्रेक्ष्य में हिंदी **डॉ. ऋचा द्विवेदी**	14-17
3.	गुरु गोविन्द सिंह का शांतिप्रिय सिक्खों का खालसा में परिवर्तन **डॉ. शलभ चिकारा**	18-21
4.	'भरत मुनि का रस सम्बन्धी विवेचन' **डॉ0 श्याम मनोहर पाण्डेय**	22-24
5.	महात्मा गांधी जी के तत्कालीन विश्व राजनीति पर विचार **डॉ. विवेक सेंगर**	25-27
6.	1857- Declaration of First Conflict of Indian Independence **Pritam Kumar**	28-31
7.	रवीन्द्र कालिया के 'सिर्फ एक दिन' कहानी संग्रह का विवेचनात्मक अध्ययन **डॉ0 रिपुंजय कुमार सिंह**	32-34
8.	अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य एवं कार्य तथा भारत को इससे क्या सहायता मिली है **डॉ0 विमलांशु शेखर पाठक**	35-37
9.	अवध क्षेत्र के भौगोलिक पृष्ठभूमि पर अवधी भाषा का प्रभाव **डॉ0 कौशल किशोर मिश्र**	38-40

10.	श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का यथार्थ चित्रण **डॉ. अरुण कुमार मिश्र**	41-50
11.	73वें संविधान संशोधन अधिनियम का पंचायती राज संस्थाओं पर प्रभाव **डॉ0 मु0 इकबाल खाँ**	51-54
12.	वर्तमान समय में संघृत/सतत् विकास की अवधारणा की आवश्यकता **डॉ0 राजीव कुमार**	55-59
13.	श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगः **श्रीदिनेश्वर मिश्रः**	60-63
14.	मन्नू भंडारी के 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास की संवेदना **अपराजिता मिश्रा**	64-69
15.	सैयद सालार मसूद गाजी **डॉ. मोहम्मद आदिल**	70-80
16.	लोक साहित्य एक परिचय **डॉ0 विकास कुमार**	81-85
17.	महिला सशक्तिकरण एवं कामकाजी महिलाएँ **डॉ0 अर्चना गोस्वामी**	86-89
18.	Universal Declaration of Human Rights: An Analytical study **Dr. Neeru Varshney**	90-94
19.	रीतिकालीन काव्य में देश–भक्ति **डॉ0 भारतेंदु कुमार पाठक**	95-96

20.	नयी कविता : काव्य और अभिप्राय **डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय**	97-100
21.	Merger and acquisition of TATA Motor Co. Ltd **Sudhir Kumar Sah**	101-104
22.	ममता कालिया की कहानियों में स्त्री की पारिवारिक स्थिति (सन्दर्भ : चयनित कहानियाँ) **लक्ष्मी कुमारी**	105-109
23.	भारत में कुपोषण के शिकार बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन **वैदेही कुमारी**	110-113
24.	बच्चों को बीमारियों से बचाने का सबसे सरल माध्यम है "टीकाकरण" **पूर्णिमा कुमारी एवं डॉ0 सत्य रतन प्रसाद सिंह**	114-118

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर तक भूगोल शिक्षण –उभरते प्रश्न

डा0 राजीव कुमार
एसो0 प्रोफेसर भूगोल विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

भूगोल का अध्यापन कार्य प्राथमिक स्तर से किया जाता है। यह विषय उत्तर प्रदेश में प्राथमिक स्तर पर कक्षा 3 से ही पढ़ाया जाता है। प्रश्न यह है कि इतनी छोटी कक्षाओं से भूगोल का ज्ञान क्यों दिया जाता है? इसका क्या उद्देश्य है यह जानना भी अति आवश्यक हो जाता है। अमेरिकी इतिहास सभा (1934) में इसी समस्या परविचार किया गया और विद्यालयों में सामाजिक विषय के अन्तर्गत भूगोल की पढाने की शिफारिस की गयी। इस सभा का मत था कि निकटतम मानवीय सम्बन्धों को समझाकर बालकों को विश्व की समस्त मानव जाति के प्रति सहानुभूति पूर्ण जानकारी दी जा सके। 1968 में अखिल विश्व भूगोल काँग्रेस नई दिल्ली में भी ''मानव कल्याण और भूगोल ' पर विचार किया गया और शिक्षा में भूगोल के महत्व को स्वीकार किया गया।

<u>भूगोल के अध्यापन का उद्देश्यः</u>

भूगोल का ज्ञान बच्चों को अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक करता है जलवायु और मौसम, वनस्पति, स्थालाकृतियों के अतिरिक्त प्रकृति से मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है और अपने जीवन को आरामदेय बनाता है, यह सभी बातें बच्चों को आसानी से प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर आसानी से समझ आ जाती हैं।

भूगोल के द्वारा बचपन से ही दूर स्थित देशों के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है तथा यह ज्ञात हो जाता है कि वहां का मानवीय जीवन हमारे समान है अथवा भिन्न है । उसका वहॉ के पर्यावरण से क्या सम्बन्ध हैं पृथ्वी के वारे में आवश्यक तथ्य जैसे –पहाड, पठार मैदानों के अतिरिक्त ध्रुवीय प्रदेशों में हिम से ढके प्रदेश, रेगिस्तानों में हवा से वनी स्थलाकृतियाँ, नदी एवं हिम नद से वनी स्थलाकृतियॉ वन्य जीव जन्तु, ज्वालामुखी आदि महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।

बच्चों मेंभूगोल की प्रारम्भिक शिक्षा से ही एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता है। प्रकृति को समझने की क्षमता तथा प्रकृति के साथ रोमांचक रहस्यों को तार्किक ढंग से समझने की सुविधा मिलती है। यह शिक्षा बच्चों एवं बडों में मानसिक क्षमता को विकसित करने सहायता प्रदान करती है। प्राकृतिक घटनाओं के बीच जो सम्बन्ध है जैसे – विशेष जलवायु में विशेष वनस्पति एवं फसलों का उगना, अधिक सूर्यताप मिलने से उस क्षेत्र में अधिक तापमान का मिलना प्रचलित हवाओं का वर्षा से सम्बन्ध, समुद्र से दूर स्थित स्थानें में जलवायु परिवर्तन का अध्ययन, जलवायु –कृषि फसलों का सम्बन्ध, भोजन, पहनावा आदि के वारे में जानकारी प्राप्त होती है। प्रकृति के साथ मानव का क्या सम्बन्ध बनता है इसकी जानकारी व समझ भूगोल विषय के द्वारा ही सम्भव हो पाती है। इस प्रकार से भूगोल मानव जीवन के जीवकोपार्जन, समय का सदुप्रयोग मनुष्य के सांस्कृतिक विकास में योगदान, सकीर्णता को समाप्त करने तथा मानव कल्याण के सही मार्ग दर्शक को बढाने में अपना योगदान देता है। इसके अतिरिक्त भूगोल, कला और विज्ञान के विषयों में समन्वित अध्ययन, उद्योग एवं व्यापार आदि से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर भी भूगोल के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है अमेरिकन विद्वान फ्लूवर ने भूगोल के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ''दुनिया के लोगों को भूगोल परस्पर अच्छी आशा जनक दिशा निर्दिष्ट करता है।

भूगोल अध्ययन का इतिहास विषय से सम्बन्ध

भूगोल के अध्ययन से इतिहास को समझने में आसानी हो जाती है। ऐतिहासिक काल में भूमि उपयोग का बदलाव, आर्थिक विकास के विभिन्न पक्ष, भूगभिर्क परिवर्तन का मानव जीवन पर प्रभाव की समझ भी भौगोलिक पृष्ठभूमि का ज्ञान होने से इतिहास को समझने में आसानी होती है।

भौगोलिक ज्ञान से प्राकृतिक सम्पदा की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। स्थानीय एवं तात्कालिक समस्याओं के एक समग्र दृष्टि का भी विकास होता है जिससे बच्चे भूगोल विषय की समस्याओं को समझ पाते हैं तथा अर्न्तराष्ट्रीय परिदृश्य को देख पाते हैं। जो उनके प्रभावशाली नागरिक बनने में सहायक होती है।

भूगोल अध्ययन से उभरते प्रश्न

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के स्कूलों में भूगोल के महत्व भूगोल को पढाने उद्देश्य से हमारे सामने कई प्रश्न उठते हैं।

1. स्कूल का पाठ्यक्रम क्या हो? वर्तमान पाठ्यक्रम क्या उद्देश्य की पूर्ति करता है।
2. अन्य विषयों की भांति भूगोल का ज्ञान भी अनन्त है। हम बच्चों के लिए उसमें से क्या चुनें? जो रोचक के साथ–साथ ज्ञानबर्द्धक और दैनिक जीवन में काम में आयें।
3. पृथ्वी के अध्ययन से वैज्ञानिकों ने प्रकृति के सिद्धान्तों को समझा है जैसे–ऋतु परिवर्तन, अक्षांस देशान्तर रेखाओं का विभाजननियतवादी हवाऐं, जल धाराओं के बहने के सिद्धान्त, स्थालाकृतियों का बनना आदि। बच्चों को किस उम्र में किस कक्षा में सिद्धान्त समझाऐं जाय, जो बच्चों के लिए रोचक हो, तथा उनकी समझ से परे न हो । वह बच्चे के लिए केवल शुष्क ज्ञान तो नहीं अथवा उन्हें विश्व के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान कराया जाए और उनमें सिद्धान्तों को जानने के लिए पृष्ठभूमि तैयार की जाय तथा उच्च प्राथमिक कक्षाओं के वाद सिद्धान्त बताऐं जाय जैसे विभिन्न भागों की जलवायु ऋतुऐं आदि के बारे में समझाया जाये जिससे यह चेतना वने कि सभी जगह की जलवायु भिन्न है। बच्चों में उत्सुकता रहे कि ऐसा क्यों है?
4. पाठ्यक्रम तय करते समय यह ध्यान आवश्यक है कि बच्चों के मस्तिष्क एवं उनकी ग्रहण क्षमता का विकास क्रमशः धीरे–धीरे होता है कौनसी अवधारणा बच्चे किस कक्षा में समझ सकेंगे। भूगोल विदों के लिए यह शोध का विषय है।

इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा भूगोल का पाठ्क्रम तैयार किया (1) कक्षा–4 (वर्ष–8–10) वर्ष इस कक्षा में परिवार (संयुक्त एवं एकाकी परिवार), स्थानीय पेशे से जुडे व्यक्ति एवं व्यवसाय, स्थानीय मेला, हमारा भोजन, परिवेशीय जीवजन्तु, आवास, पेड पौधे, तथा उनकी देखभाल, जल, यातायात के अतिरिक्त हमारा प्रदेश व हमारा शासन आदि को शामिल किया गया है उक्त पाठ्यक्रम को रोचक कहानियों के माध्यम से बताने का प्रयास को शामिल नहीं किया है जो वर्तमान समय के नितान्त आवश्यक है । यहॉ पर्यावरण के सन्दर्भ में जानकारी को शामिल नहीं किया गया है जे वर्तमान समय के पाठ्यक्रम में बहुत जरूरी अंग है।

(II) **कक्षा 5 व 6 (वर्ष 11–12)** इस कक्षा में सौरमण्डल में पृथ्वी, पृथ्वी पर स्थानों का निर्धारण, पृथ्वी की गतियां दैनिक एवं वार्षिक गति पृथ्वी के चार परिमण्डल, विश्व में भारत, भारत का भौतिक स्वरूप जलवायु, मृदा वनस्पति वन्यजीव आदि के बारे में तथा भरत में उ0प्र0 का स्थान प्राकृतिक स्वरूप जलवायु मिट्टी, वनस्पति आदि का अध्ययन कराया जाता है।

इस सन्दर्भ में मेरा मत है कि कक्षा–6 के विद्यार्थियों के लिए पृथ्वी की परिक्रमा का मानसिक ग्राह्य बहुत कठिन होता है । क्योंकि वे प्रत्यक्षतः सूर्य और चन्द्रमा को घूमता हुआ देखते है पृथ्वी की गति को महसूस नहीं करते हैं। उनको यदि रात में विभिन्न ग्रहों को दिखाऐ जाय तो उनके लिए तारों व ग्रह में अंतर करना कठिन है। वे प्रत्यक्षतः जो देखते हैं वही उनके लिए सत्यता है। ब्रह्माण्ड को उसके वास्तविक रूप में समझने की यह उम्र नहीं है।यदि

ग्रहों को दूरवीन द्वारा दिखाया जाय तो अलग बात है किन्तु यह सुविधा स्कूल में संसाधनों के अभाव के कारण नहीं है ।

(III) **कक्षा 7 (उम्र–12–13 वर्ष)** इस कक्षा में हम स्थल मण्डल के अन्तर्गत पृथ्वी की आन्तरिक संरचना, पृथ्वी के प्रमुख स्थलरूप, धरातल के रूप बदलने वाले आंतरिक कारक–आन्तरिक बल, प्लेट संचलन, वलन, भ्रँशन, भ्रंश घाटी वलित पर्वत ज्वालामुखी, भूकम्प तथा बाह्य कारकों के अन्तर्गत अपक्षय, अपरदन, निक्षेपण, प्रवाहित जल, भूमिगत जल, पवन, समुद्री लहरें एवं हिमानी द्वारा निर्मित स्थलाकृतियॉ, वायुमण्डल संघटन व संरचना, वायुदाव, तापमान, वर्षा आर्द्धता एवं पवनों के प्रकार, वायुदाव पेटिया, चक्रवात एवं प्रतिचक्रवात जल मण्डल–जलराशियों का विवरण, महासागरीय तरंगों, धारायें एवं उनका तटवर्ती क्षेत्रों पर प्रभाव, ज्वारभाटा, सुनामी विश्व के प्राकृतिक प्रदेश भूमध्यसागरीय प्रदेश, सवाना मरूस्थलीय प्रदेश तथा टैंगा प्रदेश के वारे में अध्ययन आदि पाठ्यक्रम में शामिल है। यदि हम स्थल मण्डल की बात करें तो धरातल के बदलने वाले आन्तरिक बल प्लेट संचलन भ्रंशन, वलित पर्वत को बच्चों को समझाना उनकी मानसिक क्षमता के अधिक कार्य हैं। इसी प्रकार से जल मण्डल के अन्तर्गत विश्व की जल धाराओं के नाम उनके वहने के क्षेत्र आदि को रटा देते हैं। उत्तर प्रदेश के कुछ बच्चे ही दूरदर्शन के माध्यम से कभी–कभी महासागर को क्षणिक रूप से देख पाते हैं किन्तु उनकी समझ में नहीं आता है। विश्व के प्राकृतिक प्रदेश के अन्तर्गत भूमध्यसागरीय प्रदेश, सवाना, मरूस्थलीय तथा टेगा प्रदेश का अध्ययन कराया जाना क्या ठीक है? बच्चों के पाठ्क्रम में यह परखना होगा कि (I) बच्चे की रूचि (II) बच्चों के मानसिक विकास की अवस्था तथा (III) पृथ्वी का ज्ञान जो विभिन्न उम्र के बच्चों के लिए पर्याप्त व रोचक हो।

पाठयक्रम से सम्बन्धित उभरते प्रश्न :

बच्चों की पढाई से उत्पन्न समस्याओं के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उठते हैं –

1. क्रमवद्धव्यवस्थित भूगोल और प्रादेशिक भूगोल का कौन सा भाग किस कक्षा में पढाया जाये? क्या यह आवश्यक है कि कक्षा 8 तक विश्व के सभी देशों का संक्षिप्त परिचय कराया जाय? यदि ऐसा किया जाता है तो क्या बच्चे इस संक्षिप्त ज्ञान को आत्मसात कर पायेंगे? केवल रटने की विद्या, विना समझे परीक्षा तो वह पास कर सकते हैं किन्तु वह वास्तविक ज्ञान ग्रहण नहीं कर सकते हैं क्या वह यह समझ सकेंगे कि ब्रिटेन ने अपनी समुद्री स्थति का लाभ उठाकर अपने देश का विकास किया है अथवा जर्मनी को विकास का इतिहास वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों के कारण से सम्भव हो पाया है ।
2. यदि हम यह मान ले कि बच्चो को अज्ञान में ज्ञान की ओर ले जाने के लिए यह आवश्यक है कि छोटी ईकाईयों से वडी इकाई की ओर बढ़ना चाहिए तथा यथार्थ से सूक्ष्म को समझना चाहिए। जिले से प्रदेश व भारततक के पढाई का स्तर तर्क संगत होना चाहिए। क्या यह आवश्यक है कि इन सबको स्थिति से परिवहन मार्गों, नगरीय व ग्रामीण जनसंख्या तक अव्यवस्थित ढंग से बच्चों को पढाते जायें। यदि नही तो बच्चों को जिला, राज्य और भारत के लिए विषय कैसे चुनने चाहिए। प्राईमरी स्तर से बच्चों के लिए कौन से विषय सबसे उपयुक्त हैं और कौनसा विषय उच्च प्राथमिक स्तर पर चुनना है? जिले और राज्य के भूगोल में ऐसे विषय का चुनाव करना चाहिए जो बच्चों में पर्यावरण के प्रति सजगता व जागरूकता पैदा करें और प्रदेश व अन्य भागों के अन्तर को समझसें। प्रदेश और देश के विभिन्न भागों के प्रकृति और मानव के बीच के सम्बन्ध को भी समझ सके।
3. व्यवस्थित भूगोल के अन्तर्गत कक्षा 6–8 तक भौतिक भूगोल के सिद्धान्तों को बताया जाता हैं यहां इस बात का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है कि पहले विभिन्न प्रदेशों के वारे में बताएें और फिर उसे निष्कर्ष के रूप में समझाऐ। वर्तमान समय में भौतिक सिद्धान्तों को बताया जाता है लेकिन उसकी पृष्ठभूमि को नहीं समझाते हैं उदाहरण के रूप में (1) अक्षांस व देशान्तर के सिद्धान्त को बताने से पूर्व (a) पृथ्वी का त्रिविभीय आकार (b) वृत्तों में उसका विभाजन (c) काल्पनिक रेखाऐं और उनका सैद्धान्तिक आधार (d) स्थिति को वताने के लिए उसका महत्व नहीं बताये।

(ii)वायु भार की पोटियों को बताने के पूर्व वायुभार क्यों और कैसे घटता है, हवा के चलने की उसकी दिशा में वायुभार से क्या सम्बन्ध है, वायु धाराओं और नियतवादी हवाओं में क्या सम्बन्ध है यह बताने का प्रयास नहीं करते हैं।

(iii)तापमान की पेटियां बताते हैं उष्ण कटिबन्ध शीतोष्ण कटिवन्ध और शीत कटिबन्ध। इससे पहले यह जानना भी आवश्यक है कि सूर्यताप और तापमान में क्या सम्बन्ध है। जब तक बच्चे अपने प्रदेश के तापमान के परिवर्तन का कारण नहीं जानेंगे तब तक उनसे यह अपेक्षा करना कि यूरोप में हिमपात और रेगिस्तान के ऊँचे तापमान का क्या कारण है उसको समझ नहीं समझसकेंगे ।

व्यवस्थित/प्रादेशिक भूगोल में संतुलन की आवश्यकता

पाठ्यक्रम से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि व्यवस्थित भूगोल और प्रादेशिक भूगोल के बीच संतुलन रहे पाठ्यक्रम का भार कम हो उसके साथ बच्चों की मानसिक क्षमता को भी ध्यान में रखना है ।

विश्व के विभिन्न भागों में मनुष्य का जीवन क्या है यह बच्चों के उत्सुकता जगाता है। पृथ्वी के विभिन्न भागों का परिचय भी कराता है उनकी कल्पना की उडान को भी तुष्टि मिलती है। पृथ्वी पर कितनी विविधता है यह बच्चे समझते हैं ऐसा क्यों है? यह तर्क कुछ हद तक माध्यमिक पाठशालाओं में बताया जा सकता है।

लेकिन भौतिक भूगोल और आर्थिक भूगोल के सिद्धान्तों के समझना बहुत कठिन है केवल प्राथमिक सिद्धान्तों को ही बताया जा सकता है जो रोचक हों जैसे ध्रुवीय प्रदेशों के लम्बे दिन रात रेगिस्तानों में पानी न वरसने से जीवन पर प्रभाव यह तो बताया जा सकता है लेकिन नियतवादी हवाओं का चलना नदियों का अपरदन आदि विषय बच्चों के लिए कठिन विषय है।

मॉडल प्रयोग एवं भूगोल की शिक्षा–

स्कूली शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों में केवल प्रयोगों का वर्णन किया जाता है उन्हें मॉडल के रूप में दिखाया नहीं जाता हे और नही बच्चें को मॉडल प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। दिन–रात, ऋतु परिवर्तन, तापमान का अंतर, सूर्य का उत्तरायरण से दक्षिणायन होना, वायु भार का अन्तर ऊँचाई का अंतर आदि ऐसे विषय हैं जिन्हें छोटे–2 प्रयोगों से इन्हें सरलता से समझाया जा सकता है। मॉडल प्रयोग करके सीखना, अनुभव बताता है कि बच्चों के लिए यह अत्यधिक रोचक होता है बच्चे थर्मामीटर से तापमान का ज्ञान बहुत सरलता से सीख लेते हैं मिट्टी से पहाड और पानी को इकट्टा कर तालाव व समुद्र बनाकर तट रेखा और ऊंचाई तथा समोच्च रेखाओं आदि सभी को समझ सकते हैं गुब्बारे को फुलाकर फिर उसकी हवा निकालकर वायुभार और हवा के चलने की दिशा को प्रायोगिक रूप से समझाया जा सकता है।

इस प्रकार प्राकृतिक सिद्धान्त यदि बच्चों को मॉडल/प्रयोगों द्वारा समझाया जाय तो उनके लिए भूगोल को समझना अधिक सरल होगा। वे प्रकृति के तर्क को समझ सकेंगे । एक वार जब सिद्धान्त के तह तकवे पहुंच जायेंगे तो अन्य प्रदेश में उसे लागू करके देखने की प्रवृत्ति विकसित होगी कि अमुक प्रदेश समुद्र से दूर या निकट होने पर वहां समुद्र की गर्म प्रभाव है या ठंडा। वहा गर्मी होगी अथवा ठंड इन सभी जानकारियों के बारे में वह विश्लेषण करने लगेगा।

भौतिक भूगोल के इस प्रकार की अनेक कमियां दिखायी देती है जैसे उ0प्र0 में पहाड पठार और मैदान को बताते हैं तथा स्थलाकृतियां की जानकारी देते हैं। स्थलाकृतियों को मिट्टी से बनाकर नहीं दिखाते। हम पहाडों की ऊँचाईया तो बताते हैं लेकिन समुद्र की सतह को नहीं समझाते हैं। हम कैसे जानते हैं कि अमुक स्थान कितना ऊँचा है आदि तथ्य बच्चों को नहीं समझाते हैं बच्चों के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव होगा? जिसको हमने कभी परिभाषित नहीं किया। बच्चों को समझाया नहीं, रेखाचित्र, तस्वीरें अथवा फिल्म में क्या अंतर है जिनसे वे संसार के मैदान, पठार, पहाड आदि का अपने मस्तिष्क पर मानसिक चित्र विकसित कर सकें।

भूगोल के अध्यापन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष– अर्न्तसम्बन्धों को समझाना है। प्रकृति के कार्यकलाप आपस में जुडे हैं। पृथ्वी के विभिन्न भागों में उनके संयोजन अलग–अलग हैं। कक्षा–8 तक आते–आते बच्चों को यह तर्क समझ में आना चाहिए जैसे पृथ्वी पर भारत किस अक्षाँओं के बीच में स्थिति है तो वहां तापमान कैसा होगा, वर्षा की मात्रा कितनी होगी तथा वहां वनस्पति कौन सी उपजेगी। मानव जीवन कैसा होगा। प्राकृतिक बनावट का तापमान वर्षा से क्या सम्भावनाऐं होती है मनुष्य किस प्रकार का होगा? इस प्रकार के अन्तसम्बन्धों को बताने का उद्देश्य यह है कि बच्चे प्रकृति के तर्क की समझ सके इस प्रकार अध्ययन से उनमें चेतना विकसित होगी कि मुनष्य किस प्रकार पर्यावरण पर निर्भर है तथा वह पर्यावरण के अनुरूप अपने को समायोजित कर उससे लाभ प्राप्त करने की कोशिश करेगा जिससे उसमें विश्लेषण करने की क्षमता विकसित होगी, आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित होगा। अपितु यह नहीं कि जो उसे बता दिया कि वह उसे अंतिम सत्य की तरह ग्रहण कर ले। ऐसा क्यों है? ऐसा क्यों नहीं है? से उनके भीतर सोचने–समझने की क्षमता का विकास होगा।

अध्ययन सो यह भी ज्ञात हुआ कि प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों की बुद्धि तर्क के लिए विकसित नहीं होती वरन् उसे पढकर आत्मसात् करने की होती है तथा तथ्यों को याद कर लेने की क्षमता होती है किन्तु कक्षा 8 से बच्चों के तर्क करने की क्षमता में धीरे–धीरे विकास होने लगता है । छोटे–छोटे तथ्यों के तर्क में वह निष्कर्ष तक पहुंच सकते हैं जैसे तापमान के बढने को वायुभार घटता है अथवा जिस ओर वायुभार कम होता है उस और हवा चलती है।

पृथ्वी के विभिन्न तथ्यों के बीच क्या अर्न्तसम्बन्ध है जैसे वायुभार, तापमान, वर्षा के बीच किन प्रदेशों में इनकी समानता है और कहाँ भिन्नता हैं। यह खोजने परखने, समझने और आत्मसात् करने की कौनसी उम्र है। भूगोलवेत्ताओं के शोध का विषय है। यहां अधिक शोध की आवश्यकता है कि विभिन्न कारकों के बीच क्या कडियॉ हैं? यहाँ खोजने की क्षमता किस उम्र में कितनी होती है? प्राठ्यक्रमको इस प्रकार बनाया जाय कि उसमें क्षमताऐं विकसित हो तो उनका उपयोग सीखने की प्रक्रिया सरल, सहज ढंग से हो सके जिसमें पढाई, उन पर उम्र से पहले भार के रूप में न बन जायें ।

भूगोल को पढाने की विधियाँ– सामान्य रूप में शिक्षक विना पूर्व तैयारी के कक्षा में जाते हैं कक्षा में किताव से पाठन कराया जाता है फिर शिक्षक बच्चों से पूछते हें कि समझ गये बच्चो? बच्चे कहते हैं कि हमें बता दीजिए कि पाठ के अंत में दिये गये प्रश्नों के उत्तर कहॉ–से कहॉ तक हैं। शिक्षक अण्डर लाइन कर देते हैं अथवा कोष्ठक लगा देते हैं जिन्हें बच्चे उत्तर लिख लाते हें। इस प्रकार भूगोल की पढाई के उद्देश्य के सन्दर्भ में जो बातें की गयी क्या हमारे बच्चे उनसे कोसों दूर नहीं हैं? यह जानने का प्रयास भी करना चाहिए।

(i)पर्यावरण का अध्ययन–क्षेत्रीय रूप में

भूगोल की प्रारम्भिक पढाई का सीधा सरल और रोचक तरीका चारों ओर के पर्यावरण का अध्ययन है जो यथार्थ अध्ययन है और प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है जितनी सरलता और सहजता से बच्चे प्रकृति द्वारा सीखते हैं उतना अन्य किसी ढंग नहीं सीख पाते । उन्हें भूगोल को रटना नहीं होता वल्कि मस्तिष्क पर उसकी छाप बन जाती है जो वर्षों तक उसके मस्तिक में रहता है और उसे भूल नहीं पाता ऐसे अध्ययन को क्षेत्रीय अध्ययन कहते हैं उसका कोई दूसरा विकल्प नहीं होता है ये कार्य बच्चों को दूर ले जाने से सम्भव नहीं।

यद्यपि छोटे बच्चों को वाहर ले जाना, सभॉलना, सुरक्षित लौटालाना कठिन काम है। उच्च प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में यदि उन्हें छोटी दूरी तक ले जाया जा सके तो बच्चों को मोटी–मोटी बातों जैसे मिट्टी की प्रकृति, चट्टानों के प्रकार, नदी के वहने की दिशा और ढाल–सहायक नदियॉ बांध और सिंचाई, प्रमुख फसलें, प्रमुख वनस्पति, वृक्षों के प्रकार, वनों की उपज, मकानों के प्रयोग में आने वाली वस्तुएं, पठार, पहाड के अन्तर को आसानी से समझाया जा सकता है। किसी साप्ताहिक बजार में प्रदेश की उपज, किसी फैक्टरी के उत्पादन को समझ सके। क्या हम अपने स्कूलों में यह सुविधाएं प्रदान कर सकते हैं?

(ii)**पढ़ाने के साधन**

दूसरा तरीका पृथ्वी के विभिन्न पक्षों से दर्शाने वाले ग्लोव, मानचित्र, चार्ट, मॉडल आदि को कक्षाओं में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराये जाय जो पर्याप्त नहीं है। पाठ्य पुस्तक ऐसी बनाई जाये, प्रश्न ऐसे पूछे जायें कि इन वस्तुओं के विना अध्यापक पढाई के पूरी न कर सके।

(iii)**पाठ्य पुस्तकों में विषय–वस्तु की प्रस्तुति–**

भूगोल की पाठ्य पुस्तकों के विषय वस्तु की प्रस्तुति में पुस्तकों को आर्कषक रोचक और विषय वस्तु के अनुरूप चित्रों को प्रदर्शित किया जाता है।

भूगोल की पाठ्य पुस्तकों को तैयार करते समय एक गम्भीर कठिनाई सामने आती है जैसे ऊँचाई के साथ वनस्पति, खेती के बदलने की बता रहे हैं तो हमें नीलगिरि पहाड और हिमालय पहाड की विभिन्न ऊँचाई वाले वृक्षों और चित्र चाहिए। कृषि उपकरण, मकान बंदरगाह, मछली पकडने आदि के चित्र भी दिखाने होंगे।

प्राथमिक कक्षा की पुस्तकों में पाठकों का रोचक और जीवंत बनाने के लिए यदि अच्छे फोटोग्राफ दिये गये हैं तो उन्हीं पर प्रश्न पूछ कर बच्चे पर्याप्त ज्ञान एकत्रित कर सकते हैं तथा विस्तृत वर्णन की आवश्यकता नहीं होगी।

उच्च प्राथमिक कक्षा की पुस्तकों में सौर मण्डल में पृथ्वी, ग्लोव–पृथ्वी पर स्थानों का निर्धारण, पृथ्वी की गतियॉ, मानचित्र पृथ्वी के परिमण्डल–स्थल मण्डल, जलमण्डल, वायुमण्डल, जैव मण्डल पर्यावरणीय समस्याओं की परिचय, विश्व में भारत की अवस्थिति, भारत के पडौसी देश, भारत का राजनैतिक परिचय, भारत का भौतिक स्वरूप, भारत की जलवायु– मौसम, ऋतुएं व मानसूनी पवन, भारत की मृदा वनस्पति, वन्य जीव, भारत में उत्तर प्रदेश राजनैतिक विभाग, प्राकृतिक स्वरूप, जलवायु मृदा, वनस्पति एवं वन्यजीव को शामिल किया गया है।

स्थल मण्डल के अन्तर्गत पृथ्वी की आन्तरिक संरचना चट्टानों के प्रकार निर्माण प्रक्रिया, पृथ्वी के प्रमुख स्थलरूप, पर्वत, पठार, मैदान, धरातल के रूप बदलने वाले आन्तरिक कारक, भूपटल का वलन, भ्रंश, ज्वालामुखी, भूकम्प, अनाच्छादन, अपक्षय एवं अपरदन जनित स्थलाकृतियाँ, वायुमंडल का संघटन व संरचना मौसम एवं जलवायु के तत्व–वायुदाव, तापमान, स्थायी पवन व अस्थाई पवन, पृथ्वी की वायुदाव की पेटियाँ, जलमण्डल–जल राशियों का वितरण, महासागरीय जलसंचलन, ज्वारभाटा, सुनामी, संसार के प्राकृतिक प्रदेशों का सीमांकन, भूमध्यसागरीय प्रदेश, सवाना, उष्णकटिवन्धीय घास, मरूस्थलीय प्रदेश, उष्ण कटिबन्धीय एवं मध्य अक्षाक्षीय, टैगा प्रदेश एवं टुण्डा प्रदेश के अध्ययन को शामिल किया गया है।

भारत में आर्थिक संसाधन व उनके प्रकार, प्राकृतिक संसाधन एवं मानव संसाधन, विशेषताऐं एवं वितरण, सतत् विकास, भारत के आर्थिक आधार–कृषि के प्रकार एवं सिंचाई मुख्य कृषि उपजें, कृषि की समस्याऐं एवं विकास, राष्ट्रीय कृषि नीति, हरितक्रांति और उसके प्रभााव। खनिज संसाधन–धात्विक एवं अधात्विक खनिज, शक्ति के साधन, उद्योग धन्धे, यातायात एवं संचार, मानव संसाधन–जनसंख्या वितरण एवं विशेषतायें जनसंख्या वृद्धि की समस्याऐं एवं समाधान जीवन की गुणवत्ता गॉव एवं नगरों की समस्याऐं, उत्तर प्रदेश की कृषि खनिज उद्योग धन्धों, जनसंख्या एवं नगरीकरण, विश्व के प्राकृतिक प्रदेश, उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी, भूमध्यसागरीय, शीतोष्ण घास के मैदान, पश्चिमी यूरोप और चीन तुल्य प्रदेश, आपदा के प्रकार, आपदा प्रबन्धन चक्र, भारत में आपदा प्रबन्धन, सामुदायिक एवं शासकीय प्रयास का अध्ययन पृथ्वी और हमारा जीवन नामक पुस्तको के माध्यम से कराया जाता है जो बच्चों की उम्र से बहुत अधिक है।

वर्तमान उच्च प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तकों में समुचित चित्रों को विषय के अनुरूप शामिल किये जाने का प्रयास किया गया है। भारत में चाय वागाती, कृषि अथवा भूमध्यरेखीय वनों में झूमिंग कृषि के बारे में अध्ययन करा रहे हैं लेकिन चाय के वृक्ष तथा झूमिंग कृषि में खेतों को बनाने की विधि तथा वृक्षों का काटना आदि ट्रेनिंग देना भी अति आवश्यक है। इसी प्रकार की समस्या कोको नॉरियल, लोंग, कालीमिर्च आदि की खेती को बताने में भी आती हैं इसी पक्ष पर शोध की अत्यधिक आवश्यकता है।

यदि पहाड का पाठ तैयार कर रहे हैं तो उसका स्वरूप वहां की नदियॉ, घाटियॉ , परिवहन मार्ग फसलें, चाय के वागान, प्रमुख वृक्ष लोगों का पहनावा घर, उपकरण इत्यादि अनेक चित्रों की आवश्यकता होती है। जिनसे बच्चे पर्वतीय पर्यावरण का चित्र बनाते हैं लेकिन इस प्रकार की सामग्री एकत्रित कर पाठ बनाये जायें जिनका अभी प्रयत्न नहीं के बराबर हुआ है अर्थात् वे अर्पयाप्त हैं।

भूगोल का उच्च प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तको से यह भी पता चलता है कि अनेकों ऐसे शब्द पुस्ताकं में है जिनका बच्चे समझ नहीं पाते हैं जैसे नदी का मुहाना ज्वालामुखी से निकली राख, ज्वारभाटा, समुद्री किनारों पर बालू मिट्टी का निक्षेपण, खुली खदान आदि बच्चों को एक बार में एक बात बताना ठीक रहताहै और वह भी सरल भाषा में और विस्तार से । कभी–कभी कई बातें एक ही पैराग्राफ में बताने पर अध्याय बोझिल होने लगता है।

उच्च प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तकों में भाषा सरल होनी बहुत आवश्यक है क्योंकि अध्याय कहानी के रूप में लिखे जा सकते हैं। रहस्यमय, रोमांचक ढंग से प्रस्तुत किये जाने से ऐसे अध्ययन बच्चों को आकर्षक लगते हैं विज्ञान और तकनीकी विकास में आगे बढने की बातें तो की जाती है लेकिन अध्यायों के अनुरूप न तो स्लाइड बनायी जाती है और न ही फिल्में बनाई जाती हैं ताकि बच्चे आसानी से विज्ञान और तकनीकी विकास में आगे बढ़ सकें और उनकी बुद्धि कुशाग्र हो सके।

<u>मानचित्र एवं भूगोल</u>

भूगोल में मानचित्र का अध्ययन एक महत्वपूर्ण भाग है विना मानचित्र के भूगोल अधूरा है क्योंकि मानचित्र की अपनी एक विद्या, एवं भाषा है जिसे उसी प्रकार से समझाया जाता है जैसे लिखना पढना सिखाया जाता है।

कक्षाओं में प्रयोग में यह ज्ञात होता है कि बच्चों को मानचित्र बनाना सिखाना नहीं जाता उसे केवल तथ्यों को भरना सिखाया जाता है। मानचित्र की विशेषताऐं नहीं बताई जाती और न ही उससे ज्ञान प्राप्त करने की ट्रेनिंग होती है। पाठ्य पुस्तकों में मानचित्र अधिक स्पष्ट न होने के कारण मानचित्रों से पूर्ण ज्ञान नहीं रहे हैं मानचित्रों को पैमाना, रूढि चिन्हों, मानचित्रों के रंग, वितरण आदि कोसमझाना प्राथमिक स्तर तक रही सीमित है मानचित्र में दिशा और रेखा, नदियों के वहने की दिशा आदि का चित्रण तो किया गया है लेकिन अध्यापको द्वारा उन्हें इस दिशा में ज्ञान नहीं दिया जाता है यहां तक कि मानचित्र को देखकर यह नहीं बता सकते कि प्रदेश में कितने जिले हैं और कौन सा जनपद कहां स्थित है यह भी बताना अति आवश्यक है।

यदि हम भूगोल को प्राथमिक स्तर एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर पढा रहें हैं तो यह आवश्यक है कि वर्तमान पाठ्यक्रम, पुस्तकों उनके मानचित्रों एवं अध्ययन की विधियों तथा उपकरणों की सूक्ष्मता से आलोचनात्मक परीक्षण किया जाय। यह कार्य शिक्षकों द्वारा ही सम्भव है। अतः भूगोल के शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कडी मेहनत, निष्ठा से सुनिश्चित कार्य योजना के अन्तर्गत कार्य करते हुए सम्पूर्ण अध्ययन कार्य में सम्पादित करने में अपना योगदान देंगे।

विश्व भाषा, विश्व साहित्य और पहचान : परिप्रेक्ष्य में हिंदी

डॉ. ऋचा द्विवेदी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केंद्र, प्रयागराज

किसी न किसी तरह से पूरी दुनिया में हिंदी की पढ़ाई होती है। एक तो यह है कि भारतवासियों और उनकी दूसरी तथा तीसरी पीढ़ी में कुछ हद तक हिंदी न सिर्फ अपनी जुबान पर अपनी पहचान का प्रतीक बनती है बल्कि इस मामले में जोश के साथ यह विधवा विलाप भी बहुत होता है क्योंकि ज्यादातर दूसरी–तीसरी पीढ़ी में हिंदी मातृभाषा के रूप में खत्म हो जाती है या नाना–नानी, दादा–दादी से बात करने का माध्यम रह जाती है पर उससे बढ़कर कुछ नहीं। खैर, कुछ समुदायों में खासकर 19वीं सदी के प्रवासी समुदायों में हिंदी की एक बोली जीवित है और जीवित रहेगी।

इसके अलावा पूरी दुनिया में ऐसे बहुत मुल्क हैं जिनके कुछ चुने हुए कॉलेजों या विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाएं, साहित्य, धर्म का इतिहास और संस्कृति पढ़ाए जाते हैं। इस तरह के स्थानों में ज्यादातर ऐसे छात्र आते हैं जिनको पहले कुछ भी नहीं आता था ना भाषा, ना लिपि, ना उनके लिए हिंदी किसी तरह से अपनी पहचान का प्रतीक है।

इनकी दिलचस्पी हिंदी की तरफ इस तरह से बनती है जिस तरह से हिंदुस्तान में लोग जापानी, चीनी, रूसी, अफ्रीकी भाषाएं या स्पेनिश पढ़ते हैं। कुछ लोगों को लगता है कि भाषा की जानकारी के साथ खास किस्म की नौकरी जरूर मिलेगी । कुछ लोगों को फिल्मों में दिलचस्पी है, कुछ लोगों को साहित्य में। कुछ लोग पढ़ाई करने से पहले पर्यटक के रूप में इस दुनिया के किसी दूसरे कोने से मोहब्बत करते हैं और जुबान भी सीखना चाहते हैं इस तरह से हिंदी और हिंदी साहित्य प्रेमी लगातार बनते जरूर हैं।

विदेशी हिंदी विशेषज्ञ (डॉक्टर हाइंसवेर्नर वेसलर) यूरोप में भारतीय भाषाएं पढ़ते और पढ़ाते हैं। उनके पीछे एक बहुत कदीम और आदरणीय परंपरा है जो कम से कम 200 साल पुरानी है । इंडोलॉजी उनके विषय का पवित्र नाम है इस विषय की जड़ें यूरोप और जर्मनी में 19वीं सदी के रोमांटिक में है और साथ में भाषा विज्ञान में भी 18वीं शताब्दी के पिछले दो दशकों में संस्कृत साहित्य के अनुवादों का यूरोप में जबरदस्त प्रभाव शुरू हुआ था विलियम जॉन्स का नाम तो बहुत मशहूर है पर ठीक से देखें तो पता चलेगा कि इन से पहले भी कुछ लोग विदेश से आकर संस्कृत सीखने लगे थे कई ईसाई धर्मप्रचारक इसके बहुत बड़े विद्वान बने।

फ्रेडरिक वॉन श्लेगल की किताब 'श्पारवेउन्दवैसहैतडेरइन्दिएर' (भारतीयों की भाषा और ज्ञान) 1808 में ही डलबर्ग जर्मनी में मुद्रित होने के बाद जोश से संस्कृत साहित्य की ओर रुचि बढ़ने लगी। पेरिस, फ्रांस में इंडोलॉजी की सर्वप्रथम प्राध्यापक पीठ 1814 और दूसरी 1818 में बॉन, जर्मनी में स्थापित की गई। तबसे संस्कृत की पढ़ाई और कथित इंडो–यूरोपीय भाषाशास्त्र का अध्ययन– अध्यापन कई देशों में व्यापक स्तर पर चला आ रहा है।

उस युग में ही यानी 200 वर्ष पहले कालिदास का अभिज्ञान शाकुंतलम् के नाम से विख्यात नाटक का यूरोप की कई भाषाओं में अनुवाद किया गया। जब भारत का नाम और इंडोलॉजी शब्द कहा जाता था तो आमतौर पर उन दिनों के भारत की कल्पना होती थी। आधुनिक भारत दूर की बात थी। उधर ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों को हैलीबरी कॉलेज में सिखाया जाता था कि इंडिया को कैसे कब्जे में रखना है। इस लिहाज से फारसी और बोलचाल की जुबान भी थोड़ी–थोड़ी सीखनी पड़ी, जहां तक जरूरत पड़ी। उस जमाने में हिंदुस्तान में अंग्रेजी तो लगभग नहीं चलती थी। अंग्रेजी का प्रचार

बस शुरुआती दौर में था, कोलकाता के प्रेसिडेंसी कॉलेज जैसे विख्यात अंग्रेजी अध्ययन–अध्यापन संस्थान में और लॉर्ड मैकाले बाद में आए।

खैर, संस्कृत और भारतीय साहित्य का ज्ञान इकट्ठा करना, वह भी एक तरह से उपनिवेशवाद का एक उद्देश्य था। इस वजह से बाद में मैक्समूलर ऑक्सफोर्ड बुलाए गए थे। संस्कृत से आगे जाकर इंडोलॉजी जल्द ही प्राकृत और इसके साहित्य तक पहुंची। अतीत के पुनर्निर्माण का सपना उसके साथ जारी होता रहा या सही अर्थों में दक्षिण एशिया के कल्पित 'सोना, स्वर्ण युग' (गोल्डन एज) के पुनर्निर्माण की ओर। आधुनिक भाषाओं, साहित्य और फिर समकालीन भारत में 19वीं सदी की इंडोलॉजी में एक बहुत सीमित भूमिका निभाई।

संस्कृत भाषा शास्त्र 19वीं सदी में काफी हद तक 20वीं सदी में इंडोलॉजी की रीढ़ की हड्डी रही। कई स्थानों में आधुनिक भाषाएं और उनका साहित्य उत्तर औपनिवेशिक काल में या इससे पहले भी पाठ्यक्रम में जोड़ा गया था पर महत्व संस्कृत और उसके साहित्य का रहा।

1960 के बाद से 'क्षेत्रीय अध्ययन' (यानी दक्षिण एशियाई अध्ययन) संयुक्त राज्य अमेरिका में विशेष रूप से पेश किया गया इसमें इतिहास और समाज, अर्थशास्त्र और भूगोल पढ़ाए जाते हैं और इसके साथ बोली जाने वाली भाषा की पढ़ाई भी होती है।

एडवार्ड सईद की मशहूर किताब 'ओरियंटलिस्म' 1979 का प्रकाशन न सिर्फ इस्लामिक स्टडीज में बल्कि एशियन स्टडीज के लिए बड़ी चुनौती बनी है। तथाकथित 'ओरिएंटल स्टडीज' यानी प्राच्य भाषा और संस्कृति का अध्ययन–अध्यापन एवं इंडोलॉजी भी अचानक साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के इतिहास के अंतर्गत देखी–दिखाई जाने लगी और यह विवादास्पद अध्ययन का विषय रही है।

1874 तक प्राध्यापक पीठ उसी नाम से आगे चलता रहा और बीच–बीच में संस्कृत की पढ़ाई हुई होगी। 1892 के बाद से भारतीय विद्या की प्राध्यापक पीठ सही ढंग से शुरू हुई। 2003 तक यह पीठ न सिर्फ संस्कृत भाषा और साहित्य पर केंद्रित थी बल्कि इनके साथ ही indo & european भाषा विज्ञान पर भी। 2003 में इसका केंद्र बिंदु दक्षिण एशिया के क्षेत्रीय अध्ययन–अध्यापन में विलय होने लगा। विभाग स्वयं अपना केंद्र बिंदु नहीं बदलना चाहता था, क्षेत्रीय अध्ययन–अध्यापन, आधुनिकता और अंतर विषयक नया केंद्र बिंदु फैकल्टी की ओर से इंडोलॉजी के सामने आने लगा।

तब से पाठ्यक्रम के अंदर हिंदी की जगह आगे बढ़ी। इस संदर्भ में यह भी पूछा जा सकता है कि क्या हिंदी की उन्नति एक तरह का प्रमाण है कि हिंदी सचमुच विश्वभाषा और हिंदी साहित्य विश्व साहित्य के रूप में विकसित हो रहा है या विकसित हो चुका है?

21वीं सदी में स्वीडन जैसे छोटे देश में और आगे बढ़ते हुए भारत के सामने हिंदी एवं इंडोलॉजी की पढ़ाई का मतलब क्या है और कौन सी चुनौतियां हैं? इन दिनों वरिष्ठ हिंदी कहानीकार मन्नू भंडारी के उपन्यास आपका बंटी और महाभोज चीनी अनुवाद में आ रहे हैं। इन उपन्यासों के अभी 6–7 भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध हैं यानी चीन के आम पाठक जिनको न हिंदी आती है, न भारत के बारे में विशेषज्ञता है, मन्नू जी के उपन्यास अपनी ही जुबान में पढ़ सकते हैं।

यह छोटी बात नही है। साहित्य का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है कि इंसान एक–दूसरे को समझता है। विभिन्न संस्कृतियों में साहित्य एक पुलसा है और अगर हिंदी–चीनी के अनुवादक नहीं होते तो यह सब नहीं हो सकता था।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण मामला अक्सर भुला दिया है। अच्छा अनुवाद कैसे बनता है? अनुवाद अपने आप में एक कला है जिसके लिए एक विशेष पृष्ठभूमि चाहिए। सबसे पहले भाषा के अध्ययन–अध्यापन की एक संस्कृति। कभी–कभी हिंदी के साथ यह रामकथा चलती है कि हिंदी साहित्य के अनुवाद को वैसी जगह क्यों नहीं मिलती है, जैसी भारतीय लेखकों के अंग्रेजी उपन्यास को मिली है। वैसे प्रेमचंद से लेकर अज्ञेय, निर्मल वर्मा, गीतांजलिश्री तथा उदय प्रकाश की रचनाओं के अनुवाद कई भाषाओं में जरूर मिलते हैं पर ज्यादातर छोटे प्रकाशकों द्वारा छपते हैं और कम हैं। सलमान रुश्दी, अडिगा, अरुंधति राय, विक्रम सेठ जैसे नाम तो किसी भी पश्चिमी पाठक के कानों में तो जरूर गूंजते हैं। इसी तरह से हिंदी लेखकों के नाम क्यों नहीं गूंजते?

कुछ लोगों का कहना हैकि इस तरह के मूल अंग्रेजी उपन्यास अपने देश के पाठकों के लिए नहीं, विदेशी पाठकों के लिए ही लिखे जाते हैं। हालांकि हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने यहां के पाठकों के लिए हैं। इस लिहाज से संदर्भ अलग है, कथानक अलग है और सौंदर्यशास्त्र विभिन्न ही होता है। मुझे इस पर शक है। मैं अभी भी मानती हूं कि अगर किताब अच्छी है तो अनुवाद भी अच्छा होना चाहिए और जागरूक पाठकों, देसी हो या विदेशी, इनको किसी तरह से अंदाजा होता है कि रचना अच्छी है कि नहीं पर अनुवाद सही होना चाहिए।

हिंदी का हाल इस सिलसिले में क्या है, चीन में, यूरोप में और अमेरिका में अनुवादक कहां से आते हैं? एक तो यह कि यूरोप के कई देशों में पूर्वी एशिया और अमेरिका की तरह बड़े बड़े विश्वविद्यालयों में इंडोलॉजी के छोटे–छोटे विभाग या प्राच्य विद्या के संस्थान होते हैं जहां दक्षिण एशिया की भाषाएं पूरी तरह से पढ़ाई जाती हैं। छात्र खासकर हिंदी सीखने के लिए जरूर आते हैं और भाषा के साथ साहित्य और संस्कृति भी पढ़ते हैं। उनमें से कुछ लोग घोर परिश्रम करके तीन–चार सालों में अच्छी हिंदी सीख लेते हैं और शब्दकोश के साथ साहित्य भी पढ़ते हैं और साहित्यिक अनुवाद तैयार करने की कोशिश करते हैं।

प्राच्य भाषाओं का शिक्षण तो ज्यादातर विदेशी जुबान की दिक्कतें समझने पर आधारित होता है। अनुवाद करना अपने आपमें एक कला है जो क्लास रूम के अंदर कम सिखाई जाती है। खेद की बात है कि भारतीय साहित्य से बड़े–बड़े प्रकाशन गृहों में सिर्फ अंग्रेजी में लिखे गए उपन्यास निकलते हैं। प्रकाश कों का अक्सर यही मंत्र होता है कि इस तरह की तथाकथित देशी भाषाओं की किताबों के लिए हमारे यहां कोई बाजार नहीं है। बिक्री नहीं होगी। या तो आलोचना करते हैं कि अनुवाद तो ठीक हो सकता है, पर भाषा पर पकड़ नहीं है।

इसमें कुछ सत्य तो हो सकता है क्योंकि सही अनुवाद के लिए न सिर्फ हिंदी की समझ ठीक होनी चाहिए बल्कि अनुवाद की भाषा में भी विधि लानी पड़ती है जिसके लिए कोई सही शिक्षा नहीं मिल पार ही है।

अच्छे अनुवादक कहां से आते हैं? जिस तरह से पूरे यूरोप, अमेरिका और पूर्वी एशिया में (यानी दक्षिण या उत्तर कोरिया से बाहर) छात्र आकर्षित होकर कोरियाई जुबान पढ़ने के लिए आते हैं, उसी तरह से हिंदी के लिए भी आते हैं। पूरी दुनिया में बड़े बड़े विश्वविद्यालयों में इंडोलॉजी के विभाग या तो प्राच्य विद्या के संस्थान होते हैं जहां हिंदी जरूर मुख्य विषय या कम से कम गौण विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। इस वजह से हिंदी एक विश्वभाषा बन चुकी है। जो छात्र बी.ए., एम.ए. का पाठ्यक्रम पूरा कर लेते हैं, हिंदी के साथ संस्कृत एवं दूसरी भारतीय भाषाएं भी कम से कम प्रवेशात्मक रूप से पढ़ भी लेते होंगे, वे बाद में सचमुच भारत के स्वाभाविक और एकदम मौलिक राजदूत बन जाते हैं। उनमें कई लोग अनुवाद के क्षेत्र में आ जाते हैं। इन लोगों का उद्देश्य होता है हिंदी साहित्य के अच्छे–अच्छे नमूने विश्वविद्यालय की श्रेणी तक पहुंचाना।

हिंदी पढ़ाई के उद्देश्य विभिन्न छात्रों के लिए विभिन्न हो सकते हैं। हर छात्र के अपने जीवन की कहानी होती है और पढ़ाई की समाप्ति पर हर एक की अपनी आगे जाने की कहानी होती है। कुछ लोग किसी नौकरी में जाते हैं, कुछ लोग पत्रकारिता में जाते हैं, कुछ लोग पर्यटन में काम करना शुरू करते हैं और विदेशी पर्यटकों को भारत दिखाते हैं पर जो भी नौकरी हो, ज्यादातर भारत के लिए जोशीले ही रहेंगे और हिंदी के लिए भी और कुछ लोग साहित्यक अनुवादों की रचना करते हैं। खेद की बात है कि इससे जिंदगी तो नहीं कटती है। हिंदी के साथ नौकरी आसानी से तो नहीं मिलेगी। सिर्फ विश्वविद्यालयों या कॉलेजों में कभी–कभी पढ़ाने या अनुसंधान करने का मौका मिल सकता है।

अच्छे अनुवादक अपने आप से तो नहीं बनते। इनको अलग से शिक्षण मिलना चाहिए। खेद की बात है कि माहौल इस तरह से इस वक्त तो नहीं है। कई बार उल्लेख कर चुकी हूं कि भाषा की पकड़ बहुत अहम होती है।

आखिर में सवाल अनुवाद की गुणवत्ता का है। इस संदर्भ में मेरा एक सपना है। अगर ऐसा संस्थान होता जहां पूरी दुनिया से भारतीय साहित्य के अनुवादक आ सकते, आपस में मिल सकते एवं लेखकों और आलोचकों के साथ अनुवाद की समस्याओं पर बहस और आगे जाकर सहित विमर्शकर

सकते तो हर किसी को फायदा होता। मान लें कि एक ही उपन्यास का अनुवाद जापानी, रूस में और स्वीडिश में हो रहा है और अनुवादक एक बार कुछ दिनों तक शांति से बैठकर मिल सकते, अपना काम कर सकते और अनुवाद की समस्या पर संपर्क में आ सकते।

आखिर में हिंदी का आकर्षण क्या है? मेरे ख्याल से यह बहुत जरूरी है कि हिंदी न सिर्फ बोलचाल की भाषा बल्कि अपनी पहचान को आगे बढ़ाने की भी भाषा बननी चाहिए। बहुत जरूरी है कि हिंदी के छात्र, भारतवंश के हो या बाहर की नस्ल के हों, हिंदी को आधुनिकता के साथ जोड़ें। जिस तरह से चीनी, जापानी और कोरियाई आधुनिक हैं। यह जरूरी है कि हिंदी के छात्र अपने अनुभव इस भाषा में प्रकट करें और पूरी तरह से इसमें रंग लें और इसके साथ आधुनिक साहित्य के सही अनुवाद भी उपलब्ध कराने चाहिए। ताकि जो लोग हिंदी साहित्य का रस नहीं जानते, वे इसका रसपान कर सकें।

गुरु गोविन्द सिंह का शांतिप्रिय सिक्खों का खालसा में परिवर्तन

डॉ. शलभ चिकारा
एसो.प्रोफेसर, इतिहास विभाग
स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज अलीपुर,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

गुरु तेगबहादुर के देहान्त के समय सिक्खों की स्थिति बहुत गम्भीर थी। नये गुरु गोविन्द सिंह 9 साल के बच्चे थे। उनके पिता की शहीदी से सारी सिक्ख जनता भयभीत हो गयी थी। सिक्खों में आपस में भी मतभेद थे। गुरु की कमजोरी अनुभव करते हुए लालची मसन्द शक्तिशाली हो गये थे। उन्होने लोगों को अपने साथ मिलाकर छोटे–छोटे दल बना लिये थे तथा गुरु पद को प्राप्त करने वालों का विरोध और समर्थन करके यह समझने लगे थे कि गुरु केवल उनके हाथ की कठपुतली है। परिणामस्वरूप जो लोग किसी कारण से गुरु नहीं बन सके थे, गुरु के बालक होने के कारण अपना नया सम्प्रदाय बनाकर बालक गुरु को अपनी पदवी से हटा देना चाहते थे।[1] सिक्खों को बाहर से भी खतरा बढ़ गया था। मुगल सम्राट औरंगजेब सिक्खों का दमन करना चाहता था और यह उसकी उस नई नीति का सबूत था जो कि उसने लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनाने के लिये अपनाई थी। भारत को दारूल–उल–इस्लाम बनाना उद्देश्य था। इस कारण गुरु तेगबहादुर का शायद यही अपराध था कि वह लोगों को अपना धर्म न छोड़ने की प्रेरणा देते थे और उनको अपने धर्म पर दृढ रहने का उपदेश देते थे।[2] गुरु गोविन्द सिंह के गुरु बनते ही उनको अन्दर और बाहर से बड़े–बडे खतरों का सामना करना था। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि गुरु पद से अच्छी तरह स्थापित करके उसका प्रभाव, महत्त्व और शक्ति–प्रतिष्ठा बढ़ाई जाये। सिक्खों के अन्दर भिन्न–भिन्न मतों और दलों का होना भी अपने आप में बहुत बड़ा खतरा था। उनकी एकता केवल गुरु के नियंत्रण से ही सुरक्षित रखी जा सकती थी। सिक्ख मत की स्थापना और उसकी सफलता का मुख्य आधार गुरु की पदवी ही थी, इसलिये गुरु गोविन्द सिंह के सामने सबसे बडा सवाल गुरु पद की महानता और महत्ता को कायम करना था। सिक्खों को इकट्ठा करने का एकमात्र सूत्र गुरु ही था। कई कारणों से गुरु हरगोविन्द के बाद गुरु की पदवी काफी कमजोर हो चुकी थी। विरोधी दल जोर पकड़ गये थे। अतः सिक्ख धर्म और धर्मावलम्बियों को दोबारा संगठित करना नये गुरु की महानता और शक्ति पर ही निर्भर था।

गुरु गोविन्द सिंह का जन्म 15 दिसम्बर सन् 1666 को पटना में हुआ था। बाल्यावस्था में ही गुरु बनने के पश्चात् गुरु गोविन्द सिंह के सामने सबसे पहला काम अपने पिता की हत्या का बदला लेना और अपने अनुयायियों को मुगल साम्राज्य का मुकाबला करने अथवा मुगलों का सिक्खों के विरूद्ध चलाया जा रहा दमन चक्र को तोड़ने का था।[3] इस महान कार्य के लिये सब स्थिति को हर प्रकार से ध्यान में रखते हुऐ अपने आपको और अपने साथियों को तैयार करना था। 9 साल के गुरु की शिक्षा उनके मामा कृपाल चन्द्र ने उनको आनन्दपुर की बजाय किसी सुरक्षित स्थान पर रखकर की। इस काम के लिये वर्तमान हिमाचल प्रदेश में यमुना के निकट एक बहुत ही सुन्दर स्थान पौण्टा को उचित समझा गया। इस स्थान पर शांतिप्रिय एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ–साथ गुरु की शिक्षा का अच्छा प्रबंध किया गया। उनको संस्कृत, फारसी, ब्रजभाषा आदि की शिक्षा देने के लिये योग्य शिक्षकों का प्रबंध किया गया। साथ ही उनको अपने नये पद की जिम्मेदारी अच्छी तरह से पूरी करने का ज्ञान भी कराया गया। इस काम के लिये एक बड़े प्रसिद्ध राजपूत शिक्षक का प्रबंध किया गया, जिसने तलवार, बन्दूक, घुड़सवारी के जांबाजी इत्यादि में गुरु को निपुण कर दिया। इन चीजों में स्वाभाविक रूचि होने के कारण उन्होंने विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। इस तरह से गोविन्द सिंह को अपने गुरु पद की महान चुनौतियों का सामना करने के लिये तैयार किया गया। अपनी शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् गुरु गोविन्द सिंह ने अपना जीवन लक्ष्य अच्छी तरह और स्पष्ट तौर पर समझ लिया। इसका वर्णन इन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'विचित्र नाटक' में इस प्रकार किया है। ''मैं संसार में इस कर्त्तव्य का पालन करने आया हूँ कि सत्य को स्थापित किया जाये और अन्याय और अधर्म का नाश किया जाय।''[4] यह नया

उद्देश्य शान्तिमय उद्देश्य से बिल्कुल भिन्न था और गुरु के नये विचारों का प्रतीक था, जो कि उन्होंने अपने गुरु काल में फैलाये और जिस काम के लिये उन्होंने सिक्खों को तैयार किया। उनका गुरु काल शांतिमय नहीं रह सकता था और उसके स्थान पर उन्होंने अपने आपको और अपने साथियों को सशस्त्र विद्रोह के लिये तैयार करने की तरफ अपनी सारी शक्ति और ध्यान लगाया। गुरु गोविन्द सिंह के पौण्टा ठहरने के समय उनकी युद्ध तैयारी को देखते हुऐ पहाड़ी राजाओं के दिल में कई किस्म के संशय पैदा हो गये। उनके दिल में ईर्ष्या पैदा होने लगी थी, जिससे मतभेद पैदा होने आरम्भ हो गये थे। साथ ही गुरु साहिब का प्रचार जो कि जात–पात अथवा ऊँच–नीच के विरूद्ध था, हिन्दू राजाओं को नहीं भाता था। इससे उनके प्रभाव के खत्म होने का डर था। गुरु गोविन्द सिंह को भी इस बात का ज्ञान हो गया था। अतः दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो चुकी थीं। भगाणी के स्थान पर युद्ध हुआ। इसमें गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी नई शक्ति और युद्ध कौशल का प्रमाण दिया। उन्होंने अपने थोड़े से साथियों की सहायता से पहाड़ी राजाओं की भारी गिनती की फौज को पराजित कर दिया। इस युद्ध के समय गुरु गोविन्द सिंह को गम्भीर संकट का सामना करना पड़ा था। उस समय उनके 500 मुसलमान सिपाही, सटौरा के मुसलमान पीर बुद्धशाह के कहने पर युद्ध से ठीक पहले पहाड़ी राजाओं से जा मिले थे। साथ ही गुरु गोविन्द सिंह के सहायक उदासी साधु भी युद्ध के समय उनका साथ छोड़ गये थे।[5] गुरु गोविन्द सिह ने बड़े साहस और गम्भीरता से इस स्थिति का मुकाबला किया और बड़ी वीरता से पहाड़ी राजाओं को पराजित कर दिया। युवा गुरु गोविन्द सिंह के जीवन में भंगाणी का युद्ध सबसे पहला युद्ध था, तथा नये गुरु के लिये यह सबसे पहली परीक्षा थी कि वह अपने गुरु बनने का अधिकार जमा सकें और अपने साथियों में विश्वास पैदा कर सकें। इस युद्ध से गुरु गोविन्द सिंह का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। उनके साथियों को विश्वास हो गया था कि गुरु गोविन्द सिंह के लिये जीवन का उद्देश्य प्राप्त करने का रास्ता खुल गया है। भंगाणी के युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद गुरु गोविन्द सिंह बड़े सम्मान के साथ पौण्टा से आनन्दपुर साहिब जा सके और उस स्थान को अपना केन्द्र बनाया। आनन्दपुर पहुँचकर गुरु गोविन्द सिंह ने अपना रक्षा प्रबंध और मजबूत कर लिया। अपने निवास स्थान के चारों ओर चार छोटे–छोटे किले–आनन्दगढ़, लोहागढ़, केशगढ़ और फतेहगढ़ बनवाये। भंगाणी के युद्ध के बाद उनके संबंध विलासपुर के राजा भीमचन्द्र के साथ अच्छे हो गये थे, क्योंकि वह इनकी शक्ति का सम्मान करने लगा था और इसी कारण उसने गुरु गोविन्द सिंह से मुगलों के विरूद्ध युद्ध में सहायता माँगी। पहाड़ी राजाओं ने कुछ समय से मुगलों को नजराना देना बंद कर दिया था। उनको ऐसा करने का साहस औरंगजेब के दक्षिण में व्यस्त रहने और उत्तर पर ध्यान न देने के कारण हुआ था। पहाड़ी राजाओं के विरूद्ध लाहौर के मुगल सूबेदार ने अलिफ खाँ के नेतृत्व में फौज भेजी। नादौन के समीप युद्ध हुआ, जिसमें गुरु गोविन्द सिंह की वीरता एवं साहस के चलते पहाड़ी राजाओं की जीत हुई, परंतु विजयी होते हुऐ भी पहाड़ी राजाओं ने मुगलों से सुलह कर ली और गुरु गोविन्द सिंह को अकेले ही मुगलों के साथ युद्ध करना पड़ा। गुरु गोविन्द सिंह ने बड़ी वीरता से मुगलों को विफल कर दिया। उत्तर भारत की स्थिति से चिन्तित होकर मुगल सम्राट औरंगजेब ने अपने पुत्र शहजादा मुअज्जम को पहाड़ी राजाओं के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिये भेजा, जिससे पहाड़ी राजाओं ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, परंतु गुरु गोविन्द सिंह इसके लिये तैयार नहीं थे। मुअज्जम ने उनके विरूद्ध कोई विशेष कार्रवाई नहीं की। इसका कारण यह समझा जाता है कि गुरु गोविन्द सिंह के एक परम भक्त भाई नन्दलाल मुगल–साम्राज्य में शहजादों के शिक्षक रह चुके थे। इस प्रकार–भंगाणी के युद्ध से लेकर खालसा की स्थापना के समय तक गुरु गोविन्द सिंह को काफी अवकाश मिल गया और इस समय में उन्होंने बहुत अध्ययन करके अपने साथियों को अपने जीवन उद्देश्य की पूर्ति के लिये तैयारी में लगाया। इस 12 साल के समय में उन्होंने अपने साथियों का पुर्नगठन किया और उनमें नये जीवन की रूह फूँकी। उनके दरबार में 52 विद्वान और कवि थे, जिनको उन्होंने रामायण, महाभारत और दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थों के अनुवाद में लगाया, जिनको पढ़कर सर्वसाधारण लाभ उठा सकें। ओर गुरु जी के नये मिशन की पूर्ति के लिये स्वयं को तैयार कर सकें। गुरु गोविन्द सिंह ने यह अनुभव कर लिया कि सिक्खों को सशस्त्र संघर्ष के लिये तैयार करना होगा, परंतु पहले उनमें फैली हुई कुरीतियों को दूर करना आवश्यक था। उन्होंने अपने साथियों में नई जागृति के साथ–साथ उनको मुगल साम्राज्य के विरूद्ध संघर्ष के लिये भी उद्यत करने का परिश्रम किया।

गुरु गोविन्द सिंह ने सन् 1699 ई. में बैसाखी के शुभ दिन पर आनन्दपुर में केशगढ़ के स्थान

पर एक बहुत बड़े समागम का प्रबंध किया। पहले से ही दूर–दूर तक इस बात की सूचना भेज दी गई कि उनके अनुयायी भारी संख्या में वहाँ एकत्रित हो जायें, क्योंकि उस दिन वह एक विशेष घोषणा करेंगे। इस तरह विशाल जनसमूह के सामने उन्होंने अपने साथियों में से एक ऐसे व्यक्ति को खड़े होने के लिये कहा, जो गुरु के लिये अपना शीर्ष देने को उद्यत हो। सारे उपस्थित लोगों में एक तरह से सन्नाटा हो गया, परंतु एक वीर ने उठकर गुरु साहिब के लिये अपना शीर्ष देने का साहस किया। गुरु गोविन्द सिंह उसे बराबर वाले खेमें में ले गये। कुछ देर बाद अपने साथ में नंगी तलवार, जो कि खून से सनी हुई थी, लेकर आये। एक बार फिर उन्होंने एक और व्यक्ति का बलिदान माँगा। एक दूसरे साहसी व्यक्ति के खड़े होने पर उसको भी खेमे में ले जाकर उसी तरह खून से लथपथ तलवार लेकर लोगों से अपील की। इस तरह पांच सिक्खों को बलिदान के लिये तैयार हो जाने के पश्चात् गुरु साहिब उन सब को खेमों में से जीवित बाहर लेकर आये ओर सभी के सामने यह घोषणा की कि वह उनके सच्चे भक्त है और उनको पाँच प्यारों का सम्मान दिया। ये भाग्यवान व्यक्ति थे– दयाराम, कर्मचन्द, मुहकम चन्द, साहिब चन्द और हिम्मत राय। गुरु साहिब ने उनको नये नाम देकर खालसा के रूप में सबके सामने पेश किया। इस अनोखे और प्रभावशाली ढंग से खालसा की स्थापना की गई, जिसका नया उद्देश्य और जीवन आदर्श उनके सामने रखा। सबसे पहले उनको नये रूप में 'पाहुल' देकर एक तरह से नये धर्म में प्रवेश कराया गया। वह पाहुल का तरीका पुराने चरणामृत के ढंग से बिल्कुल भिन्न था। एक स्वच्छ बर्तन में पानी लेकर उसमें कुछ बतासे मिलाकर उसमें अन्दर खण्डे को घुमा दिया जाता था। इस मीठे जल को नये खालसा बनने वाले व्यक्ति को पिला दिया जाता था और उस समय शब्द उच्चारण करके उस रस्म को पूरा किया जाता था। इसको साधारण रूप में 'अमृत छकाणा' कहते हैं। पाँचों प्यारों को अमृत छकाणें के बाद गुरु गोविन्द सिंह ने अपने आपको भी उनसे पाहुल लेकर खालसा के रूप में परिवर्तित किया। सबके नामों के साथ सिंह शब्द लगाकर अपने लिये भी नया नाम गोविन्द सिंह धारण किया। खालसा के लिये नये चिन्ह कड़ा, केश, कच्छा, कृपाण ओर कंघा नियुक्त किये गये। उनको जीवन पर्यन्त ये चिन्ह धारण करते रहने के लिये कहा गया। जो गुरु के खालसा बने, उनको एक–दूसरे के साथ बराबर का व्यवहार करना, सभी किस्म की जात–पात के भेदभाव को मिटाना और केवल आपस में ही शादी–विवाह करने का आदेश दिया गया। उनको यह भी कहा गया कि जो लोग अपनी लड़कियों को मार देते थे या पृथिया, धीरमल या रामराय के परिवार से संबंध रखते थे, उनके साथ कोई मेल–मिलाप या लेन–देन न करें। खालसा के लिये यह भी अनिवार्य था कि वे अन्य सभी काम–धन्धे छोड़कर केवल धर्म युद्ध के लिये उपस्थित रहें। सभी कर्मकाण्ड और पारिवारिक कर्त्तव्यों से मुक्त होकर गुरु की सेवा के लिये स्वयं को प्रस्तुत करें। खालसा को एक तरह से गुरु गोविन्द सिंह का नया परिवार माना जाने लगा और सब अपने आपको गुरु की संतान कहने लगे। खालसा के सामने गुरु साहिब ने जो नया आदर्श रखा वह यह था कि वे सदैव धर्म की रक्षा एवं युद्ध के लिये तैयार रहें।

सन् 1699 ई. में खालसा की स्थापना के बाद आनन्दपुर साहिब में शस्त्रधारी सिक्ख गुरु गोविन्द सिंह के पास अधिक संख्या में आने शुरू हो गये। आनन्दपुर साहिब एक तरह से खालसा का कैम्प बन गया। गुरु साहिब के नये आदेश ने सिक्खों में नये जीवन का संचार कर दिया और उनके नेतृत्व में संघर्ष करने के लिये चारो ओर जो सिक्ख खालसा बनना चाहते थे, उमड़ आये। खालसा की स्थापना ने एक तरह से सिक्खों पर जादू का असर किया। तेजा सिंह और गेडा सिंह के शब्दों में 'वे' लोग जो कि हिन्दू समाज में दलित समझे जाते थे, खालसा बनने के पश्चात् बिल्कुल बदल गये थे। भंगी, नाई और हलवाई, जिन्होंने कभी तलवार को हाथ भी नहीं लगाया था, और जो पीढ़ियों से उच्च जातियों के गुलाम बने रहे थे, एकदम गुरु साहिब की अगुवाई में वीर सैनिक बन गये थे। उनके नये मन्त्र से वह अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिये तैयार हो गये। वे मौत के मुँह में जाने से भी नहीं डरते थे।[6] कनिंघम ने भी इस बात की पुष्टि इस प्रकार की है कि "खालसा की स्थापना से गुरु गोविन्द सिंह ने एक तरह से एक पराजित रत्न की गुप्त शक्ति को पुर्नजन्म दिया और उनके सामने धार्मिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय उन्नति का ऊँचा आदर्श रखा।"[7] सर जदुनाथ सरकार इससे सहमत नहीं है। उनका विचार है कि 'गुरु गोविन्द ने सिक्खों की शक्ति को केवल एक ही दिशा में संचार करके उनको पूर्ण रूप से आध्यात्मिक उन्नति नहीं करने दी। गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों की धार्मिक एकता को राजनीतिक पूर्ति का एक सिद्धांत बना लिया।"[8] इन्दु भूषण, बनर्जी कहते हैं कि और वह गुरु

गोविन्द सिंह की शिक्षा को गुरु नानक की शिक्षा के बिल्कुल अनुरूप मानते हुऐ केवल इतना अन्तर समझते हैं कि गुरु गोविन्द सिंह ने अपने साथियों को धर्म युद्ध के लिये तैयार किया। उस समय की स्थिति को समझते हुऐ ऐसा करना बिल्कुल ठीक था।[9]

संदर्भ :

1. Allen, Wn. H.C., History of the Punjab
2. Cunnigham, H.D., History of the Sikhs.
3. Akbar, M., Punjab under the Mughals.
4. विचित्र नाटक, गुरु गोविन्द सिंह द्वारा लिखित
5. Gupta, Dr. H.R., Studies in later Mughal History of the Punjab.
6. सिंह मंडा तेजा सिंह, A short History of the Siksh.
7. Cunnigham, Sush-ph Davey, A History of the Sikhs, from the origin of the nation of the Battles of the Sutlej, London, 1849.
8. Sarkar, J.N. Fall of the Mughal empire, & Vol. Calcutta, 1932-50
9. Bannerjee, Indu Bhushan, Evolution of the Khalsa, Vol. I & II.

'भरत मुनि का रस सम्बन्धी विवेचन'

डॉ0 श्याम मनोहर पाण्डेय
सहायक आचार्य (हिन्दी)
राजकीय महाविद्यालय अकबरपुर,
कानपुर देहात

भरत ने नाट्यशास्त्र' में प्रश्न खड़ा किया है – नाटक क्यों? भरत मुनि के अनुसार श्रोताओं एवं दर्शकों में जो रस उत्पन्न करे वही नाटक सफल है। अर्थात रस की चर्चा भरत ने प्रासंगिक रूप में की है। रस नाटक का अनिवार्य तत्व है इस दृष्टि से भरतमुनि के लिए अपने ग्रन्थ'नाट्यशास्त्र' में रस विषयक चर्चा का समावेश करना नितान्त अनिवार्य था। यही कारण है कि रस सम्बन्धी सभी आवश्यक उपकरणों का विवरण इस ग्रन्थ में दिया गया है। भरत की चिन्ता है कि मंच पर रस का मूर्तिकरण कैसे हो? इसके लिए उन्होंने नट का पोशाक, नटों की संख्या आदि को भी विश्लेषित किया है।[1] 'नाट्यशास्त्र' के 'रस विकल्प' और 'भाव–व्यंजक' नामक छठें तथा सातवें अध्यायों में उन्होंने रस और भाव के स्वरूप का उल्लेख किया है। इनके पारस्परिक सम्बन्ध का निर्देश किया है। आठों रसों का परिचय देते हुए उन्होंने प्रत्येक रस के स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी, भाव और सात्विक भावों का नामोल्लेख किया है। रसों के वर्णों और देवताओं से अवगत कराया है तथा रसों के भेदों की चर्चा की है। भरत ने मूल रूप से चार रस माने हैं – श्रृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स। भरत ने श्रृंगार और हास्य, वीर तथा अद्भुत तथा भीभत्स और भयानक रस–युग्म का पारस्परिक कारण–कार्य भाव होने के कारण उत्पाद्योत्पादक सम्बन्ध स्वतः सिद्ध माना है। रौद्र और करूण में भी यह सम्बन्ध मन स्थिति के आधार पर परिपुष्ट है – सबल पक्ष का निर्बल पक्ष पर अकारण और निर्दयतापूर्ण क्रोध सामाजिक के हृदय में करूणा की उत्पत्ति कर देता है।

भरत का रस सिद्धाँत भाव पर आधारित है। भाव क्या है? इसको स्पष्ट करने के लिए भरतमुनि लिखते हैं –

''किं भावयन्ति भावाः?

उच्यंत – वागंगसत्वोपेतान्

काव्यार्थान भावयंतीति भावाः।''[2]

भरत ने रस – प्रकरण में भावों की संख्या 49 गिनाई है – 8 स्थायी भाव, 33 व्यभिचारी भाव और 8 सात्विक भाव।[2] 8 स्थायी भावों के अनुकूल रसों की संख्या भी इनके मत में आठ है किन्तु शान्त रस का उल्लेख इस ग्रन्थ में नहीं है। भरत मुनि के अनुसार स्थायी भाव ही अन्य शेष 41 भावों से संयुक्त होकर रसत्व को प्राप्त करता है। अतः स्थायी भाव एवं अन्य भावों में वैसा ही पारस्परिक (मुख्य – गौण) सम्बन्ध है जैसा राजा और उसके सहचर में होता है।[3]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि भरत ने स्थायी भावों और व्यभिचारी भावों के साथ स्तम्भ, स्वेद, वेपथु आदि सात्विक भावों को भी 'भाव' नाम से अभिहित किया है। डॉ0 सत्यदेव चौधरी के अनुसार–''सात्विक भावों को भाव की संज्ञा देना युक्ति संगत नहीं है। वस्तुतः मानसिक आवेग ही काव्य शास्त्र में 'भाव कहलाते हैं। सात्विक भावों के आधार निःसन्देह विभिन्न मानसिक आवेग हैं, पर उन आवेगों की प्रतिक्रिया स्वरूप ये स्वयं स्थूल रूप में प्रकट होते हैं। अतः जैसा कि आगामी आचार्यो के विवेचन से स्पष्ट है कि इन्हें, 'अनुभाव' की संज्ञा मिलनी चाहिए न कि भाव की।''[4] स्वयं भरत ने भाव की परिभाषा में कवि के मानसिक आवेगों को ही भाव नाम से पुकारा है –

''वागङग्मुखरागैश्च, सत्तवे नाभिनयेन च।

कवेरन्तर्गत भाव भावयन् भाव उच्यते।।

विभावेनाहृतों योऽय स्तवनुमानेन गम्यते।

वागडग्सत्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञित।''[5]

डॉ0 सत्यदेव चौधरी के विपरीत मराठी विद्वान दि0 के0 बेडेकर का मानना है– ''भरतमुनि प्रणीत 'भाव' कवि के अथवा रसिक के भाव नहीं है, इसका सबूत ही चाहिए तो 'कवेरंतर्गत भाव भावयन् भाव उच्यते' नामक प्रसिद्ध सूत्र में मिलता है। जल्दी जल्दी से ऊपरी–ऊपरी अर्थ लगाया जाये तो भाव का अर्थ है कवि के अंतर्गत भाव। इस तरह से उन सूत्रों में से 'नाट्यशास्त्र' के आधुनिक संस्करण के लिए उपयोगी अर्थ निकाला जा सकता है। एक बार 'कवेरंतर्गतभावं' कहा गया है। दूसरी बार आया हुआ 'भाव' पदार्थ है। सूत्र का सच्चा अर्थ यह है कि रति शोकादि नाट्य भाव कवि के मन के भावार्थों से यानी पर्याय से काव्यार्थों का भावन करते है।''[6]

भावों की इतनी चर्चा करने के बाद स्वभावतः एक अन्य प्रश्न उठता है कि भाव और रस का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? भरत मुनि के अनुसार इसमें एक दूसरे के प्रति कारण–कार्य सम्बन्ध है। भावों से विभिन्न रसों की निष्पत्ति होती है। रस की यह अभिनिर्वृति स्वतः नहीं हो जाती, इसके लिए भावों को अभिनय का आश्रय लेना पड़ता है और तभी हम कह सकते हैं कि अब कोई भी भाव ऐसा नहीं है, जिसमे रस न हो और कोई भी ऐसा रस नहीं है जिसमें भाव नहीं हैं–

''न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रस वर्जितः।

परस्पर कृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत्।''[7]

रस की व्याख्या करने वाला भरत का प्रसिद्ध सूत्र इस प्रकार है –

''न हि रसादृते कश्चिद् व्यर्थः प्रवर्तते।

विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः।''[8]

अर्थात विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। विभाव का अर्थ है रति, करूणा आदि भावों के कारण ये दो प्रकार के होते हैं–

कः आलम्बन, जिनके आधार से भाव जागृत होते हैं। जैसे– नायक–नायिका आदि। जिस व्यक्ति के मन में यह भाव टिकता है या उठता है, उसे आश्रय कहते हैं।

खः उद्दीपन, जो भावों को उदीप्त अर्थात उत्तेजित करते हैं। जैसे–बसंत, उपवन चाँदनी आदि।

अनुभाव भावानुभूति के अनुकर्म है अर्थात उसके व्यक्त प्रभाव है। जैसे स्मिति, कटाक्ष आदि। व्यभिचारी अस्थायी भाव हैं जो क्षण–क्षण में उठ–गिर कर स्थायी भाव की पुष्टि करते हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का संयुक्त रूप से साक्षात्कार करके दर्शक के मन में एक उत्कृष्ट आनंदमयी भावना का संचार होता है, यही रस या काव्यानन्द है। स्थायी भाव ही इन तीन तत्वों के संयोग द्वारा रस रूप को प्राप्त करते हैं लेकिन स्थायी भाव अर्मूत होता है। नट के माध्यम तथा विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से मंच पर रस का मूर्तिकरण होता है। स्थायी भाव के मूर्तीकरण को ही भरतमुनि ने रस का कारण माना है।

उपर्युक्त बातों का निम्नलिखित उदाहरण से अच्छी तरीके से स्पष्ट किया जा सकता है– ''कुशल नट और नटी दुष्यन्त और शंकुतला के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। ये पहले पहल तपोवन के रमणीय कुंजो में मिलते हैं (विभाव)। दोनों एक दूसरे के सौन्दर्य को देखकर चकित हो जाते हैं और उत्सुक नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखते हैं–अनिच्छापूर्वक जाती हुई शंकुतला चोरी–चोरी एक दृष्टिपात करती है (अनुभाव)। वियोग में कभी उत्कंठा और कभी निराशा से व्यग्र होकर एक दूसरे से मिलने को आतुर हो उठते हैं। (व्यभिचारी भाव)। सौभाग्य से शकुंतला सखी की सहायता से पत्र द्वारा दुष्यन्त पर अपना प्रेम प्रकट करने का अवसर प्राप्त करती है। इतने में ही दुष्यंत वहां आकर उपस्थित हो जाता है और इस प्रकार दोनों प्रेमियों का संयोग हो जाता है। जब यह सब (विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव आदि का संयोग) कविता, संगीत, रंग वैभव आदि की सहायता से, जिनको भरत ने नाट्य धर्मी कहा है, मंच पर प्रदर्शित किया जाता है तो प्रेक्षक के हृदय में वासना रूप में स्थित रति

स्थायी भाव जागृत होकर उस चरम सीमा तक उदीप्त हो जाता है जहाँ प्रेक्षक व्यक्ति और देश–काल का अन्तर भूलकर सामने उपस्थित घटना में उनमत्त हो जाता है, और चरमावस्था को प्राप्त उसका यह भाव उसे एक आनंदमयी चेतना में विभोर कर देता है। यही आनन्दमयी चेतना रस है।''

भरत मुनि की उपर्युक्त मान्यताओं से स्पष्ट है कि भरत ने रस चिन्ता में वैयक्तिक अनुभव की ओर ध्यान नहीं दिया है। भरत ने रस–निष्पत्ति पर नट की दृष्टि से विचार किया है। अतः भरत के लिए नाट्य ही रस है। भरत मुनि ने रस को भौतिक स्तर पर नहीं देखा है बल्कि भाव के स्तर पर देखा है।

सन्दर्भ :

1. 'नाट्यशास्त्र' – पृ0 79 (चौखंबा संस्कृत सीरिज)
2. 'नाट्यशास्त्र' – 7.6 (वृत्ति), पृ0–80
3. 'नाट्यशास्त्र' – 7.7 (वृत्ति), पृ0–81
4. 'भारतीय काव्य शास्त्र'– डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0–134
5. 'नाट्यशास्त्र' – 7.2.1
6. 'आलोचना' त्रैमासिक, अंक–92
7. 'नाट्यशास्त्र' – 6.36
8. 'नाट्यशास्त्र' – पृ0–7

महात्मा गांधी जी के तत्कालीन विश्व राजनीति पर विचार

डॉ. विवेक सेंगर
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

गांधी जी महान मानवता वादी विचारक थे और उनका दृष्टिकोण ''वसुधैव कुटुम्बकम'' का था किंतु इसके साथ ही वे राष्ट्र और राष्ट्रवाद के समर्थक थे। गांधी जी का कथन था कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने देश के प्रति कुछ विशेष कर्तव्य होते हैं जिन्हें उसके द्वारा आवश्यक रूप से पूरा किया जाना चाहिए लेकिन गांधीजी कभी भी संकीर्ण या उग्रराष्ट्रवाद के प्रणेता नही थे। वे एक रचनात्मक एवं मानववादी राष्ट्रीयता के उपासक थे जिसके आधार पर ही अंतर्राष्ट्रवाद के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। गांधीजी कभी भी राष्ट्रवाद को अन्तर्राष्ट्रवाद के मार्ग में बाधा नहीं समझते थे उनकी धारणा थी कि मेरे विचार में बिना राष्ट्रवादी हुए अन्तर्राष्ट्रवादी होना असंभव है। अन्तर्राष्ट्रवाद तभी संभव है जबकि राष्ट्रवाद एक यथार्थ बन जाए।

भारत की स्वाधीनता संग्राम में भी राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता की यह अन्योन्याश्रिता ही गांधीजी की मार्गदर्शक रही गांधी जी ने राष्ट्रीयता को कभी भी संकीर्ण, स्वार्थी और एकाकी अर्थों में ग्रहण नहीं किया और भारत की राष्ट्रीय संघर्ष में मानवता के व्यापक हितों की अवहेलना कभी नहीं की। उन्होंने लिखा कि ''मैं भारतवर्ष का उत्थान इसलिए चाहता हूं ताकि संपूर्ण विश्व का हित हो सके मैं भारत वर्ष का उत्थान दूसरे राष्ट्रों के विनाश पर नहीं चाहता, मैं उस राष्ट्रभक्ति की निंदा करता हूं जो हमें दूसरे राष्ट्रों के शोषण तथा मुसीबतों से लाभ उठाने के लिये उत्साहित करती है।''

गांधीजी ने विभिन्न देशों में चल रहे स्वतंत्रता संघर्षों के प्रति सदैव सहानुभूति की अभिव्यक्ति की। आयरलैण्ड तथा मिश्र की जनता एवं तुर्की की सरकार का समर्थन किया। 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस ने भारतीयों से अपील की वे पश्चिम एशिया में लड़ने के लिए सेना में भर्ती न हों। मई 1921 में गांधीजी ने घोषणा की कि यदि अफगानिस्तान पर हमला हुआ तो भारत के लोग उसका विरोध करेंगे। राष्ट्र संघ (League of Nations) की मैण्डेट प्रणाली (Mandate System) को कांग्रेस ने साम्राज्यवादी लालच को ढकने का औजार बताया। 1921 में बर्मा (म्यामांर) भारत का ही एक अंग था। कांग्रेस ने बर्मा के लोगों को उनके स्वाधीनता संघर्श के लिए शुभकामनाऐं दी और घोषणा की कि यदि भारत आजाद हुआ तो वह बर्मा को भी आजाद कर देगा। इस संदर्भ में गांधीजी ने 1922 में लिखा– ''मुझे इस बात का कभी गर्व नही हुआ कि बर्मा को ब्रिटिश भारत में सम्मिलित कर लिया गया है, वह न तो कभी भारत का हिस्सा था और न होना चाहिए। उनकी अपनी एक अलग सभ्यता रही है।'' 1924 में कांग्रेस ने बर्मा में रह रहे भारतीय मूल के लोगों से कहा कि वे बर्मी जनता की कीमत पर अपने लिये अलग अधिकारों की मांग न करें।

1925 में गांधीजी ने ब्रिटेन के निर्देश पर चीनी छात्रों पर गाली चलाने के लिए भारतीय सैनिकों को प्रयोग के अपमानजनक बताते हुऐ कहा है कि भारत को सिर्फ भारत के शोषण के लिए ही गुलाम नहीं रखा जा रहा है, बल्कि इसलिए भी कि इससे ब्रिटेन को चीन जैसे महान और प्राचीन राष्ट्र का शोषण करने में सहूलियत होती है।

1927 में कांग्रेस द्वारा सरकार से मांग की गई कि मेसोपोटामिया, ईरान आदि से भारतीय सेनाओं को वापस बुला लेना चाहिए तथा 1928 में कांग्रेस ने मिस्र, सीरिया, फिलीस्तीन, ईराक और अफगानिस्तान के लोगों को राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में अपना पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया।

गांधीजी ने सितम्बर 1933 में नेहरू को लिखा कि हमें यह बात पहचाननी चाहिए कि हमारे राष्ट्रवाद का प्रगतिशील अन्तर्राष्ट्रवाद से कोई विरोध नहीं है। हमें स्वयं को सदैव प्रगतिशील शक्तियों की पंक्ति में रखना चाहिए। राष्ट्रवादी विदेशनीति में 1936 के बाद काफी सक्रियता आई। इटली, जर्मनी

और जापान में क्रमशः फासिस्ट, नाजीवादी एवं सैनिक सरकार स्थापित हो चुकी थी और अब वे पूंजीवादी राष्ट्रों के उपनिवेशों में अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिए उद्वत थे। कांग्रेस ने फासीवाद के इन विभिन्न रूपों की भर्त्सना की एंव फासीवाद आक्रमण के खिलाफ इथियोपिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया और चीन की जनता के संघर्ष को पूरा समर्थन दिया था। गांधीजी ने फासीवाद का तीव्र विरोध किया। उन्होंने यहूदियों के सामूहिक नरसंहार का करने पर एडोल्फ हिटलर की पुरजोर भर्त्सना की। उन्होंने लिखा ''यदि मानवता के नाम पर मानवता को बचाने का कोई युद्ध हो सकता है, तो जर्मनी के विरूद्ध युद्ध करना, एक पूरी जाति के उन्मादपूर्ण प्रताड़ना को रोकना पूर्णतः उचित होगा।''

स्पेन के गृहयुद्ध की विभीषिका से दुःखी होकर 13 अक्टूबर 1938 को गांधीजी ने स्पेन के प्रधानमंत्री जुआन नेग्रिन को संदेश भेजा ''मैं तहेदिल से आपके साथ हूं। आपकी पीडा से सच्ची स्वतंत्रता का जन्म हो।''

गांधीजी, नेहरू तथा कांग्रेस की भारतीय राष्ट्रवादी विदेश नीति की जटिलता, मानवतावादी रूख और साम्राज्यवादी विरोधी सार का परिचय फिलीस्तीन समस्या के प्रति उसके दृष्टिकोण से मिला। भारतीयों को यहूदियों से सहानुभूति थी, क्योंकि उन्हें बेवजह परेशान किया जा रहा था तथा नाजी यहूदी जाति को ही खत्म कर देना चाहते थे। पर साथ ही साथ भारतीय यह भी पसंद नहीं करते थे कि यहूदी अरबों का हक छीनें। फिलिस्तीन में उन्होंने अरबों का समर्थन किया और यहूदियों से अपील की कि वे अरबों के साथ मिलकर शांतिपूर्ण समझौता करें। यूरोप में यहूदियों की दुर्दशा पर गांधीजी ने लिखा कि मेरी सहानुभूति पूरी तरह यहूदियों के साथ है लेकिन यह भी गलतऔर अमानवीय होगा कि यहूदियों को अरबों पर लाद दिया जाऐ अरबों मुसलमानों को उनके मूलस्थान से विस्थापित करना मानवता के प्रति अपराध होगा।

1928 में गुजरात विद्यापीठ के छात्रों से बातचीत करते हुए रूस की अक्टूबर क्रांति की चर्चा करते हुए गांधी जी ने निजी सम्पत्ति को समाप्त कर देने की बोल्शेविक क्रांति के आदर्शों की तारीफ की लेकिन साथ ही साथ इस बात के लिए बोल्शेविको की निंदा की कि उन्होंने यह कार्य हिंसा के माध्यम से किया है।

द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीयों को उनका मत जाने बिना युद्ध में भाग लेने का गांधीजी और कांग्रेस ने भरसक विरोध किया क्योंकि गांधीजी का मानना था कि फासिस्ट चुनौती का सफलतापूर्वक मुकाबला तभी किया जा सकता है जब साम्राज्यवादी राष्ट्र उपनिवेशों को छोड़ दें। अगर भारत को तुरंत स्वतंत्रता दे दी जाए तो वह फासीवाद विरोधी युद्ध में सक्रियता पूर्वक भाग ले सकता है। लेकिन अगर भारत की जनता, भारत के पैसे और संसाधनों का प्रयोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के फायदे के लिए किया गया तो उसका विरोध किया जायेगा।

गांधी जी ने जर्मन चांसलर हिटलर को पत्र लिखकर हिंसा रोकने की पुरजोर कोशिश की।गांधीजी ने अमेरिका द्वारा जापान में हिरोशिमा, नागासाकी पर परमाणु बम गिराने से होने वाले नरसंहार पर दुःख व्यक्त किया और परमाणु बम को मानव के हाथों में शैतानी ताकत बताया।

गांधीजी ने भारत विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान सरकार को दिये जाये वाले 75 करोड़ रूपये में से 55 करोड़ रूपये की राशि शीघ्र ही दिये जाने की मांग की। नेहरू–पटेल द्वारा इंकार करने पर गांधी जी ने आमरण अनशन (13–18 जनवरी 1948) आरम्भ किया फलस्वरूप भारत सरकार ने पाकिस्तान सरकार को 55 करोड़ रूपयेदिये। यह गांधीजी की महानता का परिचायक है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि गांधीजी एक महान मानववादी चिन्तक थे। उन्होंने बल्कि शोषित राष्ट्रों को भी सत्य, अहिंसा के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। साथ ही भारतीय हितों की रक्षा के लिए अन्य देशों के हितों की तिलांजलि नहीं दी। गांधीजी सत्य, अहिंसा, शांति के सिद्धांत को केवल भारत और भारतीयों के लिये ही नहीं अपितु पूरे विश्व में प्रयुक्त करना चाहते थे गांधीजी ने अपने विचारों एवं कार्यों से समसामयिक विश्व पर गंभीर प्रभाव डाला है। गांधीजी हर उस देश प्रजाति एवं धर्म के साथ सहानुभूति रखते थे जो कि किसी अन्य देश, प्रजाति एवं धर्म द्वारा उत्पीड़ित हो।

सन्दर्भ :

1. गांधी और गांधीवाद (एक अध्ययन)– डॉ.बी. पट्टाभि सीतारमैया हिन्दी रूपान्तर वेदराजवेदालंकार–शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं.लि., आगरा। प्रथम हिन्दी संस्करण 1957।
2. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष– सं. विपिन चंद्र हि.मा.का.नि. दिल्ली वि.वि.–1995
3. आधुनिक भारत (1885–1947) सुमित सरकार–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–1995
4. भारत में राष्ट्रवाद– सं. सत्या एम. राय, हि.मा.का.नि. दिल्ली वि.वि.–1991
5. भारत का मुक्ति संग्राम अयोध्या सिंह– मैकमिलन प्रकाशन दिल्ली 1996 ।
6. आधुनिक भारत का इतिहास–सं. रामलखन शुक्ल, हि.मा.का.नि. दिल्ली वि.वि.–1999
7. आधी रात को आजादी– लैरी कॉलिन्स एवं दामिनिक लैपियर, अनु प्रकाशन, जयपुर–2005
8. Gandhi and Ideology of Non Violence-S.R. Bakshi, Criterion Pub. New Delhi. 1986
9. The Transfer of Power in India- V.P. Menon Orient Longmans. Delhi-1957

Vol. XVI, [Issue No. 1, 2 & 3 combined], Jan.– Dec. 2019, ISSN: 0970-1745

1857- Declaration of First Conflict of Indian Independence

Pritam Kumar
Assistant Professor
Department of Defence Strategic Studies
Shri Varshney College, Aligarh

There was a significant threat to British rule in India, when a number of Indian soldiers of the BritishIndian army rose in revolt in 1857 against their officers and against the colonial regime in general. This revolt of the soldiers struck a sympathetic chord among many people who had their own reasons to be dissatisfied with the British rule.

The Revolt of 1857 is a significant event in modernIndian history. The British took serious note of it, and considerably changed their policies in the wake of the Revolt. Some of the members of the ruling colonial elite chose to ignore the popular character of the revolt and labeled it merely as a 'sepoy mutiny.' Nationalist elite, which took shape in the last two decades of the nineteenth century to lead a successful anti-colonial political campaign, glorified it as the 'first war of Indian independence.' Memories of Revolt had lain deep in the awareness of both colonial rulers and the Indian subjects. [1]

British rule inIndia,which can be said to have come into being after the Battle of Plassey in 1757, was initially established in Bengal and then gradually spread to other regions. Being economically exploitative and destructive of the social fabric, it encountered resistance right from the beginning. There were innumerable peasant revolts which broke out in different parts of the country, some of the prominent ones being the Kol Uprising of 1831, the SanthalUprising of1855, and theKutch.Rebellion which lasted from 1816 until 1832. Dissatisfaction among the Indian soldiers of the British Indian armyalsohad some history.Indian soldiers had grievances on economic, social and religious grounds. A significant mutiny to happen before the 1857Revolt was the Vellore (Tamil Nadu, South India) Mutiny of 1806 which was brutally crushed by British officers and soldiers. Ever since the Vellore Mutiny, unofficial political committees of soldiers were a regular feature of army life in India.[2]

As already noted, 1857 Revolt consisted both of rebellion by the sepoys or soldiers and reaction from sections of the general Indian population. Peasants were an important segment of Indian society. Uprising among the sepoys and peasants was even more directly related in that the sepoys were, in their origins, peasants with close ties with their kinspeople in the villages. Many of the sepoys came from Awadh, a region currently incorporated in the Indian state of Uttar Pradesh, a region that also saw massive peasant uprisings. Awadh, one of the main centers of the Revolt, was annexed by Lord Dalhousie, Governor General of India, in 1856.

The British removed talukdars, traditional landowners of the region, promising a better deal for the peasants.But in reality, condition of the peasants only got worse. Heavy overassessment of land revenue impoverished them. While talukdars appropriated the surplus peasants produced, they were limited and constrained by the relations of mutual interdependence between the Raja and the peasant and the traditional worldview of social norms and obligations. British conquest assaulted this traditional worldview, and removal of the king had an emotional impact on the people of Awadh.[3]

Awadh was only one of the regions where the Revolt took place. Other areas affected by the Revolt were Rohilkhand, Bundelkhand, parts of Bihar, parts of Punjab, and Central India. While northern, eastern and central regions of the country were affected by the Revolt, western and southern regions remained more or less aloof. The storm centers of the Revolt were Delhi, Kanpur, Lucknow, Bareilly and Jhansi. Bakht Khan was the rebel leader in Delhi and he took the fight to Lucknow.[4]

In Kanpur, Nana Sahib, adopted son of Baji Rao II, the last Peshwa of the Maratha kingdom, led the Revolt. The British had earlier refused to recognize Nana Sahib as the legitimate successor of the Peshwas. Tantia Tope, one of the loyal followers of Nana Sahib, is remembered for his valiant fight against the British. Revolt at Lucknow was led by the Begum of Awadh who proclaimed her young son Nawab. Young Rani Lakshmibai of Jhansi joined the Revolt when the British refused to acknowledge her right to adopt an heir to the deceased local king.

Kunwar Singh, a ruined and discontented zamindar near Arrah in the state of Bihar, was the chief organizer of the Revolt in the area. The Revolt carried on as late as 1859 in some instances before it was finally crushed. A number or- these heroes and heroines of the Revolt have been immortalized through the folklorization of their valiant battles in modern and contemporary India.

Any revolt of significance usually has a number of causes which fester for a number of years, yet there is that final spark that launches it. In the case of the 1857 Revolt, that spark came as the episode of greasedcartridges. The grease of the cartridges, whose end had to be bitten off before loading in the newly introduced Enfield rifle, was sometimes made from beef or pig fat, types of meat taboo to Hindus and Muslims respectively.[5]

Introduction of the new cartridges hurt the religious sentiments of the soldiers and made them suspect that the government was trying to destroy their religion. While this might have been the immediate spark, suspicion that the new government was out to destroy their religion and caste had plagued the Indian people for a long time. The government had undertaken some aggressive social reform measures in the first half of the 19th century. There were also numerous endeavors by the missionaries to spread Christianity inIndia, which the government did not seriously discourage.[6]

A number of Muslim revivalist groups, Wahabis in particular, played an important role in the Revolt. Tipu Sultan of Mysore was well known for his opposition to the British rule. Faraizis,a revivalist movement founded in Bengal in 1804, united the peasantry against the exactions of the new zamindars in the name of resuscitated faith. According to the traditional Muslim perspective, the whole land, from Delhi to Calcutta, had passed into the possession of the ‘Nasranis’ (the British), and India ceased to be the ‘land of Islam’. It was henceforth considered ‘enemy territory’[7] It was incumbent upon Muslims to wage a jihad or holy war against the British or migrate to some free Muslim country. There was broad unity among different sections of the Muslim community --expropriated aristocrats, mined handicraftsmen, frustrated Ulema and discontented soldiers -- in the sentiment against the British rule. The Wahabis enjoyed the backing of a network of organized centers spread all over northern India and moral influence over Muslim intelligentsia in the entire country.

In the 1840s, Wahabi leaders formed contacts with unofficial political committees of soldiers in the British Indian army, and introduced to them techniques of conspiratorial work through a chain of hospices and secret agents. It was out of such traditions and contacts that elected committees of soldiers emerged in Delhi and Lucknow in 1857 which virtually took over the government. In the post-Mutiny period, belief about Muslim responsibility for the

Revolt was so strong among the British officials that Sayyid Ahmed Khan had to wage active and incessant efforts to rescue Muslims of the stigma of disloyalty.

Hindus and Muslims united in their opposition to the British. The rebel government of Bakht Khan in Delhi abolished taxes on articles of common consumption, penalized hoarding, and as a gesture of goodwill to the Hindus, banned cow slaughter. Hindu rebel leaders reciprocated by accepting the proclamation of Bahadur Shah as the symbolic head of the rebel government and by maintaining all the Mughal state symbols. The emphasis was on pre-British Hindu-Muslim coexistence within the Mughal imperial framework. Bahadur Shah's proclamation emphasized the standards of both Muhammad and Mahavir. One group which kept away from trouble and opposition to the British was the English-educated Bengali intelligentsia. This group owed its ascendancy to conditions of the new rule, and some of its members were descendants of the new Bengali zamindars, a class of upstarts created by the Permanent Settlement in Bengal It is curious to note that some members of this elite group would turn against the British later, thirty or forty years after the 1857 Revolt.[8]

1857 Revolt was not a class revolt, aspeasantry did not rebel against the landlords. Peasantry mainly directed attacks against money-lending grain dealers or the representatives / emblems of the British Indian government. British policies alienated aristocracy, priesthood as well as peasant proprietary classes. Rural magnates, or the landowning class of leadership, strongly influenced how any particular region as a whole was going to react. The Revolt, in Awadh as well as in other regions, was popular, in that it pertained to people as a whole and was carried out by them. Talukdars and peasants in Awadh fought together against a common foe. While we speak of the Revolt of 1857 as one revolt for reasons of simplicity, in actuality it was not one movement but many. The lineaments of the Revolt differed vastly from district to district, and even village to village. Variability of the Revolt was determined by the local specifics of ecology, tenurial forms, and variable impact of the colonial rule.

Marx was the earliest commentator to recognize the 'national' character of the 1857 Revolt. Writingin 1857 itself, he commented that the British in creating a native army had simultaneously organized the "first general centre of resistance which the Indian people was ever possessed of." He also noted that Muslims and Hindus had combined against their common masters by renouncing their mutual antipathies. Noting the sense of outrage in the British press regarding the atrocities committed by the Indian sepoys, Marx said that their conduct was only a reaction in a concentrated form to England's own record in India during the foundation of the empire and after. It was a kind of historical retribution. He noted the deliberate exaggeration of the outragesby Indians, while the English cruelties were related as acts of martial vigor.[9]

Strictly speaking, Revolt of 1857 cannot be described 'national', for national would entail a reaction to colonial rule in modernist terms. Rebels of 1857 did not have that modernist vision. They did not fully comprehend the nature the new regime that overwhelmed India. They did not have a viable alternative program of action in the case of overthrow of the colonial regime. This lack of vision can be said to be the main reason for their defeat. But the Revolt can be described 'national' in another important sense.This was the first time that soldiers of the Indian army recruited from differentcommunities, Hindus and Muslims, landlords and peasants, had come together for the first time in their opposition to the British. While unity in the above terms was not adequate to the task of overthrow of British rule, it certainly provided the necessary foundation that the later successful anti-colonial struggles could build upon.

REFERENCES:

1. Chandra, Bipan. Modern India. Delhi, 1976.
2. Joshi, P.C. (Ed)-Rebellion 1857: A Symposium. New Delhi, 1957.
3. Marx, Karl and F. Engels, The First Indian War of Independence, 1857-1859. Moscow, 1959.
4. Mukherjee, Rudrangshu. Awadh in Revolt 1857-1858: A Study in Popular Resistance. Delhi, 1984.
5. Stokes, Eric. The Peasant Armed: The Indian Revolt of 1857. Oxford, 1986.
6. Mazumdar, R.C. British Paramountcy and the Indian Renaissance: The history and culture of the Indian people. Vol IX.
7. Majumdar, R.C. – The sepory mutiny and the Revolt of 1857.
8. Chaudhri, S. B. – Theories of the Indian Mutiny, 1857.
9. Embree, A.T. – 1857 in India.

रवीन्द्र कालिया के 'सिर्फ एक दिन' कहानी संग्रह का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ0 रिपुंजय कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
एस0एन0आर0के0एस0 कॉलेज,
सहरसा (बिहार)

1. 'सिर्फ एक दिन'

देश में शिक्षितों की संख्या लगातार बढ़ रही है और उसकी तुलना में रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। बेरोजगारी का आलम यह है किआई.ए.एस. का सपने देखने वाला युवा क्लर्की का फॉर्म भी भरने के लिए मजबूर है। रोजगार के जो अवसर हैं भी, उन पर नियुक्ति के लिए सिफारिश की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में उसका आदर्शों से मोहभंग होना स्वाभाविक है। 'सिर्फ एक दिन' कहानी के नायक को जवाहरलाल नेहरू के 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' के लिए वाक्य 'हमें मेहनत करनी है, जुटकर काम करना है, जिससे हम अपने सपनों को साकार कर सकें' याद करके पैरोडी करने में आनंद आता है, ''हमें मेहनत करनी है, सिफारिश से काम लेना है, जिससे हम अपने सपनों को साकार कर सकें।''[1]

पारिवारिक दबाव और दूसरों को मिलती सफलता की वजह से उत्पन्न कुंठा का स्वाभाविक चित्रण कहानी में है। कहानी के नायक का हमेशा सोना, ऊंघना और ऊबना उसकी निराशा एवं हताशा का परिचायक है। वस्तुतः इस कहानी का 'सिर्फ एक दिन' मध्यवर्गीय परिवार का प्रतिदिन है। कहानीकार को इस कहानी में विडम्बना, विसंगति, कुंठा, ऊब, घुटन, संत्रास आदि को व्यक्त करने में सफलता मिली है, जो कि अकहानी की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

2. 'त्रास'

'त्रास' कहानी में देर से घर लौटने वाले, सिगरेट पीने वाले और अकेले रहने वाले बेटे पर माँ की ममता का चित्रण है। बेटा अकेला रहता है। अपने परिवार से दूर। माँ कुछ समय के लिए उसके पास आती है। वह उसकी दिनचर्या उसके खान–पान और सेहत के प्रति असंतोष व्यक्त करती है। माँ के बेटे के प्रति वात्सल्य कुछ यूं व्यक्त होता है, ''वह बोलता जा रहा था और माँ बहुत निरीहता से उसकी ओर ताक रही थी, जैसे अपने आँखों के सामने उसकी मृत्यु देख रही हो।''[2]

3. 'कोजी कार्नर'

पाश्चात्य परंपरा भारतीय परम्परा को प्रभावित कर रही है। भारतीय परम्परा में विवाह एक बंधन है, जिसमें सात जन्मों तक साथ रहने की कसमें खाई जाती हैं। जबकि पाश्चात्य परंपरानुसार विवाह मात्र एक समझौता है। 'कोजी कार्नर' कहानी भी पाश्चात्य प्रभाव के कारण पति–पत्नी के टूटते रिश्तों की तरफ दशारा करती है। 'कोजी कार्नर' की मुख्य नायिका महानगरीय जीवन के संत्रास, घुटन, अकेलेपन आदि विसंगतियों के दंश को झेलती है। कहानी में उसका अकेलापन और उससे उत्पन्न अपने अस्तित्व का संकट दिखाई पड़ता है। परित्यक्ता होने के बावजूद उसे अपने पति की याद आती है। वह अपने देवर निन्नी से उनके बारे में पूछती रहती है। वह सौतन के बारे में भी जिज्ञासु है। 'कोजी कार्नर' कहानी स्त्री की नियति का वास्तविक आख्यान है, जिसमें पुरुषवादी मानसिकता और स्वच्छंदता का शिकार स्त्री बनती है और स्त्री की कोमल संवेदनाओं का पुरुष की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। यह इस बात से भी जाहिर होता है कि, ''दो साल पहले जनवरी में वह गहरे पीले रंग का इटैयिन स्कार्फ पहना करती थी, जिससे आजकल भाई साहब बूट साफ किया करते हैं।''[3]

4. 'ब.....बेशर्मी'

'ब.....बेशर्मी' कहानी समाज की पुरुषवादी मानसिकता पर प्रहार करती है। कहानी में नौकर गोपालराव के माध्यम से कहानीकार ने पुरुषवादी मानसिकता के दोहरेपन को उजागर किया है।

गोपालराव का मालिक पंजाबी अपनी पत्नी पंजाबन की अनुपस्थिति में दूसरी लड़कियों को घर पर किसी न किसी बहाने बुलाता है। बातें करता है लेकिन ये सारी बातें नौकर गोपालराव को सिर्फ इसलिए बुरी नहीं लगती क्योंकि उसका मालिक एक पुरुष है। जबकि कॉलोनी की लड़की अनुराधा को वह सिर्फ इसलिए चरित्रहीन या 'बुरी लड़की' की श्रेणी में डाल देता है, क्योंकि वह एक स्त्री है, ''साहब वह अच्छी लड़की नहीं है वह हरेक से दोस्ती रखती है और सबसे हँस–हँस कर बात करती है।''[4] पंजाबी मालिक अपने कृत्य को खिड़की पर काली फिल्म लगाकर ढंकना चाहता है जबकि अनुराधा बेझिझक उसके घर आती है और लोगों से बातें भी करती है। इस तरह कहानी पुरुषवादी मानसिकता पर प्रहार करती हुई स्त्री और पुरुष के लिए अलग–अलग स्थापित सामाजिक एवं नैतिक मानदंडों पर करारी चोट करती है। विडम्बना यह है कि खुद 'बेशर्मी' करने वाला पुरुष समाज स्त्री को शर्म सिखाने में उत्साह से आगे रहता है।

5. 'संदल और सिन्थाल'

हिन्दी कहानी में श्लीलता और अश्लीलता की बहस को चुनौती देती हुई कहानी है। 'अकहानी' के पहले दाम्पत्य–जीवन में यौन संबंधों का स्वच्छन्दतापूर्वक चित्रण कम मिलता है। मिलता भी है तो वहाँ सामाजिक मर्यादा के नाम पर दाम्पत्य–जीवन के दैहिक जरूरतों को नजर–अंदाज कर दिया जाता है। 'संदल और सिन्थाल' कहानी में कहानीकार इन्हीं वर्जनाओं को तोड़ने की कोशिश करता है। इसका नायक इंदरजीत आनंद प्रेम विवाह करता है। समय के दबाव में आकर लेक्चरर नहीं बन सका बल्कि एक ट्यूटर बनकर रह जाता है। सीमित आमदनी में अपनी पत्नी को खुश रखने की कोशिश करता है। इस कहानी में मनोविश्लेणवाद का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है, जिसमें नायक द्वारा अपनी पड़ोसन को अर्ध–नग्न अवस्था में देखकर आनंद की अनुभूति होती है।

6. 'क ख ग'

'क ख ग' अस्पताल जीवन पर लिखित महत्त्वपूर्ण कहानी है। यह अस्पताल के तमाम षड्यंत्रों, अमानवीयता और खोखलेपन पर प्रहार करती है। अस्पताल के कर्मचारियों को मरीजों की देखभाल एवं प्राण–रक्षा के लिए सरकार से अच्छा–खासा वेतन मिलता है लेकिन अस्पताल के कर्मचारियों में कर्तव्य बोध का अभाव है। नर्सें जो सेवा भावना के उद्देश्य से ही चिकित्सा की दुनियां में आती हैं, कुछ समय बाद उन्हें भी मरीजों की सेवा से चिढ़ होने लगती है, वे अपनी ड्यूटी नहीं समझती हैं। कार्यस्थल पर ही अपने को 'मेडिकल कॉलेज के फाइनल इयर के छात्र से प्रेम–प्रसंग में तल्लीन कर लेती हैं। अस्पताल में हो रही मौतें उन्हें विचलित नहीं करती हैं। अस्पताल में भर्ती मरीजों, प्रतीक्षारत मरीजों और उनके तीमारदारों की परेशानियों का यथार्थ चित्रांकन यह कहानी करती है। मौसम खराब होने पर मरीजों और उनके तीमारदारों की परेशानियाँ और बढ़ जाती हैं।

7. 'दो सौ ग्राम प्रेम पत्र'

'दो सौ ग्राम प्रेम पत्र' एक प्रेम कहानी है, जिसमें एक शिष्या अपने प्रोफेसर से प्रेम करती है। वह इतना प्रेम करती है, कि किसी दूसरी लड़की का प्रोफेसर द्वारा चॉकलेट खाना भी उसे पसंद नहीं है वह रोने लगती है। प्रोफेसर द्वारा उसके सेव को डस्टबिन में फेंक देना भी उसे बहुत आहत करता है। वास्तव में इस कहानी में एक दुनियादार चालाकी की जीत होती है और प्रेम की कोमल संवेदनाओं की हार। शिष्या अप्पी की गलती सिर्फ इतनी है कि वह अपनी बड़ी बहन के पत्रों की हू–ब–हू नकल करती है। उसकी भावनाओं में कहीं कोई कमी नहीं है मगर धूर्तता या व्यावहारिकता का प्रतीक प्रोफेसर उसे खारिज कर देता है। प्रोफेसर का शिष्या की कोमल भावनाओं तक न पहुँच पाना, उसकी घोर उपेक्षा ही कहानी को मार्मिकता प्रदान करती है। प्रेम की प्रोफेसर की नजर में क्या कीमत है यह कहानी के अंत में उसके ठहाके लगाने से स्पष्ट हो जाता है। यह कहानी संवेदना से अधिक व्यावहारिकता को महत्त्वपूर्ण बताकर धूर्त पुरुष समाज की क्रूरताओं का पर्दाफाश करती है।

8. 'रात के घेरे : नन्हें पाँव'

'रात के घेरे : नन्हें पाँव' रवीन्द्र कालिया की कॉलेज मैगजीन में छपी कहानी है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह उनकी बिल्कुल आरंभिक कहानियों में से है। इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार के दैनंदिन उलझे हुए जीवन का चित्रण है। सभी की अपनी–अपनी विवशतायें हैं। आवश्यकतायें हैं और

सीमाएँ भी हैं। नौकरीपेशा होने पर व्यक्ति परिवार को अपेक्षित समय नहीं दे पाता। घर और कार्यालय के बीच पिसता मध्यवर्गीय व्यक्ति लगातार चिड़चिड़ा और संवेदनाशून्य होते जाने के लिए अभिशप्त है। उन्हीं दबावों की वजह से ऐसे व्यक्ति बीमार लोगों पर भी क्रोध करने से बाज नहीं आते। वहीं बीमार व्यक्ति यह अपेक्षा करता है कि लोग उसके पास रहें। बराबर उसका हलाचाल पूछें। ऐसा न होने पर उसे दुःख होना स्वभाविक है। कहानी एक किशोर के मनोविश्लेषण में भी सफल हुई है। किशोर जो अभी ठीक से युवा भी नहीं हो पाया है। अपनी पारिवारिक स्थितियों को देखकर बेचैन होता है। वह भी मानसिक अंतर्द्वन्द्व का शिकार है क्योंकि माँ–बाप दोनों अपने हैं। इसलिए वह दुखी होता है। और सोचता है, ''पापा बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। नौकरी भी तो जरूरी है। लेकिन माँ भी तो गलती पर नहीं है। पापा दवा की बात ही क्या हाल ही नहीं पूछते।''[5] उसके दुःख का कारण यह भी है कि वह अभी न चिड़चिड़ा हो पाया है और न ही संवेदनाशून्य। कहानी ऐसे बच्चों की यथार्थ स्थिति को भी रूपायित करने में सफल हुई है। कहानी अनेक मध्यवर्गीय भारतीय परिवारों में निरंतर बढ़ते जा रहे पारिवारिक कलह को रूपायित करती है।

9. 'खोटे सिक्के'

यह कहानी विश्वास और वंचना के द्वंद्व पर आधारित है। एक व्यक्ति जो लोगों पर इतना विश्वास करता है कि उनके द्वारा दिए गए खोटे सिक्के भी रख लेता है। उसी समाज के लिए उसकी संवेदना, उसका विश्वास सिर्फ क्रीड़ा एवं कौतूहल की वस्तु है। रवीन्द्र कालिया समाज में विश्वास के नाम पर धोखा–धड़ी करने वाले वर्ग के क्रूर यथार्थ से परिचित कराते हैं। यह समाज रामजस जैसे सीधे–सादे लोगों के सीधेपन का सहारा लेकर खोटे सिक्के चला देने का कोई मौका नहीं छोड़ता। 'खोटे सिक्के' व्यक्ति के टूटते हुए विश्वास की कहानी है, जहाँ व्यक्ति को अपना सीधापन छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है। ''रामजस ने निर्णय ले लिया कि अब वह कभी किसी से खोटा सिक्का नहीं लेगा, और किसी ने खोटे सिक्के देने की कोशिश की तो उसकी कस कर मरम्मत कर देगा।''[6] विश्वास के टूटने की पीड़ा और समाज की दृष्टि में एक व्यक्ति को कोमल संवेदनाओं की तुच्छ अहमियत कहानी में महसूस की जा सकती है।

10. 'गर्म हाथ'

'गर्म हाथ' कहानी आजादी के बाद रोटी और रोजगार के लिए निरंतर संघर्षरत युवाओं की सच्ची दास्तान है। जो युवा ठीक–ठाक पढ़ाई–लिखाई कर यह सपने देखता हो कि अपने पास ''एक छोटी सी कार हो, सुंदर सी बीवी हो, खूबसूरत सा बच्चा हो और अच्छी सी नौकरी हो।''[7] और ''अपनी तो यही इच्छा है कि एक बार इंजिनियर बन जाएँ बाकी फिर देखेंगे।''[8] आधुनिक व्यवस्था युवाओं में हताशा भर रही है तभी तो कपिल यह कहने के लिए विवश है कि ''मेरी कोई निश्चित इच्छा नहीं सब कुछ बन जाना चाहता हूँ। इंजिनियर, डॉक्टर, राइटर और मजिस्ट्रेट।''[9] इंजिनियर, डॉक्टर, राइटर और मजिस्ट्रेट बनने का स्वप्न देखने वाला युवक मोटर मेकेनिक बनने के लिए अभिशप्त है क्योंकि उसके बाप के पास फीस देने के लिए पैसे नहीं हैं। कहानी सभी से श्रम एवं मानवता के सम्मान की अपील करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ– रवीन्द्र कालिया, पृ0 49
2. रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ– रवीन्द्र कालिया, पृ0 61
3. वही, पृ0 63
4. रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ– रवीन्द्र कालिया, पृ0 74
5. रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ– रवीन्द्र कालिया, पृ0 99
6. रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ– रवीन्द्र कालिया, पृ0 105
7. वही, पृ0 107
8. वही
9. वही, पृ0 108

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य एवं कार्य तथा भारत को इससे क्या सहायता मिली है

डॉ0 विमलांशु शेखर पाठक
असिस्टेंट प्रोफेसर, बी० एल० एन० एल०
बोहरा कॉलेज, राजमहल (झारखण्ड)

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद यह अनुभव किया जाने लगा कि अगर मौद्रिक अस्थिरता का वातावरण अर्थव्यवस्था में व्याप्त रहेगा तो अंतर्राष्ट्रीय शांति खतरे में पड़ सकती है। फलतः Britain woods conference में 44 देशों के प्रतिनिधि के समक्ष एक मौद्रिक प्रस्ताव लाया गया इस प्रस्ताव के जन्मदाता इंगलैण्ड के J. M. Keynes तथा अमेरिकी मौद्रिक अनुसंधान के निदेशक Dr. D. Henry white के निर्देशन में पास किया गया फलतः अंतराष्ट्रीय क्षितिक्ष पर दो मौद्रिक संस्थाओं की स्थापना हुई जिसे क्रमशः अंतराष्ट्रीय मुद्राकोष (I.M.F) तथा दूसरा अंतर्राष्ट्रीय बैंक International Bank for Reconstruction and Development (I.B.R.D.)

प्रथम (I.M.F) का उद्देश्य अल्पकालीन ऋण प्रदान करना अपने सदस्य देशों को और दूसरा I.B.R.D. का उद्देश्य दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराना ।

उन दोनों अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थान का उदेश्य है की युद्ध जनित देशें के क्षत–विक्षत अर्थव्यव्स्था को ऋण के माध्यम से उद्धार करना तथा आर्थिक पुर्ननिर्माण के लिए वित्त एवं विशेषज्ञों की सेवा उपलब्ध कराना।

कोष के संगठन एवं प्रबंध– 1 मार्च 1947 ई0 को अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने कार्य करना प्रारंभ कर दिया इसमें वर्तमान समय में इस कोष में 189 सदस्य देश हैं। इसमें Board of Governors तथा Board of directors होता है। Board of Governors में प्रत्येक सदस्य देश एक गवर्नर नियुक्त करता है जिनका कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। Board of directors में 20 Executive Directors होते है जिसमें 6 सदस्य स्थायी होते हैं । जिनका कोटा उसमें अधिक होता है। इसमें एक Managing Director होता है जिसका चुनाव किया जाता है जो मुद्रा कोष का मुख्य अधिकारी होता है।

कोष का मुख्य उद्देश्य–

1. ऐसी स्थायी संस्था के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना जो अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं के संबंध में विचार विमर्श और सहयोग की मशीनरी प्रदान करे।
2. अंतराष्ट्रीय व्यापार के विस्तार एवं संतुलित वृद्धि को सुगम बनाना तथा सदस्य देशों के रोजगार तथा संसाधनों के विकास में योगदान देना
3. विनियम स्थिरता को बढ़ावा देना, सदस्यों में विनिमय प्रबंध बनाए रखना और प्रतियोगी विनिमय मूल्य ह्रास से बचना।
4. सदस्यों के चालू लेन देन के संबंध में भुगतान को बहुदेशीय प्रणाली की स्थापना करने में और उन विदेशी विनिमय प्रतिबंधों को समाप्त करने में सहायता देना जो विश्व व्यापार की वृद्धी में बाधा पहुचाते हैं।
5. सदस्यों देशों के अंतर्राष्ट्रीय भुगतान शेष असंतुलन की अवधि घटना और उसकी कोटी को कम करना।
6. सदस्य देशों को संरक्षण प्रदान करना तथा संसाधन उपलब्ध कराना साथ ही उसमें विश्वास भरना या पैदा करना।

अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्य–

1. आर्थिक सहायता प्रदान करना – मुद्रा कोष का प्रमुख कार्य अपने सदस्य राष्ट्रों के भुगतान संतुलन में होने वाले अस्थायी घाटे को दूर करना तथा उसके लिए विदेशी मुद्राएँ बेचता है। साथ ही उधार भी देता है। ताकि वे अपने भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर कर सके कोष के द्वारा सदस्य देशों को उसके केन्द्रीय बैंक के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराता है। कोष किसी सदस्य देश को उसके कुल जमा का 25% तक ही एक वर्ष में ऋण देता हैं परंतु वर्तमान समय में यह बढ़ा कर 30% कर दी गयाी है। उसके अलावे अधिक आर्थिक स्थिति गड़बड़ होने पर उससे अधिक भी ऋण दिया जाता है कोष जो ऋण उपलब्ध करता है उसकी अवधि 3 वर्ष से 5 वर्ष तक की होती है। उसी बीच में शीघ्रताशीघ्र मूलधन समेत ब्याज लौटाना पड़ता है। ताकि कोष की पूँजी अधिक दिनों तक फंसी न रहे। कोष किसी सदस्य देश के आर्थिक एवं राजनैतिक संकट के कारण उसका प्रभाव अन्य देशों पर पड़ता हो तो उस स्थिति में ये आकस्मिक ऋण की सुविधा भी उपलब्ध कराता हैं। उदाहरण के लिए इगलैन्ड को 1956 में स्वेज नहर से उत्पन्न संकट के समाधान के लिए 130 करोड़ का ऋण उपलब्ध कराया था उसके अलावे कोष किसी सदस्य देश के मौसमी संबंधी विनिमय कठिनाई से निपटने के लिए ऋण की सुविधा उपलब्ध कराती है।
2. तकनीकी सहायता – कोष वित्तीय सहायता के अतिरिक्त अपने सदस्य देशों को तकनीकी सहायता भी प्रदान करती है। मुद्रा कोष अपने सदस्य देशों को जटील समस्याओं के समाधान के लिए विशेषज्ञों की सेवाएं उपलब्ध कराती हैं। मुद्रा कोष उन अविकसित देशों में उसकी मौद्रिक राजकोषीय एवं विनियम संबंधी समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण योगदान देकर उसकी नीतियों के निर्माण में सहायक होती है। इस सुविधा के लिए कोष ने दो विभाग की स्थापना की है जैसे i. Central Banking service department ii Fiscal affairs department 1 पहले सदस्य देशों को केन्द्रीय बैंकिंग एवं संचालन संबंधी मामलों में परामर्श देने के लिए अपने विशेषज्ञों की सेवाएं प्रदान करता है। दूसरा सदस्य राष्ट्रों को राजकोषीय मामलों पर परामर्श देता हैं। उसके अलावे बाहरी विशेषज्ञों को भी संबंधीत राष्ट्र में भेजता हो जो उसको आर्थिक सलाहकार की भूमिका अदा करता हैं।
3. विनिमय नियंत्रण संबंधी परामर्श – अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने अधिकारियों की सहायता से विभिन्न सदस्य देशों मे जो अविकसित है वहाँ विनिमय एवं विनिमय नियंत्रण संबंधी परामर्श भी देता है उससे सदस्य देशों के विदेशी विनिमय के क्षेत्र में सुधार लाने में मदद मिलती हैं।
4. प्रशिक्षण संबंधी सुविधाएँ – मुद्रा कोष अपने सदस्य राष्ट्रों को उसके केन्द्रीय बैंकों तथा सरकार के वित्त विभाग के पदाधिकारियों के लिए विशेष प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध कराती है। ये प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध कराती हैं ये प्रशिक्षण कार्यक्रम अंतर्राष्ट्रीय भुगतान आर्थिक विकास, वित्तीय व्यवस्था, एवं सांख्यिकी तथा उसके विश्लेषण आदि से संबंधित होते है। उसके लिए कोष ने स्वरूप में प्रशिक्षण मंत्रालय की स्थापना की है।
5. विभिन्न प्रकाशन– कोष विभिन्न सरकारी शोधकर्त्ताओं, संस्थाओं अध्यापको एवं विद्यार्थियो के लाभ के लिए समय – समय पर कई प्रकार के विवरण अथवा सामग्री प्रकाशित करता है। इन प्रकाशनों में, Annula Report, Annual Report on Exchange Prestriction, International year Book International Financial Statistica Monthly Direction & trade Monthly Finance and Developments IMF Staff Paper & thrie a year आदि उल्लेखनीय है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की अलोचनात्मक समीक्षा करते है हम पाते है कि उसके विनिमय दर की नीति इसकी महत्वपूर्ण समस्या था।
   i. सदस्य राष्ट्रों की मुद्राओं की प्रारंभिक समता दर को निश्चित करना
   ii. अंतर्राष्ट्रीय सुंतुलन को कायम करने के लिए उनकी मुद्राओं की समता दर में समय समय पर वंक्षित परिवर्तन करना
   iii. सदस्य देशों के प्रारंभिक समता दरों 1939 की विनियम दरों पर ही आधारित थी जिसे कोष ने उसके परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया जो ठीक नहीं।

iv. 1947 में कोष की कुल पूँजी 7.5 विलियन डॉलर थी 1976 में बढ़कर S.D.R 29.2 विलियन हो गयाी 1980 में S.D.R 60 विलियन हो गयी कोष के कोष में लगातार वृद्धि हो रही है लेकिन जितना क्रियात्मक ढंग से काम होना चाहिए उतना नहीं हो पा रहा है क्योंकि कोष पर विकसित राष्ट्रों को प्रमुख अभी भी बरकरार है।

कोष एंव भारत –

भारत प्रारंभ से ही मुद्राकोष का सदस्य रहा भारत 1949 ई0 में जब भुगतान अंसतुलन के कठिनाई से गुजर रहा था तब कोष ने भारत को 90 मिलियन डॉलर का ऋण उपलब्ध कराया था पुनः 1952 ई0 में भुगतान संतुलन के घाटे में वृद्धि होने पर कोष ने 100 मिलियन डॉलर का वित उपलब्ध कराया था 1957 से लेकर 1975 के बीच आठ बार कोष से 1764 मिलियन डॉलर का सहायता प्राप्त किया था ऋण के रूप में 1978 से 21 फरवरी 1981 की अवधि अपनी भुगतान शेष कठिनाईयों पार काबू पाने के लिए रियायती दर पर 529 के अधिकारियों को प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है इस प्रकार कोष से भारत को काफी लाभ प्राप्त हुआ है और भविष्य में भी मिलेगा मिलियन डॉलर के कर्ज भी प्राप्त किया था 1979 के प्ड़थ् से एक करार के तहत भारत ने 5.9 विलियन डॉलर का कर्ज प्राप्त किया था 1984 तक भारत ने 3.9 विलियन डॉलर का ऋण लेने के लिए सूचित किया था 1981 में 5.6 विलियन डॉलर का त्रिवर्षीय ऋण दिया गया। 1991–92 में 781 मिलियन डॉलर की सहायता प्राप्त किया। भारत ने Standby Arrangement के अंतर्गत 325 मिलियन डॉलर का ऋण प्राप्त किया था इसके अलावे 2015–2018 के बीच विश्व बैंक योजना के लिए 10.2 बिलियन डॉलर का ऋण दिया।

मुद्रा कोष से भारत को वित्तीय सहायता के अलावे सममूल्य की भी सुविधा प्राप्त हुई भारत जब कोष का सदस्य वना था भारतीय रूपये का सममूल्य 0.268601 ग्राम सोना अथवा 30.225 अमेरीकी सेण्ट था 1949 में भारतीय रूपये का अवमूल्य किया गया उसका सममूल्य 0.18662 ग्राम सोने अथवा 21 अमेरीकी केण्टों के बाराबर कर दिया गया फिर 1966 में अवमूल्य किया गया जिसमें सममूल्य 13.33 अमेरीकी के बराबर हुआ 1972 में पुनः अवमूल्य हुआ जिसमें समूल्य और गिर गया परंतु समझौते कोष से हुआ और संशोधन हुआ तो रूपये का विनिमय पर परिवर्तनशील और S.D.R. से जुड़ गया।

उपरोक्त सहायता के अलावे कोष भारत के मौद्रिक विशेषज्ञो को समय समय पर आर्थिक मामले में सलाह दिया हैं उदाहरण के लिए जब भारत प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू किया था तब भारत को उस दौड़ान अपनी अर्थव्यवस्था को सुधारने एवं धाटे की वित्त व्यवस्था की नीति तथा मौद्रिक स्थायित्व कायम रखने की सलाह दिया। द्वितीय योजना में भी अर्थव्यवस्था का निरीक्षण कर कोष के विशेषज्ञों ने आवश्यक निर्देश दिया था इसके अलावे कोष भारत के मौद्रिक एवं वित्तीय अधिकारियों एवं रिजर्व बैंक के अधिकारियों को प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करता है।

इस प्रकार भारत को कोष से काफी लाभ प्राप्त हो रहा है और भविष्य में यह क्रम चलता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. एम0 एल0 झिंगन – समष्टि अर्थशास्त्र
2. डा0 सुमन – मौद्रिक अर्थशास्त्र

अवध क्षेत्र के भौगोलिक पृष्ठभूमि पर अवधी भाषा का प्रभाव

डॉ0 कौशल किशोर मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
लाल विजयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय
टिकरी, अमेठी

सारांश :–

प्रस्तुत पत्र में भारत के अवध क्षेत्र पर अवधी भाषा के प्रभाव को दर्शाया गया है जिसके कारण सामाजिक समरसता का अटूट सम्बन्ध व्याप्त है। अवधी भाषा का भौगोलिक विस्तार के साथ इसका अन्य भाषाओं से सम्बन्ध का भी मूल्यांकन किया गया है। अवधी की उत्पत्ति का पता भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्राचीन भाषा अर्थात बृजभाषा से लगाया जा सकता है। पूर्वी प्रांतों की प्रसिद्ध भाषा मगही भी अवधी को ढ़ालती है अर्थात अवधी को आधुनिक हिंदी के पिता के रूप में पहचान मिली है। इंडो–आर्यन भाषाओं के परिवार में अवधी भारतीयों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय है जो कि मुख्यतः उत्तर–प्रदेश में बोली जाती है जिसे भौगोलिक रूप से अवध प्रांत का नाम दिया गया है। अवध प्रांत के अतिरिक्त पूर्वी भारत के कुछ हिन्दी भाषी लोग इसे "कोसली" कहते है। अन्य राज्यों में जहाँ यह बोली जाती है उनमें अवध के दक्षिणी भाग में स्थित निचला दो आब क्षेत्र शामिल है। हिन्दी का भारत में मानक भाषा का दर्जा प्राप्त होने के पश्चात अवधी ही सर्वाधिक लोकप्रिय बोली सुविचारित है। इस बोली भाषा का प्रभाव जनमानस के मस्तिष्क एवं कार्यशैली पर स्पष्ट देखा जा सकता है। अवधी भाषा की व्यापकता एवं प्रभाव का यथार्थ चित्रण किया गया है। जिसके पक्ष में अनेक विद्वानों का मत इसे प्रभावी बनाता है।

मुख्य शब्द :– अवधी, भाषा, भारतीय, उपमहाद्वीप, विद्वान, मूल्यांकन, लोकप्रिय, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, प्रादुर्भाव, सृष्टि, रामचरितमानस, अयोध्या, साहित्य, उल्लेखनीय, जनमानस, उत्कृष्ठ।

प्रस्तावना :–

भाषा और मनुष्य का सम्बन्ध सृष्टि के निर्माण काल से लेकर अनन्त रहने वाला है। मानव जीवन में भाषा एक अभिन्न अंग है जिसके बिना मानव निष्क्रिय है। सम्पूर्ण विश्व में यदि मानव का प्रभाव एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक व्यापक है तो उसके पीछे भाषा का ही योगदान है। सभी राष्ट्र, प्रांत, एवं ग्राम अपनी अलग–अलग भाषायी विभिन्नता रखते है जो उनकी पहचान भी दर्शाते है। भारतेंदु हरिश्चंद का भी कथन है कि "चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर वाणी बीस कोस पर पगड़ी बदले, तीस कोस पर धानी।" इससे स्पष्ट होता है कि भौगोलिक बदलाव के साथ भाषा परिवर्तन आज भी चरितार्थ हो रहा है। भाषा के समागत से ही आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, संस्कृतिक आदि गतिविधियाँ सहज रूप से संचालित होती है। विदेशों से व्यापार करने के लिए संप्रेषण के लिए आवश्यकतानुसार भाषा अपनानी पड़ती है। उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री और उनके प्रचार के लिए अपनाये जाने वाले साधनों में स्थानीय भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। धार्मिक प्रचार प्रसार के लिए स्थानीय भाषा की मधुरता की छाप अलग ही प्रतीत होती है। जो कि बर्बस ही सभी मानवों के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु होता है। भारत में अवधी एवं ब्रज भाषा का धर्मगुरूओं द्वारा सर्वाधिक प्रयोग किये जाने वाला भाषा है जिसके परिणामस्वरूप भाषा रस का प्रादुर्भाव होता है। अमीर खुसरो जैसे प्रख्यात विद्वान जो व्यापक रूप से 'आधुनिक हिन्दी' के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध है, ने दिल्ली और उसके उपनगरों से प्रवास के बाद इसे लोकप्रिय बनाया। तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस ने

घर–घर तक इसे व्यापक और सहज बनाया है। यह भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में व्यापक रूप से विसरित है।

अयोध्या से अवधी भाषा का सम्बन्ध :–

अवधी हिंदी क्षेत्र की एक उपभाषा है। यह उत्तर प्रदेश में अवध के जिलों में तथा फतेहपुर, मिरजापुर, जौनपुर आदि कुछ अन्य जिलों में भी बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा बघेलखण्ड में बघेली नाम से प्रचलित है। 'अवध' शब्द की व्युत्पत्ति ''अयोध्या'' से है। इस नाम का एक सूबा मुगलों के राज्यकाल में था। तुलसीदास ने अपने ''मानस'' में अयोध्या को अवधपुरी कहा है। इसी क्षेत्र का पुराना नाम कोसल भी था जिसकी महत्ता प्राचीन काल से चली आ रही है।

गठन की दृष्टि से हिंदी क्षेत्र की उपभाषाओं को दो वर्गो–पश्चिमी और पूर्वी में विभाजित किया जाता है। अवधी पूर्वी के अंतर्गत है। पूर्वी की दूसरी उपभाषा छत्तीसगढ़ी है। अवधी को कभी–कभी बैसवाड़ी भी कहते हैं। परंतु बैसवाड़ी अवधी की एक बोली मात्र है जो उन्नाव, लखनऊ रायबरेली और फतेहपुर जिले के कुछ भागों में बोली जाती है।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस एवं मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत सहित कई प्रमुख ग्रंथ इसी बोली की देन है। इसका केन्द्र अयोध्या (फैजाबाद उ0प्र0) है। अयोध्या लखनऊ से 120 किमी की दूरी पर पूर्व में है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राममनोहर लोहिया, कुंवर नारायण की यह जन्मभूमि है। उमराव जान, आचार्य नरेंद्र देव की कर्मभूमि भी यही है। रमई काका की लोकवाणी भी इसी भाषा में गुंजरित हुई। हिंदी के रीतिकालीन कवि द्विजदेव के वंशज अयोध्या का राजपरिवार है। इसी परिवार की एक कन्या का विवाह दक्षिण कोरिया के राजघराने में अरसा पहले हुआ था। हिंदी के वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने अवधी भाषा और व्याकरण पर महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। फाह्यान ने भी अपने विवरण में अयोध्या का जिक्र किया है। आज की अवधी प्रवास और संस्कृतिकरण के चलते खड़ी बोली और अंग्रेजी के अभाव में आ रही है।

अवधी के पश्चिम में पश्चिमी वर्ग की बुंदेली और ब्रज का, दक्षिण में छत्तीसगढ़ी का और पूर्व में भोजपुरी बोली का क्षेत्र है। इसके उत्तर में नेपाल की तराई है जिसमें था डिग्री आदि आदिवासियों की बस्तियाँ हैं जिनकी भाषा अवधी से बिलकुल अलग है।

सांस्कृतिक भू–दृश्य पर अवधी साहित्य का प्रभाव :–

प्राचीन अवधी साहित्य की दो शाखाएँ हैं : एक भक्तिकाव्य और दूसरी प्रेमाख्यान काव्य। भक्तिकाव्य में गोस्वामी तुलसीदास का ''रामचरितमानस'' (सं0 1631) अवधी साहित्य की प्रमुख कृति है। इसकी भाषा संस्कृत शब्दावली से भरी है। ''रामचरितमानस'' के अतिरिक्त तुलसीदास ने अन्य कई ग्रंथ अवधी में लिखे हैं। इसी भक्ति साहित्य के अंतर्गत लालदास का "अवधबिलास" आता है। इसकी रचना संवत् 1700 में हुई। इनके अतिरिक्त कई और भक्त कवियों ने रामभक्ति विषयक ग्रंथ लिखे। संत कवियों में बाबा मलूकदास भी अवधी क्षेत्र के थे। इनकी बानी का अधिकांश अवधी में है। इनके शिष्य बाबा मथुरादास की बानी भी अधिकतर अवधी में है। बाबा धरनीदास यद्यपि छपरा जिले के थे तथापि उनकी बानी अवधी में प्रकाशित हुई। कई अन्य संत कवियों ने भी अपने उपदेश के लिए अवधी को अपनाया है।

प्रेमाख्यान काव्य में सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ मलिक मुहम्मद जायसी रचित "पद्मावत" है जिसकी रचना ''रामचरितमानस'' से 34 वर्ष पूर्व हुई। दोहे चौपाई का जो क्रम "पद्मावत" में प्रायः वही "मानस" में मिलता है। प्रेमाख्यान काव्य में मुसलमान लेखकों ने सूफी मत का रहस्य प्रकट किया है। इस काव्य की परंपरा कई सौ वर्षों तक चलती रही। मंझन की "मधुमालती", उसमान की "चित्रावली", आलम की "माधवानल कामकंदला", नूरमुहम्मद की "इंद्रावती" और शेख निसार की "यूसुफ जुलेखा" इसी परंपरा की रचनाएँ हैं। शब्दावली की दृष्टि से ये रचनाएँ हिंदू कवियों के ग्रंथों से इस बात में भिन्न हैं कि इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की उतनी प्रचुरता नहीं हैं। प्राचीन अवधी साहित्य में अधिकतर रचनाएँ देशप्रेम, समाजसुधार आदि विषयों पर और मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक हैं। कवियों में प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र रीक्षित, "पढ़ीस", वंशीधर शुक्ल, चंद्रभूषण द्विवेदी "रमई काका" और शारदाप्रसाद "भुशुंडि" विशेष

उल्लेखनीय हैं। प्रबंध की परंपरा में "रामचरितमानस" के ढंग का एक महत्वपूर्ण आधुनिक ग्रंथ द्वारिका प्रसाद मिश्र का "कृष्णायन" है। इसकी भाषा और शैली "मानस" के ही समान है और ग्रंथकार ने कृष्णचरित प्रायः उसी तन्मयता और विस्तार से लिखा है जिस तन्मयता और विस्तार से तुलसीदास ने रामचरित अंकित किया है। मिश्र जी ने इस ग्रंथ की रचना द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि प्रबंध के लिए अवधी की प्रकृति आज भी वैसी ही उपादेय है जैसी तुलसीदास के समय में थी।

अवधी भाषी क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार :–

अवधी प्रमुख रूप से भारत, नेपाल और फिजी में बोली जाती है। भारत में अवधी मुख्यतः उत्तर प्रदेश राज्य में बोली जाती है इसके अलावा मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और बिहार के कुछ जिलों में बोली जाती है। उत्तर प्रदेश के अवधी भाषी जिलों में मुख्यतः अमेठी, प्रतापगढ़, सुलतानपुर, रायबरेली, प्रयागराज, कौशाम्बी, अम्बेडकर नगर, सिद्धार्थनगर, गोंडा, बलरामपुर, बाराबंकी, अयोध्या, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, बहराइच, बस्ती एवं फतेहपुर है। नेपाल के अवधी भाषी जिले कपिलवस्तु, बर्दिया, डॉग, रूपनदेही, नवलपरासी, कंचनपुर, बांके आदि तराई नेपाल के जिले हैं।

इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशो– मॉरिशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित आष्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हालैंड (नीदरलैंड) में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग रहते हैं। जिनके मध्य भाषा का सहज प्रवाह के फलस्वरूप जो प्रभाव परिलक्षित होता है उसका परिणाम निश्चित ही सुखद एवं प्रभावी होता है। जिसके कारण आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक समरसता का प्रादुर्भाव होता हे। भाषा सिर्फ भावनाओं का ही आदान–प्रदान नही करती बल्कि राष्ट्र एवं धर्म के प्रति सम्बद्धता की भी नींव रखती है।

इन अवधी साहित्य से यह स्पष्ट है कि अवध के जिलो और विस्तारित क्षेत्रों पर एक जैसी जीवन शैली, तीज त्यौहार, सांस्कृतिक महत्व एक समान परिलक्षित होता है। रामचरित मानस ने सभी को आदर्श जीवन जीने की कला तथा राष्ट्र निर्माण से त्याग की शक्ति को एक साथ पिरोने का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है।

स्रोत :–

- Jagran Publish Fri 06 Oct 2017.
- Punjabkesari 08 November 2019.
- Awadhibanee. word press.com
- अवध विलाश – लालदास, पृ0 169
- मुगल कालीन भारत – आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव पृ0 346
- Crescent in India के हिन्दी रूपान्तर से

Vol. XVI, [Issue No. 1, 2 & 3 combined], Jan.– Dec. 2019, ISSN: 0970-1745

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का यथार्थ चित्रण

डॉ. अरुण कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, हिन्दी
एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़

यथार्थ कई प्रकार के हो सकते हैं, उनमें से मुख्यतः निम्नवत हैं।

–सामाजिक यथार्थ

–सजनीतिक यथार्थ

–शैक्षिक यथार्थ

–आर्थिक यथार्थ

–धार्मिक यथार्थ

–सांस्कृतिक यथार्थ

(क) सामाजिक यथार्थ का चित्रण :

सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य समाज के परिप्रेक्ष्य में वर्णित किए जाने वाले यथार्थ से है। समाज से संबंधित किसी भी घटना को उसके मूल स्वरूप में ज्यों का त्यों चित्रण करना सामाजिक यथार्थ कहलाता है अथवा दूसरे शब्दों में सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य आम प्रचलित भाषा में मनुष्य द्वारा की गई सामान्य क्रियाओं के वास्तविक तथा सत्य चित्रण से है। ऐसी वास्तविकता जो समाज के भीतर विद्यमान रहती है और मनुष्य दिन प्रतिदिन उससे रूबरू होता रहता है, उसे ही सामाजिक यथार्थ कहा जाता है। कभी यह अच्छाई के रूप में हो सकता है तो कभी बुराई के रूप में। फिलहाल समाज में जैसा कुछ भी है, वैसा उसके वास्तविक स्वरूप में प्रकट कर देना यथार्थ का बोधक होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य द्वारा तत्कालीन समाज में उपस्थित परिस्थितियाँ तथा जन सामान्य के जीवन में होने वाली नित्य निरंतर घटनाओं का परिचय प्राप्त होता है। इस अर्थ में सामाजिक यथार्थ अनिवार्य रूप से मानव जीवन के साथ जुड़ा हुआ तथ्य है जो उसे अपने जीवन में अनिवार्यतः भोगने पड़ते हैं। और उन्हीं आधारों पर उसका समस्त जीवन चक्र गतिमान रहता है। सामाजिक यथार्थ के रूप में ज्यादातर साहित्यकार का ध्यान समाज में उत्पन्न बुराइयों पर जाता है। वह इन बुराइयों से स्वयं भी पीड़ित होता है। वह उसके विरुद्ध साहित्य को ही अपना अस्त्र बनाता है। साहित्य के माध्यम से ही वह संघर्ष की एक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है और उस पृष्ठभूमि के आधार पर समस्त क्रियाकलाप संपादित करता है। आधुनिक समाज में अनेकों विद्रूपताएं उपस्थित है। इन विद्रुपताओं ने मनुष्य जीवन को नर्क बना दिया है। ऐसी स्थिति में साहित्यकार का दायित्व होता है कि वह मनुष्य को विद्रूपताओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए उद्यत करें। इस कार्य के लिए वह अपने साहित्य का सहारा लेता है। व्यंग्यात्मक उपन्यास ही वह अस्त्र हो सकते हैं जिसमें व्यंग्य के माध्यम से समाज में फैली विद्रूपताओ पर प्रहार किया जा सकता है। व्यंग्यात्मक साहित्यकार उन विद्रूपताओं का अन्वेषण कर उनके समाधान की दिशा में एक प्रयत्न करता है। इस कड़ी में वह समाज में फैली हुई कुरीतियां जैसे, दहेज प्रथा, जातिगत व्यवस्था, गरीबों तथा कमजोर वर्गों का शोषण की समस्या, मजदूरों के जीवन की विडंबनाएं किसानों पर अत्याचार अंतरजातीय विवाह संबंध, विवाह पूर्व प्रेम संबंध नारी का उच्छत्रृखल व्यवहार, समाज में ऊंच–नीच का भेद आदि शामिल हैं, के ऊपर व्यंग के माध्यम से धार धार प्रहार करता है और इस प्रकार प्रकट हो जाती है समाज की यथार्थता ।

(ख) राजनीतिक यथार्थ का चित्रण :

भारतीय समाज का एक राजनीतिक आधार भी है। यह आधार बहु धर्मी एवं खंडित संरचना वाली सभ्यता का संवाहक भी है। व्यंग्यात्मक साहित्यकार समस्त राजनीतिक परिदृश्य का भी अपने अनुसार अवलोकन करता है। और उसमें व्याप्त विसंगतियों पर कड़ा प्रहार करता है। राजनीतिक व्यवस्था द्वारा ही देश का शासन तंत्र निर्मित होता है और देश का विकास भी राजनीतिक व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। जिस समय जैसी राजनीतिक व्यवस्था होती है, विकास की गति भी उसी अनुरूप आगे बढ़ती है। राजनीति में पारदर्शिता जिस स्तर की होगी राजनीति का स्तर भी उतना ही उच्च अथवा निम्न होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के राजनीतिक व्यवस्था में बड़ी उथल–पुथल की स्थिति उत्पन्न होती है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले गांधीवादी मूल्यों के आधार पर निर्मित व्यवस्था में स्वतंत्रता के पश्चात विकृतियां उत्पन्न हो जाती है और परिस्थितियां पूरी तरह से परिवर्तित हो जाती है। उस समय राजनीति को सेवा का माध्यम बनाया जाता था। किंतु यदि हम आधुनिक राजनीति का एक विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि आधुनिक राजनीति उन मूल्यों से कोसों दूर हो चुकी है। राजनीतिक नेता अपने स्वार्थ के लिए नैतिक अनैतिक सब कुछ करते हैं। उनकी कथनी और करनी में समानता कहीं भी दृ ष्टिगत नहीं होती है। चुनाव के समय किए जाने वाले वादे संभवतः पूरे नहीं किए जाते। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में भी तमाम विषमतायें विद्यमान होने के कारण देश की स्थिति बहुत दयनीय हो चुकी है। कोई भी राजनेता किसी भी हथकंडे का प्रयोग करके चुनाव जीतने का पूरा प्रयास करता है। इस तरह राजनीति के क्षेत्र में उत्पन्न विद्रूपताओं का वर्णन राजनीतिक यथार्थ के अंतर्गत कर सकते हैं। प्रमुख राजनीतिक यथार्थता में जातिवाद, क्षेत्रवाद, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, अनैतिक गठबंधन की राजनीति, क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका, वंश परंपरा व भाई भतीजावाद न्याय के क्षेत्र में भ्रष्टाचार, सरकारी कार्यालयों में घूसखोरी आदि प्रमुख हैं। एक साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से इन समस्त राजनीतिक क्षेत्रों में उत्पन्न विभीषिकाओं का एक मूल्यांकन करता है और उससे संबंधित तथ्य को अपने साहित्य में समाहित करता है। अपने पात्र चरित्रों के माध्यम से वह ऐसी परिस्थिति का निर्माण करता है जिसके द्वारा समस्त राजनीतिक परिदृश्य एवं परिवेश अपने आप सामने आ जाता है। इस तरह से राजनीतिक क्षेत्र में फैले यथार्थ को आम जनमानस के सम्मुख लाकर रख देता है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यंग्यात्मक उपन्यासकार समस्त राजनीतिक परिदृश्य का ऐसा यथार्थ चित्रण करता है कि पाठक उसे पढ़कर समस्त राजनीतिक व्यवस्था से अवगत हो जाता है।

(ग) शैक्षिक यथार्थ का चित्रण :

शिक्षा को ही किसी राष्ट्र के विकास की धुरी माना जाता है। किसी राष्ट्र के चतुर्दिक विकास के लिए शिक्षा व्यवस्था का सुदृढ़ होना परम आवश्यक है। शिक्षा ही आर्थिक उन्नयन के लिए उपयोगी यंत्र के रूप में प्रयुक्त होता है। जिस राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था जितनी उन्नत होगी वहां तकनीकी से लेकर अन्य विकास भी उसी गति से आगे बढ़ता है शिक्षा को जीवन की आधारभूत इकाई माना जाता है। शिक्षा के अभाव में कोई भी मनुष्य किसी भी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं बन सकता। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की शैक्षिक दशा में सुधार के लिए सरकारों ने काफी प्रयास किए किंतु सरकारों का यह प्रयास पूरी तरह से पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में विसंगतियां आज भी विद्यमान है और उन विसंगतियों को प्रकाश में लाकर उनके निवारण की दिशा में कदम उठाना एक साहित्यकार का उत्तरदायित्व बन जाता है। इस कड़ी में एक व्यंग्य साहित्य इस कार्य को करने में सहज ही समर्थ होता है। वह शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों को अपनी सम्यक दृष्टि से अवलोकन करता है तथा आवश्यकता के उन पर प्रहार भी करता है।

ब्रिटिश शासकों द्वारा भारत में जिस शिक्षा प्रणाली के प्रारूप का निर्धारण किया गया था वह महज उनके साम्राज्य को स्थायी बनाने के उद्देश्य से किया गया था। इस शिक्षा व्यवस्था में नागरिकता के विकास एवं प्रौद्योगिकी तथा व्यवसायिक शिक्षा पर कोई भी बल नहीं दिया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी तकरीबन शिक्षा की वही प्रणाली लागू रही और आज भी विद्यमान है। इस शिक्षा प्रणाली में अनेकों खामियां विद्यमान है। स्कूलों की कमी, योग्य अध्यापकों का अभाव संसाधनों का अभाव आज भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था की कमजोर कड़ी के रूप में विद्यमान है। वर्तमान समय मे अंग्रेजी शिक्षा को जितना महत्व दिया जा रहा है, उतना किसी अन्य शिक्षा को नहीं। यह भी भारतीय समाज में एक

विसंगति ही कहा जा सकता है। इस विसंगति के कारण हम अपनी मूल संस्कृति से दूर होते चले जा रहे हैं। वैश्वीकरण के संदर्भ में यह बात और भी भयानक हो जाती है, क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा व्यक्ति में मूल्य को संवर्धित नहीं कर पा रही है जबकि भारतीय शिक्षा का मूल उद्देश्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को शिक्षा में समाहित कर के विद्यार्थियों तक पहुंचाना था। मातृभाषा के निरादर ने बहुत ही विकराल स्थिति को उत्पन्न किया है। यह न केवल भारतीय लोकतंत्र की जड़ें कमजोर करता है बल्कि देश में नागरिकता के विकास में बाधक होता है। शिक्षा के क्षेत्र पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि आज भी देश में शिक्षा की जो व्यवस्था है वह संतुष्टि भाव उत्पन्न करने वाली नहीं है। वर्तमान शिक्षा में सबसे बड़ी विसंगति के रूप में शिक्षकों में ज्ञान की कमी है। विद्यालयों की स्थापना भी इस प्रकार से की जाती है कि उसके विषय में कुछ कहना सार्थक न होगा। विद्यालयों की स्थापना के लिए उनकी स्वयं की भूमि भी नहीं होती। कभी–कभी तो सरकारी जमीन और सरकारी भवनों का अतिक्रमण करके विद्यालयों का निर्माण कर दिया जाता है जो शिक्षा के नाम पर महज प्रमाण पत्र प्रदान करते है । श्रीलाल शुक्ल द्वारा लिखित राग दरबारी उपन्यास में भी इसी प्रकार के एक विद्यालय छंगामल इंटर कॉलेज का उल्लेख आता है जहां यह तमाम विसंगतियां विद्यमान हैं। ऐसे विद्यालयों में छात्रों को नकल कराई जाती है। शिक्षक भी छात्रों को पढ़ाने में कोई रुचि नहीं लेते। वे केवल राजनीतिक चर्चा में मसगूल रहते है। उन्हें छात्रों के भविष्य से कोई लेना देना नहीं होता । शिक्षक आपसी गुटबाजी में इस तरह से उलझे रहते हैं कि उन्हें शिक्षण के लिए कोई समय ही नहीं बचता । विद्यालयों में हमेशा वर्चस्व की लड़ाई चलती रहती है। इस प्रकार व्यंग्यात्मक उपन्यास शैक्षिक क्षेत्र की इन तमाम विसंगतियों पर प्रकाश डालते हैं और इन समस्याओं के निराकरण के लिए अनवरत प्रयास करते हैं।

(घ) आर्थिक यथार्थ का चित्रण :

मनुष्य को जीवित रहने के लिए भोजन, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान की आवश्यकता पड़ती है यह सुविधाएं उसकी मूलभूत सुविधाएं हैं। यह ऐसी आवश्यकताएं हैं जिनके अभाव में जीवन जीना संभव नहीं है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य दिन–रात अपनी आजीविका कमाने के लिए लगा रहता है। पुराने समय में कृषि मानव जीवन का प्रमुख आधार हुआ करती थी, किंतु उत्तरार्ध में औद्योगीकरण ने एक नए प्रकार के वर्ग को जन्म दिया, जिसे पूंजीवादी वर्ग कहा गया। इस प्रकार समाज में दो वर्गों का उदय हो गया। एक पूंजीपति वर्ग दूसरा श्रमिक वर्ग। देश में औद्योगिक क्रांति का समय उपस्थित होने पर व्यापक स्तर पर यंत्रों के निर्माण ने देश में बेरोजगारी की गति में वृद्धि किया। समस्त कार्यकलाप यंत्राधीन दिन हो गए। इससे उद्योग एवं कृषि क्षेत्र क्रांति तो दिखाई दी, किंतु उसका एक नकारात्मक प्रभाव यह हुआ कि देश में बेरोजगारी भी उसी गति से बढ़ने लगी। आजादी के बाद देश में आर्थिक विकास की योजनाएं प्रारंभ की गई और इन योजनाओं को पंचवर्षीय योजनाओं के नाम से जाना जाता है। सन 1947 में बंटवारे की त्रासदी के बाद देश को एक भयंकर सूखे और युद्ध का सामना करना पड़ रहा था। इस स्थिति में देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ रहा था। किंतु फिर भी हम अपनी कार्यकुशलता के बल पर खड़े हो सके। उस समय कुछ समस्याएं देश के सामने मुंह बाए खड़ी थी। उनमें से सबसे भयंकर समस्या बेरोजगारी और उसके कारण उत्पन्न निर्धनता थी। देश की अधिकांश जनता गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने को विवश थी। तथाकथित पूंजीपति वर्ग कमजोर वर्ग के शोषण में दिन–रात व्यस्त था गरीबों के शांत चूल्हे को जलाने के लिए कहीं से कोई भी प्रयास नहीं हो रहा था। इसी दुर्व्यवस्था को उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से ऐसा चित्रित किया कि इस समस्त आर्थिक क्षेत्र की विषमताएं सामने आने लगी। कालांतर में उन पर व्यापक विचार–विमर्श के बाद नीतियां और योजनाएं बनाई जाने लगी।

वर्तमान समाज में आज भी वही विषमताएं विद्यमान हैं जो स्वतंत्रता प्राप्ति के समय थीं। आज देश में दो वर्गों के स्थान पर तीन वर्गों का उदय हो चुका है। प्रथम–पूंजीपति वर्ग, दूसरा मध्यम वर्ग तथा तीसरा–मजदूर वर्ग। ऊपर के दोनों वर्ग मजदूर वर्ग के शोषण में दिन रात लगे रहते हैं। इस प्रकार देश के आर्थिक ढांचे में आज भी निर्धनता और बेरोजगारी उसी तरह से विद्यमान हैं जिस तरह से स्वतंत्रता प्राप्ति के समय और उससे पहले विद्यमान थे। स्वतंत्र भारत की एक बहुत बड़ी समस्या रिश्वतखोरी है। सरकारी कार्यालयों में चारों तरफ रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का बोलबाला है।

न्यायपालिका से लेकर कार्यपालिका तक सब आकंठ भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं। इसलिए सामान्य मनुष्य का कोई भी हित इन संस्थानों द्वारा संभव ही नहीं है। एक व्यंग्य साहित्यकार इन परिस्थितियों को पूरी तरह से महसूस करता है और अपने साहित्य के माध्यम से इन समस्त आर्थिक विसंगतियों पर अपनी लेखनी से प्रहार करता है। इन्हीं विषमताओं को उजागर करना और उन पर एक स्पष्ट दिशा निर्धारित करना व्यंग्यात्मक उपन्यासों की प्रमुख प्रवृति माना जा सकता है।

(च) धार्मिक यथार्थ का चित्रण :

भारत धर्म में आस्था रखने वाला देश है। धर्म जीवन से जुड़ा हुआ प्रत्यय है। इसीलिये धर्म की परिभाषा में ही इसे धारण करने योग्य बताया गया है। संसार मे जो कुछ भी धारण करने योग्य है वही धर्म है। धर्म जीवन को नैतिकता के पथ पर अग्रसर करता है। किंतु वर्तमान परिवेश में धर्म को भी विकृतियों का सामना करना पड़ रहा है। आज धर्म से जुड़े प्रमुख लोग ही धर्म को विकृत करने में लगे हुए हैं। आज धर्म के भीतर पाखंड का समावेश हो गया है। ऐसे लोग धर्म की आड़ में महज आडंबर करते हैं और अपने झूठे आडंबरो द्वारा सामान्य और निरीह जनता को लूटने का काम करते हैं। ऐसे धर्माचार्य और पाखंडी समाज में घूमते हुए यत्र तत्र देखे जा सकते हैं। जिन धर्माचार्यों को हम श्रद्धा व भक्ति के साथ देखते हैं और उन पर विश्वास करते हैं, वही लोग आज धर्म से दूर हो गए हैं। मठों और मंदिरों की स्थिति तो और भी दयनीय हो गई है। वहां देवता के नाम पर केवल उसके चढ़ावे पर पुजारियों और पंडों का ध्यान लगा रहता है। ईश्वर साधना की बात तो कोसों दूर हो चुकी है। मठ और मंदिर में बैठे हुए पुजारी भक्ति भाव के स्थान पर धन अर्जन में निरत है। मठों और मंदिरों में धर्म के नाम पर अनाचार व व्यभिचार फल फूल रहा है । तथाकथित पुजारी अपनी पिपाशा शांत करने के लिए नाना प्रकार के षड्यंत्र करते रहते हैं। जिस संसार से उन्होंने विरक्ति ग्रहण किया, वहां जाकर उसी भवचक्र में फंसे हुए हैं। कभी–कभी तो हद ही हो जाती है जब ईश्वर की मूर्ति के स्थान पर कोई भी मूर्ति भगवान बना दी जाती है और उसकी पूजा करवाई जाती है। पूजा के नाम पर अच्छा खासा चढ़ावा प्राप्त होता है। इसलिए पुजारियों की दृष्टि पूजा पर नहीं बल्कि पूजा के लिए चढ़ाए जा रहे चढ़ावे पर होती है। समाज में अंधविश्वास का बोलबाला है। लोग धार्मिक काम के नाम पर अंधविश्वास फैलाते रहते हैं। समाज में कुछ ऐसी मान्यताएं और परंपराएं विद्यमान है जो औचित्य हीन होते हुए भी लोगों के विश्वास में समाई हुयी है। लोग आंख मूंदकर उन पर विश्वास करते हैं और उन के चक्कर में फंसे रहते हैं। यद्यपि यह परंपराएं और मान्यताएं बहुत समय पहले से ही समाज में विद्यमान है। समय–समय पर कुछ चिंतक तथा विचारक इन मान्यताओं और परंपराओं में संशोधन भी करते आए हैं, किंतु फिर भी वर्तमान परिवेश में ऐसे तमाम अंधविश्वास और कुरीतियां विद्यमान हैं जिनका निराकरण किया जाना अत्यंत आवश्यक है। समाज को उसके वास्तविक मार्ग पर अग्रसर करने के लिए समाज के लोगों को इन अंधविश्वासों और कुरीतियों से बाहर आना होगा। तभी हम एक स्वच्छ और सुधरे समाज का निर्माण कर पाने में समर्थ हो सकेंगे। कभी–कभी धर्म को राजनीति से भी जोड़ दिया जाता है। राजनीतिक नेता अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए धर्म को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग करने लग जाते हैं। चूँकि भारतीय जनमानस धर्म को अधिक महत्व देता था, इसलिए राजनीतिक लोग धर्म का राजनीतिक उपयोग करने में जरा भी संकोच नहीं करते। अस्सी के दशक में तो देश की राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप बढ़ता गया। वोट की राजनीति ने धर्म को भी विकृत कर दिया है। धर्म के नाम पर आए दिन सांप्रदायिक झगड़े होते रहते हैं, जबकि धर्म का मूल तत्व एक दूसरे से प्रेम करना है। सच्चा धर्म वही है जिसके मूल में सभी धर्मो के प्रति सम्मान का भाव हो। सच्चा मनुष्य भी वही है जो सर्व धर्म समभाव को पुष्ट करता है। किंतु वर्तमान परिस्थितियां पूरी तरह से विपरीत है। देश में धर्म के नाम पर आए दिन हिंदू और मुसलमान आदि अनेक धर्मों के लोग एक दूसरे को नीचा दिखाने के सारे प्रयास करते रहते हैं। यहां तक कि उनके मध्य खूनी संघर्ष भी होने लगता है। इस देश में एक ऐसा भी धर्म विद्यमान है जो धर्म के नाम पर जिहाद करता है और निर्दोष तथा भोली–भाली जनता का रक्त बहाता रहता है। ऐसा धर्म कभी भी स्वीकार करने योग्य नहीं है जो रक्तपात करने की अनुमति प्रदान करता हो। इसीलिए हमारे संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया जिसमें समस्त धर्मों के प्रति सम्मान का भाव हो। हमें ऐसे भारत का निर्माण करना है जहां सभी लोग सर्वधर्म समभाव और वसुधैव कुटुंबकम की भावना को पुष्ट करते हों। एक साहित्यकार का कार्य समाज में धर्म के क्षेत्र में व्याप्त इन कदाचारों व आनाचारों को जड़ से समाप्त कर पुनः धर्म की स्थापना करना होता है। उस का

प्रमुख उद्देश्य समाज में फैले अंधविश्वास को समाप्त कर एक स्वस्थ वैचारिक संरचना युक्त समाज का निर्माण करना होता है। इसलिए इस कार्य के लिए वह साहित्य का ही सहारा लेता है और अपने व्यंग्यात्मक साहित्य द्वारा इन समस्त कुरीतियों पर व्यंग्य प्रहार करता है। उसका यह कार्य समाज के सुधार की दिशा में एक उपयुक्त कदम हो सकता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि व्यंग्यात्मक उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्ति धार्मिक क्षेत्र में उत्पन्न विसंगतियों पर प्रहार करना तथा उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकना है।

(छ) सांस्कृतिक यथार्थ का चित्रण :

संस्कृति ही किसी देश की आत्मा होती है। मानव को उसकी संस्कृति ही पशुवत व्यवहार से ऊपर उठाकर श्रेष्ठ मनुष्य बनाती है । संस्कृति शब्द का उद्‌गम संस्कृत भाषा से हुआ है, किंतु संस्कृत और संस्कृति यह दोनों ही शब्द मूल शब्द संस्कार से बने है। संस्कृति का अर्थ विभिन्न संस्कारों के द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति है। रॉबर्ट वीरस्टीड़ ने संस्कृति को जटिल और उलझावो से भरा हुआ कहा है। उनके शब्दों में–''संस्कृति वह संपूर्ण जटिलता है, जिसमें वे सभी वस्तुएं सम्मिलित हैं जिन पर हम विचार करते हैं, कार्य करते हैं और समाज के सदस्य होने के नाते अपने पास रखते हैं।''[1]

इस अर्थ में हमें सबसे पहले अपने परिवार की संस्कृति को सुधारना होगा और उसके आधार पर ही सामाजिक संस्कृति का निर्माण किया जा सकेगा। संस्कृति की सर्व प्रमुख विशेषता इसका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण है। पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति का अपना विशिष्ट स्थान है और यह संस्कृति सभी अनुकरणीय है। भारतीय संस्कृति इतनी उत्कृष्ट है कि इसका अनुपालन करने से कभी कोई दिक्कत उपस्थित नहीं होती। हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति हमारी धरोहर है। इस धरोहर को नष्ट करने का भी कई बार प्रयास हुआ। विदेशी आक्रमणकारियों ने व अन्य विचारधारा के लोगों ने इस पर अपनी कुदृष्टि डाली। यद्यपि विरोधी विचारधारा से ओतप्रोत शासकों के शासनकाल में इसे पूरी तरह से नष्ट भ्रष्ट करने का प्रयास किया गया, तथापि यह पूरी तरह अक्षुण्ण रही यह संस्कृति भारतीय जनमानस के हृदय में इस कदर रम गई थी कि इसका बाल भी बांका नहीं किया जा सका। यह वह संस्कृति है जो अनेकता में एकता का भाव रखती है और संपूर्ण विश्व को अपना परिवार मानती है। इसलिए यह किसी के लिए भी कभी भी अहितकारी हो ही नहीं सकती। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद हमारी भारतीय मूल संस्कृति में भी कई परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक विकास ने हमारी सांस्कृतिक दशा को भी दयनीय स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है। लोग अपने मूल भारतीय संस्कृति को भूल कर पाश्चात्य संस्कृति में इतना रम गए हैं कि उनके खान पान, रहन सहन व वस्त्र धारण इत्यादि की समस्त विधाएं पूरी तरह से परिवर्तित हो गई हैं। पाश्चात्य संस्कृति ने लोगों के सोचने विचारने और अन्य कार्य करने के ढंग में काफी कुछ परिवर्तन किया है। किंतु यह परिवर्तन इस हद तक पहुंच गया है, जो मर्यादित आचरण में समाहित नहीं हो सकता। देश के युवा वर्ग आज फैशन के नाम पर अनाप–शनाप तरह के कृत्य करते हैं और उनके वस्त्र परिधान तो इस प्रकार बिगड़ गए हैं की उनके पहनावे को देखकर कोई भी सभ्य पुरुष शर्म से नजरें नीची कर लेगा। समाज में अश्लीलता इस कदर फैलती जा रही है कि उसका निराकरण असंभव हो रहा है। ऐसी संस्कृति लोगों में मानसिक विकृति को जन्म दे रही है। अमर्यादित वस्त्रों को धारण किए हुए ऐसे युवक और युवतियां आज हर जगह देखे जा सकते हैं। ऐसे लोग केवल धन अर्जन को ही महत्व देते हैं और उसी के पीछे अपने समस्त नैतिक मूल्य तिरोहित कर देते हैं। सामाजिक क्षेत्र में हो रहे इस बदलाव का प्रमुख कारण टेलीविजन एवं फिल्म जगत को माना जा सकता है। टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वेशभूषा खानपान आदि का जो उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, सामान्य लोग भी उसी का अनुकरण करने लगते हैं। इस तरह सबसे पहले यह प्रभाव उच्च वर्ग में पनपता है और धीरे–धीरे निस्यंदन सिद्धांत का अवलंबन लेता हुआ निचले पायदान तक पहुंच जाता है। इस प्रकार उच्च वर्ग से चलकर निम्न वर्ग तक विकृतियां फैलती चली जाती है। भारत में एक ऐसी उपभोग करने की संस्कृति पनपने लगी जो हमें अपने मूल सिद्धांतों और अपनी मूल संस्कृति से दूर हटाती जा रही है। यदि हम वर्तमान परिवेश में सांस्कृतिक दशा का मूल्यांकन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस संस्कृति में हो रहा है यह विखराव समाज के लिए हितकारी नहीं हो सकता। अतः हमें कुछ ऐसे प्रयास करने होंगे जो हमें अपनी मूल संस्कृत से संबद्ध रखते हो। यद्यपि किसी अन्य सभ्यता के अच्छे क्रियाकलापों और

अच्छी ग्रहण करना बुराई नहीं हो सकती, किंतु कोई भी पाश्चात्य अथवा अन्य संस्कृति के तत्वों को ग्रहण करने से पूर्व हमें उस संस्कृति के विषय में सम्यक विचार करना होगा और यह देखना होगा कि कहीं हम इस संस्कृति के प्रभाव में अपनी मूल संस्कृति को तो नहीं खोते जा रहे हैं ? हमें सिर्फ अच्छाइयों को ग्रहण करना है। हमें विकृतियों उसी प्रकार त्याग देना है, जिस प्रकार किसी निरर्थक वस्तु को त्याग दिया जाता है। प्रत्येक संस्कृति में कुछ न कुछ अच्छाई बुराई तो जरूर होती है और हमें उस में निहित अच्छाई को ग्रहण करते हुए बुराई से बचकर चलना होगा। हमें किसी भी अन्य सभ्यता व संस्कृति के सिर्फ उन्हीं तत्वों को ग्रहण करना होगा जो हमारे लिए उत्तम व श्रेष्ठकर हों। एक साहित्यकार इन समस्त बातों बातों का चिंतन करता है और संस्कृति में हो रहे इस बिखराव पर वह अपनी लेखनी का प्रहार करता है। लेखनी के माध्यम से ही व सांस्कृतिक विकृति को उजागर करता है और उसके शुद्धीकरण की दिशा में एक उच्च कोटि का प्रयास करता है। व्यंग्यात्मक उपन्यास इस दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं। इसलिए एक व्यंग्यात्मक उपन्यास की मुख्य प्रवृति संस्कृति के क्षेत्र में हो रही गतिविधियों पर नजर रखते हुए उसकी विकृति को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए और यह उसकी मूल प्रवृत्ति में शामिल होनी चाहिए।

11. यथार्थ की कटुता से समझौता नहीं :

एक साहित्यकार का सर्व प्रमुख गुण सत्य का साक्षात्कार कराना होना चाहिए, क्योंकि सत्य के बिना कुछ भी संभव नहीं है। वह समाज अथवा किसी अन्य क्षेत्र में विहित विद्रूपताओं को स्पष्ट करने में कभी भी कोई पक्षपात नहीं करता। जहां कहीं भी उसे आवश्यकता पड़ती है वह उसमें जरा भी संकोच अथवा दया का भाव नहीं रखता। इस अर्थ में वह विकृतियों के प्रति अथवा यथार्थताओं के उद्घाटन के प्रति कोई समझौता नहीं करता। इस तरह हम कह सकते हैं कि व्यंग्यात्मक उपन्यासकार यथार्थ की कटुता से कभी भी समझौता नहीं करता। चूँकि उसका स्वभाव पलायन वादी नहीं होता, अतः वह अपनी पूर्ण जिजीविषा के साथ परिस्थितियों से संघर्ष करता है और उन परिस्थितियों में परिवर्तन करके उन्हें समाज के लिए उपयोगी बनाने का कार्य करता है। व्यंग्य कहा ही इसलिए जाता है जिससे किसी भी क्षेत्र में विद्यमान विद्रूपताएं बाहर आ जाए। इसमें जो क्षेत्र अथवा व्यक्ति व्यंग्य का लक्ष्य बनता है वह अपने को असहज महसूस करता है। किंतु इस परिस्थिति में वह कुछ कर भी नहीं सकता। व्यंग्य इतना कठोर होता है की चाहते हुए भी सुनने वाला कहने वाले का कुछ नहीं कर पाता। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–''व्यंग्य वह है जहां कहने वाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना देना हो जाता है।''[2]

इस प्रकार एक व्यंग्यात्मक उपन्यास यथार्थ के प्रकटीकरण के लिए पूरी तरह से निष्पक्ष होता हुआ समाज में उपस्थित समस्त विद्रूपताओ का प्रकटीकरण करता है और इस कार्य के लिए वह पूरी तरह से कंटु बना रहता है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि व्यंग्यात्मक उपन्यासों की प्रमुख प्रवृतियों में समाज में व्याप्त विद्रूपताओं का निराकरण करना समाहित है, और उसमें जो कुछ भी यथार्थ है उसका प्रकटीकरण किया जाता है। यथार्थ के प्रकटीकरण के कारण सत्य स्वयं ही प्रतिष्ठित हो जाता है। इस तरह से उपन्यासों की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति, सत्य की स्थापना का कार्य स्वयं ही संपन्न हो जाता है। व्यंग्यात्मक उपन्यास समस्त मानवीय जीवन की समीक्षा करता है और उसमें उपस्थित विसंगतियों का निराकरण करके उसके आचरण और उसके व्यवहार में उचित परिवर्तन करता है। मनुष्य अपने जीवन काल में नाना प्रकार की अनुभूतियों और अनुभवों से गुजरता है। इस तरह मनुष्य का संपूर्ण जीवन ही उसकी अनुभूतियों का परिणाम है। एक व्यंग्यात्मक उपन्यास मानव जीवन की इन अनुभूतियों को अपने अंतर में समाहित करता है और उन्हीं अनुभूतियों के सहारे समाज के सुधार का बीड़ा उठाता है। उपन्यास मानव के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा के रूप में समझा जा सकता है। उपन्यास साहित्य में समाहित सभी घटनाएं यद्यपि काल्पनिक पृष्ठभूमि में रची जाती है, तथापि उनका निष्कर्ष वास्तविक जीवन को प्रभावित करता है। इस प्रकार उपन्यासों में ऐसी ऐसी घटनाएं वर्णित की जाती है जो मानव जीवन को प्रभावित करती हुई प्रतीत होती हैं। एक व्यंग्य साहित्यकार स्वयं के जीवन में जो कुछ भी अनुभूत करता है, उसी को अपने साहित्य में प्रकट करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यंग्यात्मक उपन्यास मानव के

वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा होता है। ऐसा साहित्य मानव जीवन के अतीत को आधार बनाकर वर्तमान परिस्थितियों की विवेचना करता है। इस प्रकार यह अतीत का चित्र खींचता हुआ एक दस्तावेज माना जा सकता है। पृष्ठभूमि के बिना कोई भी साहित्य संभव नहीं होता है इसीलिए व्यंग्यात्मक उपन्यास अपनी कथावस्तु के लिए भूतकाल पर निर्भर होता है। साहित्यकार भूतकाल में घटी घटनाओं के आधार पर ही वर्तमान काल की परिकल्पना करता है और उसी के आधार पर अपने साहित्य की सर्जना करता है। यह देश काल तथा परिस्थितियों का चित्रण करता हुआ मानव जीवन की समीक्षा करता है। उसी समीक्षा के आधार पर यह जीवन में व्याप्त विसंगतियों का अन्वेषण करता है। यह मानव जीवन में व्याप्त विसंगतियों को जड़ से उखाड़ फेंकने का पूरा प्रयत्न करता है। एक व्यंग्यात्मक उपन्यास जो कुछ भी यथार्थ है उसी का अन्वेषण करता है और अपने भीतर ऐसी ही भाव सामग्री को स्थान देता है। यथार्थ किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो सकता है। एक व्यंग्यकार की दृष्टि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ती है और वह इन समस्त क्षेत्रों में विसंगतियों का अन्वेषण करने में समर्थ होती है। यथार्थ के चित्रण में वह कभी कभी कटुवादी भी हो जाता है। ऐसा कार्य करते समय एक व्यंग्यात्मक उपन्यासकार सदैव निष्पक्ष न्यायाधीश की भूमिका में समाज के सम्मुख उपस्थित होता है।

संस्करण :

श्रीलाल शुक्ल ने कभी भी महानता का मुखौटा नहीं लगाया। उनकी सहज विनम्रता किसी भी व्यक्ति के हृदय के जीतने के लिए पर्याप्त थी। उनका पहनावा बेहद साधारण था। उनकी महानता का वर्णन करना सहज संभव नहीं है।

श्रीलाल शुक्ल का साहित्यिक सरोकार :

किसी भी सृजनकर्ता द्वारा किया गया सृजन उसकी विशिष्टता का द्योतक होता है। साहित्य के क्षेत्र में यही तथ्य सत्य सिद्ध होता है। कोई भी साहित्यकार अपने आसपास के माहौल द्वारा प्रभावित होता है और उसी से उसमें सृजनात्मकता के बीज उगते हैं साहित्य सर्जना की दृष्टि से यदि श्रीलाल शुक्ल के सर्जनात्मक सरोकार अध्ययन किया जाए तो हम पाते हैं कि सृजनात्मकता के बीज तत्व उनमें बाल्यकाल से ही विद्यमान थे। श्रीलाल शुक्ल की सर्जनात्मक क्षमता का विकास करने का श्रेय उनके चचेरे चाचा पंडित चंद्रमौली शुक्ल को जाता है। चंद्रमौलि शुक्ल स्वयं एक अच्छे लेखक थे। उन्होंने कई पुस्तकों रचना की थी। छुट्टियों के दिन में जब वह अपने गांव वापस आते थे तो अपने साथ ढेर सारा साहित्य साथ लेकर आते थे। उनके चाचा के पास अनेक तरह की पत्र पत्रिकाएं तथा विशिष्ट तरह के साहित्य उपलब्ध थे। उस साहित्य के विषय में श्री लाल शुक्ला स्वयं कहते हैं–''वहां हमारे लिए चांद, माधुरी, सुधा, सरस्वती, गंगा, हंस, सुकवि काव्य कलाधर, आदि पढ़ने का मौका था । मैंने प्रेमचंद और प्रसाद की कई पुस्तकें, जो उन्हें भेंट की गई थी, उन पर साहित्यकारों के हस्ताक्षरों को बार–बार गौर से देखता था। नागरी प्रचारिणी सभा और गंगा पुस्तक माला, वर्मा और निराला की कृतियां भी थी।''[3]

बालक श्रीलाल शुक्ल उस साहित्य को बड़ी ही रुचि के साथ पढ़ते थे। चाचा के साहित्य को पढ़ते–पढ़ते उनके मन में भी सृजनात्मक क्षमता का विकास होने लगा। उनका हृदय साहित्य रचना की ओर अग्रसर हुआ और उनकी महान लेखनी ने अद्‌भुत साहित्य का सृजन करना प्रारम्भ कर दिया। चूंकि उनका जन्म ग्रामीण परिवेश में हुआ था, शहरों से उनका कोई सरोकार न था, इसलिए ग्रामीण परिवेश की झलक उनके साहित्य में स्पष्टतः दिखाई देती है । 12–13 वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने साहित्य सर्जना प्रारंभ कर दी थी। सर्वप्रथम उन्होंने कविताएं लिखना प्रारंभ किया। उनकी कविता में घनाक्षरी जैसे तमाम पद शामिल थे। समकालीन कविताओं में खास तौर पर घनाक्षरी और सवैया की ही अधिकता थी। समकालीन कवियों में बच्चन, सुमन, नेपाली आदि लोग शामिल थे. और वह विशिष्ट प्रकार की सवैया और घनाक्षरी कवि सम्मेलन में प्रस्तुत करते थे। श्रीलाल शुक्ल भी उन्हीं की विधा को अपनाकर घनाक्षरी तथा सवैयों की रचना की। अपने इस कविता सृजन के विषय में श्रीलाल शुक्ल स्वयं लिखते हैं–''सन 1943–44 तक कई घनाक्षरियाँ और दूसरी तरह की कविताएं लिखी । गाकर सुनाने के मामले में मेरा गला हमेशा स्वेच्छाचारी था। कभी–कभी अच्छा खासा जमा भी ले जाता था।''[4]

बाद में उनके द्वारा कुछ कहानियों, निबंधों तथा उपन्यासों की रचना की गई। इस संबंध में स्वयं कहते हैं।–''चौदह–पंद्रह साल की उम्र तक मैं एक महाकाव्य (अधूरा दो लघु उपन्यास (पूरे) कुछ

नाटक, कई कहानियां लिख चुका था। नए लेखकों को सिखाने के लिए उपन्यास लेखन की कला पर एक ग्रंथ भी शुरू किया था, पर वह दो अध्यायों के बाद ही बैठ गया।''[5]

उनका लेखन कार्य नियमित रूप से 1953 से प्रारंभ हुआ। आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की गिचिर पिचिर से परेशान होकर उन्होंने 'स्वर्ण ग्राम' और 'वर्षा' नामक निबंध लिख डाला। यह निबंध उन्होंने धर्मवीर भारती के पास भेजा और धर्मवीर भारती ने इसे 'निकष' नामक पत्रिका के पहले अंक में प्रकाशित करवा दिया। श्रीलाल शुक्ल के प्रसिद्धि की गाथा यहीं से प्रारंभ होती है। उसके पश्चात उन्होंने कई उपन्यास साहित्य का सृजन किया और उनकी सर्जनात्मक क्षमता का अद्भुत उद्घाटन प्रारंभ हो गया।

अंधविश्वास पर कड़ा प्रहार :

आजकल अंधविश्वास को भी धर्म से जोड़ दिया जाता है और लोग उसे एक परिपाटी समझ कर उस पर विश्वास करते हैं। किसी घटना के प्रति लोगों की गलत धारणाएं अंधविश्वास के रूप में सामने आती हैं। राग दरबारी उपन्यास में धार्मिक अंधविश्वास का उल्लेख है जहां वैद्य जी के सपने में स्वयं हनुमान जी आकर उनसे काश के जंगल में गांठ बांधने की बात कह जाते हैं। रंगनाथ एक शोध छात्र होते हुए भी काश के जंगलों में गांठ मारता है और उसे देख कर सनीचर भी इस बात को सुनकर वही गांठ बांधना प्रारंभ कर देता है। गांव के लोग किसी बीमारी को भी अंधविश्वास का स्वरूप प्रदान कर देते हैं। इसीलिए तो 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में लोगों की बीमारी दूर करने के लिए देवी को बलि चढ़ाई जाती है। इस पूजा से प्रसन्न होकर देवी जी स्वयं एक महिला के ऊपर सवार हो जाती हैं। इस स्थिति का चित्रण करते हुए श्री लाल शुक्ल लिखते हैं–''कुछ लड़कों की जाने चेचक में समाप्त हुई। शीतला के प्रकोप को बचाने के लिए मजदूरों ने दो बकरों की बलि दी होम किया। एक मजदूरिन को माई का साक्षात्कार होता था। दस बजे तक वह बराबर सिर के बाल खोलकर धरती पर सिर और हाथ पटकती रही और सब स्त्रियां माता के गीत गाती रही।''[6]

ढोंगियों तथा तांत्रिकों का भंडाफोड :

यद्यपि भारत में तंत्र विद्या प्राचीन काल से ही विद्यमान है, किंतु उस प्राचीन विद्या का ज्ञान आज संभवत किसी के पास नहीं है। आधुनिक समय में तंत्र का उपयोग करने वाले लोग वास्तव में कुछ नहीं जानते और अपनी कपोल कल्पित क्रियाओं द्वारा आम जनमानस को भ्रमित करते हैं। ग्रामीण परिक्षेत्र में कुछ लोग तांत्रिकों का स्वरूप बनाकर भोली–भाली जनता को लूटने का कुत्सित प्रयास करते हैं। वे कपोल कल्पित भूतों प्रेतों का भय दिखाकर उनके इलाज के नाम पर अपना गोरखधंधा बढ़ाते रहते हैं। ऐसे लोगों की प्रसिद्ध दूर–दूर तक अपने आप होती चली जाती है। बड़े–बड़े राजनेता पूंजीपति सभी इन तांत्रिकों के दरबार में हाजिरी लगाते हैं। इसी प्रकार का एक प्रकरण पहला पड़ाव उपन्यास में आता है जहां सिद्धनाथ जी एक मशहूर योगी हैं। वह तंत्र विद्या में अत्यंत निपुण माने जाते हैं, जबकि यथार्थ में उन्हें तंत्र विद्या का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। शहर के बड़े बड़े व्यापारी और प्रतिष्ठित लोग उनका आशीर्वाद लेने के लिए व्याकुल रहते हैं और उनके दरबार में भीड़ लगाए रहते हैं। इसी की आड़ में सिद्धनाथ जी अपनी समृद्धि में भी वृद्धि करते हैं। इस विषय पर श्री लाल शुक्ल व्यंग्यावधान करते हैं– ''सिद्धनाथ जी शहर के मशहूर योगी हैं, प्रसिद्ध तांत्रिक लगभग सभी बड़े नेता अफसर और व्यापारी उनका आशीर्वाद लेने जाते हैं और उनके सहारे अपनी और देश की संपत्ति बढ़ाते हैं। वे अपने विचार मात्र से अपनी हथेली में अभूत, मेवा, फल कुछ भी प्रकट कर देते हैं वही उनकी सिद्धि है और इस सिद्धि से निकलने वाली उनकी बहुमुखी समृद्धि है।''[7]

भूत–प्रेंत की मान्यताएं :

समाज में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार ने कुछ हद तक लोगों में अज्ञानता और अंधविश्वास का नाश किया है। किंतु आज भी समाज में ऐसे लोग विद्यमान हैं जो भूत प्रेतों की झूठी मान्यताओं पर विश्वास करते हैं। यहां तक कि वह तो भूत प्रेतों तक को धर्म से जोड़ देते हैं और उनके लिए की जाने वाली क्रियाओ को धार्मिक स्वरूप प्रदान कर देते हैं। समाज में आज भी ऐसे लोग देखे जा सकते हैं जो भूर्ती तथा प्रेतों की मान्यताओं को सच साबित करने का कुत्सित प्रयास करते रहते हैं। ऐसे लोग भूत प्रेतों का उल्लेख करके एक भय का वातावरण निर्मित करते हैं और इसकी आड़ में लोगों का

शोषण करते हैं। भूत प्रेतों में भी सांप्रदायिक व्यवस्था लागू होती है। हिंदुओं में यदि भूत पाए जाते हैं तो मुसलमानों में जिन्न श्रीलाल शुक्ल सूनी घाटी का सूरज उपन्यास में इसी तरह का एक प्रकरण सामने लाते हैं जहां अमजद अली नाम का व्यक्ति उपन्यास के नायक रामदास के समक्ष भूत प्रेतों के माध्यम से अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए रामदास से कहता है:–''अरे रामदास इन जिन्नात की न पूछो। कहने को यह मुसलमान है पर यह तुम्हारे हिंदू भूतों से भी बढ़कर भयानक है। तुम्हारे यहां तो भूत पटकता है, प्रेत खाने को दौड़ता है, अगिया बेताल बदन झुलसाने को दौड़ता है। चुड़ैल पास लेट के आदमी का खून चूस लेती है। बरम राक्षस पीपल का पेड़ सिर पर गिरा देता है पर लेता क्या है? ज्यादा से ज्यादा साल छः महीने का बुखार आ जाता है। अरे जिन्नात और खबीस सब के चाचा होते हैं। ब्रह्मराक्षस लग जाए पर खबीस से किसी का पाला न पड़े।''[8]

तीर्थ स्थलों में कदाचार की समस्या :

भारतीय धर्म विधान के अनुसार तीर्थ यात्रा और देव दर्शन पुण्य के कार्य माने गए हैं। ऐसे स्थल पूरी तरह से पवित्र तथा आध्यात्मिक कार्यों से परिपूर्ण होते है। ऐसे स्थानों पर जाकर मनुष्य में ईश्वर के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास में वृद्धि होती है और उसके मन से भोग की प्रवृति का नाश होता है। किंतु आधुनिक समय में धार्मिक स्थल अपनी गरिमा खोते जा रहे हैं। ऐसे धार्मिक स्थलों पर तथाकथित धर्माचार्यो और पुजारियो ने एक प्रकार के अनैतिक वातावरण को उपस्थित कर दिया है। बड़े–बड़े मठ और मंदिर भोग और विलासिता के अड्डे बन गए हैं। ऐसे मंदिरों तथा देवालयो में भ्रष्टाचार और कदाचार का बोलबाला है। आए दिन मठों तथा मंदिरों में उनकी संपत्तियों को लेकर विवाद की स्थिति उत्पन्न होती रहती है। ऐसी अवस्था में जब कोई संभ्रांत व्यक्ति श्रद्धा भाव से मठों और मंदिरों मैं ईश्वर दर्शन के लिए जाता है तो वहां की परिस्थिति का अवलोकन करने के बाद उसके मन में ऐसे स्थलों के प्रति निष्ठा का भाव समाप्त हो जाता है। वहां बैठे पुजारी और पंडित उनका शोषण करने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोगों में वैराग्य ग्रहण करने के बावजूद भी लोभ, मोह और माया में कोई कमी नहीं आती और पूरी तरह से विषयों में आसक्त रहते हैं। वह मदिरापान और अन्य तरह की बुराइयों में भी सम्मिलित होते हैं। सीमाएं टूटती है उपन्यास में तारानाथ अयोध्या में स्थित किसी मंदिर में दर्शन करने के लिए जाता है तो मंदिर के सामने चबूतरे पर बैठा एक वृद्ध आदमी उसे मंदिरों के विषय में जानकारी देता है और यह कहता है कि मंदिरों के प्रति उसकी निष्ठा सार्थक नहीं है। वह कहता है–''यहां अब कुछ बचा नहीं है साहेब मंदिरों के ऊपर धड़ल्ले से शराब कबाब चलता है साहेब।''[9]

धर्माचार्यों का पाखंड :

धर्माचायों और साधु–संतों को समाज आदर और सम्मान की दृष्टि से देखता है और उनके ही आचरण को अपने आचरण में समाहित करना चाहता है। किंतु वर्तमान समय में स्थित बिल्कुल इसके विपरीत है। धर्माचार्यों में नैतिक आचरण तो कम किंतु पाखंड की अधिकता होती जा रही है। ऐसे लोग अपने को प्रभावशाली तथा सिद्ध पुरुष प्रदर्शित करने के लिए नाना प्रकार के पाखंड करते हैं। वह अपने को दैवीय अवतार तक घोषित कर देते हैं। दिन रात शरीर में भभूति रमा कर नकली साधना में व्यस्त रहते हैं। राग दरबारी उपन्यास में ऐसे ही एक संत धर्माचार्य का उल्लेख है जो दिन–रात गांजा पीता रहता है और श्री कृष्ण के मुकाबले शंकर जी का अधिक भक्त दिखाई देता है। उसकी चिलम दिन भर धकाधक सुलगते रहती है। देश की जनता ऐसे बाबाओं के पीछे लगी रहती है और उनके गुणगान में व्यस्त रहती है। श्रीलाल शुक्ल ऐसे ही पाखंडी धर्माचार्यों का पर्दाफाश करते हुए कहते हैं–''बाबा जी दो दिन के बाद ही कृष्ण का अवतार मान लिए गए। यह दूसरी बात है कि जमुना का जल न पीकर उन्होंने सिर्फ गांजा पिया और पिशाचों की तरह श्री कृष्ण के मुकाबले वे शंकर भगवान के जरा नजदीक रहे। इस दौरान चिलम धकाधक सुलगती रही और साबित करती रही कि गांजा चाहे चोरी का हो चाहे सरकारी दुकान का और गंगाजल चाहे गंगोत्री का हो या गंदे नाले के संगम का इनका असर हर हालत में बराबर रहता है।''[10]

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक व धार्मिक सभी प्रकार के यथार्थ को अपने अंदर समाहित करते हैं। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों की विशिष्टता के रूप में इन सारी यथार्थताओं का प्रकटीकरण को माना जा सकता है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास इतने विशिष्ट है कि वह समाज में स्थित विद्रूपताओं और विभीषिकाओं का

अन्वेषण कर लेते हैं और उनके विषय मैं अपनी बेबाक टिप्पणी समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं। उनके उपन्यासों को पढ़ने के बाद पाठक के मन में एक ऐसा चित्र उपस्थित हो जाता है जिसमें जीवन की विडंबनाएं अपने आप बाहर आने लगती हैं और प्रकट हो जाती है इस विचित्र समाज की यथार्थता।

संदर्भ :

1. डॉ लेखा एम : श्रीलाल शुक्ल का औपन्यासिक यथार्थ एक समाजशास्त्रीयदृष्टि, पृष्ठ–34
2. डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, पृष्ठ–164
3. श्रीलाल शुक्ल यह घर मेरा नहीं : पृष्ठ– 115
4. डॉ अमृतलालप्पा बाडुवाले श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास : एक अनुशीलन : पृष्ठ संख्या–14 संस्करण प्रथम –2016
5. श्रीलाल शुक्ल अगली शताब्दी का शहर पृष्ठ 72
6. श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज पृष्ठ 73.
7. श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव पृष्ठ–144
8. श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृष्ठ– 34
9. श्रीलाल शुक्ल : सीमाएं टूटती हैं, पृष्ठ 47
10. श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी पृष्ठ– 206

Vol. XVI, [Issue No. 1, 2 & 3 combined], Jan.– Dec. 2019, ISSN: 0970-1745

73वें संविधान संशोधन अधिनियम का पंचायती राज संस्थाओं पर प्रभाव

डॉ0 मु0 इकबाल खाँ
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

भारत एक विशाल तथा गाँवों का देश है। इसकी **68.9 प्रतिशत आबादी 6,41,000 गाँवों में** निवास करती है। इससे स्पष्ट है कि गाँवों की उन्नति से ही देश की प्रगति सम्भव है।

भारत में पंचायतों का स्वरूप प्राचीनकाल से विद्यमान है। उस समय भी लोग अपनी सम्पत्ति और जीवन को सुरक्षित रखने के लिए व्यवस्थाएँ बनाते थे। उस समय भी सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों को व्यवस्थित करना बहुत महत्वपूर्ण था। लोगों में आपसी झगड़े होते थे जिसका फैसला **'पंचायतों'** द्वारा किया जाता था। ''ग्राम स्वतंत्र थे और लोगों की चुनी हुई पंचायत उनके कार्यों का प्रबन्ध करती थी। यहाँ तक कि राजा जो चाहता था नहीं कर सकता था।''[1] विदेशी शक्तियों के आगमन से पंचायतों का महत्व धीरे–धीरे खत्म हो गया क्योंकि राज्य सरकारों ने पंचायतों के कार्य अपने हाथ में ले लिए।

लार्ड रिपन के काल में **'भारतीय शासन अधिनियम, 1882** द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने के जो भी प्रयास किये गये वे **'सीमित और अपर्याप्त'** थे क्योंकि ब्रिटिश शासन भारतीयों के विकास की अपेक्षा हुकूमत करने में विश्वास करता था।

1947 में भारत के ब्रिटिश नियन्त्रण से स्वतंत्र होने के बाद ग्राम विकास की जिम्मेदारी सीधे जनता की चुनी हुई सरकार पर आ गयी। भारत में आधुनिक लोकतंत्र के जन्मदाता **जवाहर लाल नेहरू** अच्छी तरह जानते थे कि देश के विकास का रास्ता गाँवों के विकास से गुजरता है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, 1952 और राष्ट्रीय विस्तार सेवा, 1953 प्रयोग के तौर पर ब्लॉक सतर पर शुरू की गयी। इन योजनाओं के अन्तर्गत नियुक्त अधिकारियों ने अपनी जिम्मेदारी को ठीक तरह से पूर्ण नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने इस विकास कार्यक्रम में सहयोग प्रदान नहीं किया।

बलवन्त राय मेहता समिति, 1957 में गठित की गई। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि कार्यक्रम को सरकारी मशीनरी के भरोसे छोड़ना असफलता का कारण बना। आवश्यक है कि विकास से सम्बन्धित कार्य को स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया जाए। उनका कहना था कि विकास के कार्य के लिए अलग से ढाँचा तैयार किया जाए जिसे उन्होंने **'लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण'** का नाम दिया।

बलबन्त राय मेहता की रिपोर्ट के आधार पर **2 अक्टूबर 1959** को **राजस्थान** के **नागैर** जिले से पंचायत राज व्यवस्था शुरू की गई। ग्रामीण लोगों के मामलों के समाधान के लिए **'त्रि–स्तरीय ढाँचे'** का सुझाव दिया। गाँव के स्तर पर गाम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिले के स्तर पर जिला पंचायत। समय के साथ इस व्यवस्था में अनेकों कमियाँ नजर आने लगीं। कुछ राज्यों ने एक दशक तक चुनाव नहीं कराये, कार्य करने के लिए पर्याप्त धन पंचायतों को नही दिया और प्रशासनिक अधिकारियों का बहुत अधिक हस्तक्षेप पंचायतों के कार्यों में देखा गया।

64वे संविधान संशोधन विधेयक, 1989 को पेश करने का उद्देश्य उपरोक्त कमियों को दूर कर पंचायतों को **'संवैधानिक दर्जा'** देना था। इसमें महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए उन्हें **'आरक्षण'** देने की बात थी। समाज के कमजोर वर्गों को भी इन संस्थाओं में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो इसलिए उनके आरक्षण की बात कही गई। यह विधेयक अनेक अच्छे प्रावधान हेने के बाद भी संवैधानिक और राजनीतिक कारणों से पास नहीं हो सका।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1993–

ऐतिहासिक पंचायती राज विधेयक, 1992 संसद द्वारा पास कर दिया गया। आधे राज्यों की सहमति और राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद 24 अप्रैल, 1993 को लागू कर दिया गया। इस संशोधन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को **'संवैधानिक दर्जा'** दे दिया गया। इस संशोधन से संविधान में **'भाग IX और ग्यारहवीं अनुसूची'** जोड़ी गयी है। इसके अन्तर्गत पंचायती राज से सम्बन्धित उपबन्धों का वर्णन है। देश के सभी राज्यों को, पास किये गये कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत, एक साल के अन्दर पंचायती राज संस्थाओं के गठन के लिए कहा गया। **कर्नाटक पंचायत व्यवस्था को 'मॉडल**' के रूप में सभी राज्यों के लिए चुना गया। **मध्यप्रदेश** वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने वाला देश का **पहला राज्य** है। 2010 से **24 अप्रैल 'राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस'** के रूप में मनाया जाता है।

'ग्राम स्वराज' का जो सपना राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देखा था और जिसको संविधान निर्माताओं ने **'अनुच्छेद 40, राज्य के नीति निदेशक तत्व'** के अन्तर्गत राज्य के ऊपर छोड़ा था कि ''राज्य ग्राम पंचायतों के निर्माण के लिए कदम उठायेगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकर प्रदान करेगा जिससे कि वे स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सके।''[2] 73वें अधिनियम ने पंचायतों' को वह शक्ति प्रदान की जिसकी अपेक्षा वर्षों से की जा रही थी कि ''शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन कार्यों में हाथ बंटाए''[3] और अपने कार्यों की जिम्मेदारी स्वयं लें। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के **मुख्य प्रावधान** निम्नलिखित हैं–

1. भारतीय लोकतंत्र की शुरूआत '**ग्राम सभा'** से होगी। गाँव के सभी वोटर ग्राम सभा के सदस्य होंगे। यह ग्रामीण स्तर पर **प्रत्यक्ष लोकतंत्र की प्रथम इकाई** है। ग्राम सभा अपने क्षेत्र में केवल उन्हीं शक्तियों तथा अधिकारों का उपयोग करेगी जो राज्य सरकार द्वारा इसे दी जायेगी।
2. इस अधिनियम ने सभी राज्यों को पंचायती राज व्यवस्था के लिये **'त्रि–स्तरीय ढाँचा'** अपनाने का सुझाव दिया। ये स्तर इस प्रकार है–सबसे निचले स्तर पर या ग्राम के स्तर पर **'ग्राम पंचायत**', मध्य स्तर पर या ब्लॉक स्तर पर **'पंचायत समिति'** और शीर्ष स्तर पर या जिले के स्तर पर '**जिला पंचायत'**। अपवाद स्वरूप, ऐसे राज्य या केन्द्र शासित क्षेत्र जिनकी जनसंख्या 20 लाख से कम है, को '**मध्य स्तर या ब्लॉक स्तर**' की व्यवस्था करना जरूरी नहीं है।
3. तीनों स्तर के सदस्यों का '**चुनाव प्रत्यक्ष**' होगा। इसके लिए पूरे पंचायत क्षेत्र को जनसंख्या और स्थान के अनुपात में निर्वाचन क्षेत्रों या बोर्डों में बाँट दिया जायेगा।
4. ग्राम पंचायत के **'अध्यक्ष'** का चुनाव ग्राम सभा के सदस्य करेंगे। पंचायत समिति और जिला परिषद के अध्यक्ष का चुनाव इन संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जायेगा।
5. पंचायत समिति या ब्लॉक पंचायत और जिला पंचायत में **'दो तरह के सदस्य**' होंगे–निर्वाचित और पदेन। पदेन सदस्यों में यह व्यवस्था की गयी है कि –ग्राम पंचायत का अध्यक्ष, पंचायत समिति अर्थात् ब्लॉक पंचायत का सदस्य होगा। ठीक इसी प्रकार, ब्लॉक पंचायत का अध्यक्ष, जिला परिषद का सदस्य होगा। लोक सभा, विधान सभा के सदस्यों और राज्य सभा, विधान परिषद के सदस्यों को अपने क्षेत्र की ग्राम पंचायतों को छोड़कर, ब्लॉक पंचायत और जिला परिषद की रूटीन मीटिंग में भाग लेने और वोट देने का अधिकार होगा। लेकिन अध्यक्षों के चुनाव में यह अधिकार नहीं होगा। ठीक इसी प्रकार, इन संस्थाओं के विघटन में भी इन माननीयों का कोई दखल नहीं होगा।
6. तीनों स्तर की पंचायतों का '**कार्यकाल**' 5 वर्ष का होगा। नयी पंचायत का गठन 5 वर्ष की समाप्ति से पहले कर लिया जाए और विघटन की स्थिति में विघटन की तारीख से 6 महीने समाप्त होने से पहले नयी पंचायत का गठन कर लिया जाए।
7. तीनों स्तरों की पंचायतों में **'एक–तिहाई' स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित'** किये गये हैं जिससे कि महिलाएँ लोकतांत्रिक शासन में अपने राजनीतिक अधिकार का बेहतर ढंग से उपयोग कर सकें और अपनी सक्रिय भागीदारी अपने मामलों के प्रबन्धन और समाधान में निभा सके। महिलाओं को दिया गया यह अधिकार भारतीय राजनीति में '**मील का पत्थर'** साबित होगा। इसके अतिरिक्त '**अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के लोगों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित'** किये गये हैं। यह आरक्षण चक्रानुक्रम या वाई रोटेशन होगा। अगर राज्य

सरकार चाहे तो **'पिछड़ी जाति'** का भी पंचायतों में आरक्षण कर सकती है। इन जातियों के आरक्षित स्थानों में भी 1/3 स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। चक्रानुक्रम की व्यवस्था इसलिए की गई है कि वही चुनाव क्षेत्र बार–बार एक ही वर्ग के लिए आरक्षित न हो जाये और अन्य वर्गों को उस चुनाव क्षेत्र से खड़े होने का मौका ही न मिले।[4] समाज के कमजोर वर्गों का भी निश्चित प्रतिनिधित्व हो सके।

8. **राज्य निर्वाचन आयोग** के पर्यवेक्षण, निर्देशन और नियंत्रण में पंचायतों के चुनावों का संचालन होगा।
9. राज्य द्वारा पंचायतों को **'वित्तीय अधिकार'** भी सौंपे जायेंगे। ये संस्थायें अपने क्षेत्र में टेक्स और शुल्क लगाकर फण्ड एकत्रित करेंगी। राज्य सरकार **'सहायता अनुदान'** के माध्यम से भी इन संस्थाओं की वित्तीय सहायता करेगी।
10. राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक 5 वर्ष बाद **'राज्य वित्त आयोग'** का गठन किया जायेगा। ये आयोग राज्य सरकार और पंचायती राज संस्थाओं की बीच धन के बटवारे के संबंध में सिफारिश करेगा।[5]
11. राज्य सरकार, स्थानीय संस्थाओं को **अधिकार और शक्तियाँ** प्रदान करेगा जिससे कि वे अपने कार्यों को स्वतंत्र और स्वायत्त रूप से करने में समर्थ हो सकें। आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए योजनाएँ बनाना इन्हीं संस्थाओं का कार्य होगा। अगर राज्य सरकार आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए कोई योजना इन संस्थाओं को सौंपती हे तो उसे लागू करना भी इनका काम होगा।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधान या व्यवस्थाएँ उत्तर पूर्व के राज्यों (नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम, मणीपुर, पश्चिम बंगाल का दार्जिलिंग क्षेत्र आदि) पर लागू नहीं होते थे। 73वें संशोधन के प्रावधानों को उत्तर पूर्व के राज्यों तक पहुँचाने के लिए 'अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार विधेयक, **1996** पास किया गया। इसके लिए संसद ने **अनुच्छेद 243(ड़) के खण्ड (ख)** का सहारा लिया।[6]

पंचायती राज संस्थाओं की कमियाँ और उन्हें दूर करने के सुझाव–

1. अनुच्छेद 40 को राज्य सूची से निकालकर **समवर्ती सूची** में लाने का सीधा अर्थ यह है केन्द्र सरकार, राज्य की शक्तियों और नियंत्रण कमजोर करते हुए केन्द्र द्वारा लागू की गयी योजनाओं का सीधा लाभ ग्रामीण जनता तक पहुँचाना चाहती है। यह वही दृष्टिकोण है जो 1952 में सामुदायिक विकास योजना को लागू करते समय अपनाया गया था।[7] यह दृष्टिकोण स्थानीय संस्थाओं की सरकार पर निर्भरता बढ़ायेगा और उन्हें स्वतंत्र यूनिट की तरह कार्य करने में बाधा उत्पन्न करेगा।
2. सांसदों और विधायकों का पंचायतों की मीटिंग में **वोट का अधिकार** माननीयों के प्रभाव को बढ़ायेगा जो विकेन्द्रीकरण की भावना के विरुद्ध है।[8] इस व्यवस्था से कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा बल्कि ग्राम राजनीति के केन्द्र बन जायेंगे। इसके अलावा इन बी0आई0पी0 के पास अपने पद की जिम्मेदारियों के लिए ही समय का अभाव रहता है। इसलिए इनको उपरोक्त जिम्मेदारी से अलग रखा जाए।
3. **'सांसद निधि'** के तहत सांसदों को मिलने बाला करोड़ों रुपया इनकी ग्रामीण विकास में सम्राट जैसी स्थिति बना देता है।
4. पंचायतों में महिलाओं का आरक्षण एक क्रान्तिकारी कदम है। देखने में यह आया है कि अधिकतर महिलायें अपने पद के कार्य कराने की बारीकियाँ नहीं जानती और कार्य प्रणाली से परिचित नहीं हो पातीं। इसीलिए अकसर उनके पति उनके कार्यों को सम्पन्न कराते हैं। इनके लिए सरकार को उनके **'प्रशिक्षण'** की व्यवस्था करनी चाहिए।
5. पंचायतों पर अकसर भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं। **'सोशल आडिटिंग'** इस दिशा में सराहनीय कदम हो सकता है। इसके अन्तर्गत जनता अपने प्रतिनिधियों द्वारा किये गये कार्यों की आडिटिंग करती हैं इस तरह से जनता विकास से सम्बन्धित किये जाने वाले कार्यों की निगरानी रख सकती है।

6. पंचायतों के कार्यों की सूची बहुत बड़ी है और इसके वित्तीय स्रोत बहुत सीमित हैं। ये संस्थाऐं राज्य सराकर की 'सहायता अनुदान' पर निर्भर रहती हैं। इस अनुदान के अकसर समय से न प्राप्त होने के कारण कार्य समय से पूर्ण नहीं हो पाते। समय के साथ जनता की मांगे बढ़ती जा रही हैं इसलिए सरकार को पंचायतों के **वित्तीय स्रोत भी बढ़ाने** चाहिए।
7. सरकार अगर पंचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धित नीतियों को **पूरी ईमानदारी** से लागू करे तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव लाया जा सकता है।[9]
8. भारत का अगर तीव्र गति से विकास करना है तो ग्रामीण महिला और पुरुष को उन **कार्यों के उत्पादन का प्रशिक्षण** दिया जाये जिसकी बाजार में अधिक मांग हो। इससे ग्राम आत्मनिर्भर बनेंगे और देश के निर्माण में भागीदारी कर सकेंगे।
9. पंचायतों के चुनाव में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के राजनीतिक दलों के प्रवेश ने ग्राम की राजनीति को बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है। देश में पार्टियों की राजनीतिक स्थिति का आंकलन पंचायत स्तर पर जीती हुई सीटों से होने लगा है। इसने ग्राम स्तर पर **दलगत और जाति की राजनीति को बढ़ावा** दिया है।
10. पंचायत स्तर पर, पंचायत सचिव और प्रधान के गठजोड़ ने पंचायत के अन्य सदस्यों का महत्व कम कर दिया है क्योंकि पंचायत समितियों को कार्य सौंपने के बजाये ये दोनों ही अधिकतर कार्यों को सम्पन्न करते है। '**सचिव जनप्रतिनिधि नहीं**' है इसलिए उसका कार्यों को अपने हाथ में लेना ठीक नहीं है।
11. भारतीय लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई **'ग्राम पंचायत'** है इसलिए विकास, पर्यावरण, स्वच्छता, जल, आदि से सम्बन्धित योजनाएँ यहीं से बनकर ऊपर जानी चाहिए। यह पद्धति केवल ग्राम को ही आत्मनिर्भर नहीं बनायेगी बल्कि ग्राम विकास के लक्ष्यों को भी पूरा करने में मदद करेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Jawahar Lal Nehru; Glimpses of world History, Lindsay Drummond Ltd., London, 1945, P.24.
2. भारतीय संविधान, अध्याय–IV, अनुच्छेद–40
3. डॉ0 पुखराज जैन, राजनीति विज्ञान, प्रतिनिधि राजनीति विचारक एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और भारतीय गणतन्त्र का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2002, पृष्ठ–263
4. एस0सी0 सिंहल; राजनीति विज्ञान, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012, पृ0 207
5. डॉ0 पुखराज जैन, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2002, पृ0 265
6. एस0सी0 सिंहल;राजनीति विज्ञान, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012, पृ0 209
7. G.S. Bhargava; Panchayati Raj: Precept and Practice, the Hindustan Times, May 12, 1994
8. Rakesh Aggarwal; Panchayati Raj: Still a Far cry, the Economic Times, N.Delhi, August 14, 1992.
9. S.N. Mishra, Lokesh Kumar and Chaitali Pal; New Panchayati Raj in Action, Mittal Publications, New Delhi, 1996, P. 22

वर्तमान समय में संघृत/सतत् विकास की अवधारणा की आवश्यकता

डॉ0 राजीव कुमार
एसो0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

पर्यावरण की रक्षा व मानव का सतत् विकास की सहगामी अवधारणा सतत् विकास, संघृत विकास, सम्पोषित विकास, धारणीय विकास, जीवन सह विकास आदि नामों में जाना जाता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1962 में रॉकल कॉर्तन की पुस्तक 'साइलेन्ट स्प्रिंग' में तथा 1968 में जीव–विज्ञानी इरलिच की पुस्तक 'द पापूलेशन बम्ब' से उभरकर सामने आया । संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1983 में नार्वे के प्रधानमंत्री जी0एच0 ब्रन्टलैण्ड की अध्यक्षता में पर्यावरण एवं सतत् विकास के दौरान भी किया गया जिसका प्रकाशन 1987 में 'अवर कॉमन फ्यूचर' नामक रिपोर्ट के साथ हुआं जी0एच0 ब्रन्टलैण्ड के शब्दों में –सतत् विकास एक उपागम है जो भविष्य में मानव की माँग की आपूर्ति करने की पर्यावरण की क्षमता के साथकोई समझौता किये विना वर्तमान समाज की इच्छाओं एवं आवष्यकताओं की पूर्ति करने का द्योतक है।[1] विलियम कन्निधम व मैरी कन्निधम के अनुसार सम्प्रेषित/सतत् संघृत विकास मानव कल्याणमें प्रगति को दर्शाता है जिसे हम मात्र कुछ वर्षों के स्थान पर दीर्घकाल तक रख सकें। सम्पोषित सतत्/संघृत विकास के परिणाम में भागीदार, सम्पूर्ण मानव समाज होना चाहिए, न कि यह किसी खास वर्ग तक सीमित रहे।[2] इन्टरनेट पर सतत् विकास की अवधारणा की परिभाषा दी गयी है ''भावी पीढ़ी की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में ह्रास किये विना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करना ही संघृत/सतत् विकास है।

''सतत् पोषणीय विकास–आर्थिक विकास की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण में विना किसी हानि के वर्तमान तथा भविष्य पीढियॉ दोनां के जीवन की गुणवत्ता बनाऐ रखना है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पर्यावरण को विना नुकसान पहुँचाये हुए संसाधनों का उपयोग एवं भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ विकास को सतत्/संघृत विकास कहा जा सकता है।

इस अवधारणा का उद्देश्य सामाजिक–आर्थिक विकास के साथ पर्यावरण का संरक्षण करना है। मानव की भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वर्तमान माँग को पूर्ण करना है। अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, वर्तमान में, भावी पीढ़ी की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उपयोग करना सतत्/सम्पोषित की विकास की अवधारणा कहलाती है। इसमें प्रगति एवं विकास, पारिस्थितकी के अनुरूपण संसाधनों का उपयोग करके पारिस्थितिकी संकट को रोके जाने की सम्भावना पर जोर दिया जाता है विकास को केवल आर्थिक उत्पादन से न जोडकर उसके सामाजिक तथा पारिस्थितिकी पक्षों पर भी ध्यान में रखकर न्यूनतम हॉनि पहुँचाने वाली प्रौद्योगिकी का विकास, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण, संसाधनों का नियंत्रित उपभोग, संरक्षण व पुर्नचक्रण तथा समग्र दृष्टिकोण अपनाने पर ही संघृत/सम्पोषण/सतत् विकास निर्भर करता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि पर्यावरण को विपरीत रूप से प्रभावित किये विना मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम विकास ही सतत् विकास है। जिसमें निम्न तथ्यों को शामिल किया जाता हैः–

1. ऐसा उत्पादन तंत्र जो पारिस्थितिकी के अनुकूल हो तथा क्षति की पुनः पूर्ति की जा सके ।
2. संसाधनों का उपयोग को नियंत्रित रखते हुए भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों का संरक्षण प्रदान करना ।
3. सीमित मात्रा में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग सीमित मात्रा में करना लेकिन उत्पादकों में वृद्धि करना और समाज के सभी वर्गों में सम्यक वितरण की व्यवस्था करना।

4. पुनः नव्यकरणीय व अक्षय संसाधनों के उपयोग पर अधिक बल देना ।
5. संसाधन के आधार का संरक्षण एवं संर्वधन तथा वैकल्पिक संसाधनों की खोज करना।
6. आर्थिक वृद्धि को सक्रिय करना एवं सामाजिक दृष्टिकोण से संसाधनों के उपयोग में समानता रखना ।
7. समाज के हर वर्ग के लिए स्वास्थ्यप्रद पर्यावरण रोजगार जल, खाद्य पदार्थ तथा ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति करना।
8. प्रौद्योगिकी की दिशा का पुनः निर्धारण ताकि आपातकालीन परिस्थितियों पर काबू करने की क्षमता में बढोत्तरी की जा सके ।
9. जनसंख्या का अनुकूलतम स्तर सुनिश्चित करना।

सतत्/संधृत/पोषणीय विकास का आधार (Base of Sustainable development)

सतत् विकास दो मुख्य अवधारणों पर आधारित है।

1. पहली अवधारणा के अन्तर्गत एक ऐसे अर्थतंत्र का निर्माण करना है जहॉ उपभोग एवं समृद्धि से समाज में असमानता न हों। आज विश्व विकास में असमान वृद्धि के कारण विकसित, विकासशील अथवा अमीर व गरीव देशों की श्रेणियों में बटॉ है एक तरफ संसाधनों का अंधाधुन्ध दोहन किया गया है तो दूसरी ओर प्रचुर मात्रा में संसाधन उपलब्ध होते हुए भी उनका उपयोग नहीं हो पा रहा है। इसी असमानता को दूर करने का आधार सतत् विकास है।
2. सतत् विकास की दूसरी अवधारणा सतत् विकास न तो पारिस्थितिकी तंत्र के साथ मानव द्वारा किंचित छेड–छाड का कटटर विरोधी है और नही विकास की कोई सीमा तय करने का समर्थक है। अतः सतत् विकास वह विकास है जो औद्योगिकी का अधिकाधिक उपयोग करके पारिस्थितिकी अनुकूलित उत्पादन की वकालत करता है।

सतत्/सम्पोषित विकास की आवश्यकता (Need of Sustainable Development)

प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक व अनियत्रित दोहन से पर्यावरण में प्रदूषण का बढ़ना, जैव विविधता का ह्रास होना, प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि होना, पृथ्वी के बढते तापमान से पारिस्थितिकी असन्तुलन आदि समस्याओं से निवटने व भावी की पीढ़ी के लिए संसाधनों को बचाना, नियोजन एवं विकास के लिए सतत् विकास/सम्पोषित विकास आज की जरूरत बन गया है। जिसको समझने के लिए सतत् विकास के घटकों को जानना आवश्यक है ।

1. **संरचनात्मक विकास (Structural Development)–**इसके अन्तर्गत क्षेत्र विशेष में उपलब्ध ढॉंचागत सुविधाऐं एवं संरचनात्क विकास को शामिल किया जाता है जिसके अन्तर्गत अधिवासों में आवासीय सुविधा, जलापूर्ति, ऊर्जा, खाद्य वस्तुओं की उपलब्धता, शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, दूर संचार सेवाओं का विस्तार तथा नियमित आपूर्ति आदि आते हैं। आदर्श एवं नियोजित अधिवासों का निर्माण, बस्तियों का नियमन एवं महानगरीय विस्तार पर प्रभावी नियंत्रण करना इसी संरचनात्मक विकास के घटक हैं ।
2. **सामाजिक विकास (Social Development)–**वस्तियों में मानव समाज निवासित है। समाज के सभी वर्गों के लिए विकास के समान अवसर उपलब्ध होने पर ही सामाजिक समग्र विकास सम्भव है। इस घटक के अन्तर्गत जनसंख्या, सामाजिक संगठन, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य समानता, सामुदायिक सुविधाऐं एवं विकास, सामाजिक पूँजी तथा वृहद पुरुषों एवं महिलाओं स्वास्थ्य कर्मी स्थिति सामाजिक जिम्मेदारी, सामाजिक न्याय, मानव अनुकूलन आदि शामिल किये जो हैं। सतत् विकास हेतु ऐसी सामाजिक व्यवस्था आवश्यक होती है जो असामन्जस्य पूर्ण विकास से उत्पन्न

तनाव का समाधान प्रस्तुत कर सके उपभोग वादी संस्कृति के स्थान पर प्रकृति में मैत्री भाव रखने वाली संस्कृति का विकास भी इसी वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता है।

3. **आर्थिक विकास (Economic Development)–** पृथ्वी पर संसाधनों का असमान वितरण मिलता है। असमान स्थालाकृति के कारण प्रौद्योगिकी स्तर में अन्तर मिलने से आर्थिक विकास की व्यवस्था में अत्यधिक विषमता पायी जाती है। विकास की नीति निर्धारण में पर्यावरण एवं अर्थशास्त्र का समविलयन आवश्यक है। सतत् विकास का महत्वपूर्ण घटक आर्थिक विकास के अन्तर्गत, गरीबी मिटाना, भुखमरी समाप्त करना, खाद्य सुरक्षा, संतुलित कार्यों से आर्थिक वृद्धि करना, उत्पादन तंत्र का विकास करना आदि प्रमुख घटक तत्वों को शामिल किया जाता है। इसी घटक के अन्तर्गत, वाणिज्यउत्पाद, व्यापार, परिवहन बाजार, श्रम कर, आदि भी सम्मिलित है। कृषि, पशुपालन, उद्योग, उत्पन्न क्रियाओं का संतुलित एवं नियंत्रित विकास पर्यावरण के अनुरूप व अनुकूल होना भी सतत् विकास का आवश्यक आर्थिक घटक की महत्वपूर्ण पहलू है।
4. **व्यक्तिगत विकास (Personal Development)–** सामाजिक व आर्थिक विकास का मूल उद्देश्य मनुष्य के विकास से है व्यक्ति के विकास से राष्ट्र और राष्ट्र के विकास से समृद्धि सम्बन्धित है। व्यक्तिगत विकास के अन्तर्गत्, नागरिक स्वतंत्रता, समान अवसर, मानवाधिकार, स्वनिर्णयन, न्याय, भागीदारी, स्वस्थ प्रतियोगिता, आजीविका के साधन, योग्यता, पारस्परिक सम्मान, राष्ट्रहित, शिक्षा, स्वास्थ्य व सूचना के अधिकार, मनोरंजन तथा नागरिक कर्तव्य आदि प्रमुख तत्व हैं ।
5. **जनसंख्या अध्ययन (Population study)–** पृथ्वी पर जनसंख्या वितरण–आबाद क्षेत्र एवं जनशून्य क्षेत्र के रूप में विकसित है। आबाद क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व, जन्मदर, मृत्युदर, वृद्धि दर, लिंगानुपात, प्रजाति, आयु सरंचना, पोषण के स्तर आदि में अत्यधिक अंतर मिलने के कारण ही सतत् विकास हेतु गरीबी उन्मूलन, भुखमरी मिटाना, उत्तम स्वास्थ्य, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, स्वच्छ पर्यावरण, शिक्षा का प्रसार तथा महिलाओं की सहभागिता को बढाना आदि शामिल है। जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रण करना भी सतत् विकास के घटकों का एक अति महत्वपूर्ण पहलू है।
6. **राजनैतिक विकास (Political Development)–** राजनैतिक नेताओं द्वारा विकास योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन के प्रशासन एवं सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसमें जनभागी को शामिल करते हुए सतत् संघृत विकास के लक्ष्यों को समयावद्ध रूप से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत, लोक प्रशासन, वित्त, कानूनी व्यवस्था, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, शासन प्रबन्ध आदि तत्वों के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, व समझौते एवं संधि आदि को भी शामिल किया जाता है ताकि लक्ष्यों की प्राप्ति में आसानी हो सके ।
7. **प्रौद्योगिकी विकास (Techonological Development)–** विश्व की अनेक पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु उन्नतशील प्रौद्योगिकी के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि प्राचीन समय में पुरानी तकनीक के कारण समाधानों के उपयोग में अधिक लागत के साथ–साथ पर्यावरण की समस्या भी बढ़ी है । औद्योगिक क्रान्ति व आर्थिक विकास हेतु संसाधनों का दोहन अविवेकपूर्ण ढंग से रोकने हेतु तकनीक की भूमिका महत्वपूर्ण है। टिकाऊ ऊर्जा स्रोतों तथा नवीन उन्नत प्रौद्योगिकी पुर्नउपयोग व पुर्नचक्रण विधियों के विकास आदिनई एवं सस्ती प्रौद्यागिकी विकास के तत्व हैं। इन प्रकार के प्रयोग से संसाधनों की उपलब्धता को दीर्घकाल तक बनाये रखा जा सकता है। किन्तु मंहगी तकनीक होने के कारण इस तकनीक को क्रय करना अधिकांश देशों के लिए सम्भव नहीं है। इसीलिए निरंतर शोध द्वारा परिष्कृत व सस्ता तकनीक का विकास आवश्यक है। विकसित देशों को चाहिए कि पर्यावरण की सुरक्षा हेतु उन तकनीकों को स्थानान्तरण अविकसित व विकासशील देशों को भी करे ताकि पृथ्वी का पर्यावरण को सुरक्षित रखने में मदद मिल सके ।

8. **संसाधन व पर्यावरण संरक्षण (Resource & Environment Conservation)–** सामाजिक आर्थिक विकास उद्देश्यों की पूर्ति के साथ–साथ यह, आवश्यक है कि संसाधनों की उपलब्धता बनाये रखने के लिए तथा पर्यावरण को बचाने के लिए पर्यावरण संरक्षण पर भी ध्यान दिया जाय। इसके अन्तर्गत वन संरक्षण, जल संरक्षण, मृदा संरक्षण, जैव विविधता संरक्षण, खनिज संरक्षण, संरक्षण अधिनियम व नीतियें का निर्माण, संसाधनों की उपयोगिता को बढाना भविष्य में जनसंख्या वृद्धि व संसाधनों की आवश्यकता का मूल्यांकन करना, समाप्त होते संसाधनों के विकल्पों की खोज, जीवन के आधारी तत्व जल, वायु और मिट्टी को प्रदूषण मुक्त रखने के उपाय, कार्बन डाई आक्साइड, कार्वन मोनो आक्साइड तथा मीथेन गैस आदि के उत्सर्जन पर वैश्विक समझौतों को मानना तथा संसाधन व पर्यावरण संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आदि तत्व शक्ति है। उपरोक्त सभी घटकों अथवा तत्वों संरक्षण एवं विकास सतत् विद्युत विभाग के लिए आवश्यक है इसीलिए वैश्विक मंच पर सतत् विकास आयोग का गठन 1992 में किया गया।

ब्राजील की राजधानी रियो–डि–जैनेरो में प्रथम पृथ्वी सम्मेलन (1992) में सतत् विकास आयोग का गठन करके लक्ष्यों एवं अनुबन्धों को पूर्ण करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक व सामाजिक परिषद ने शुरूआत की जिसमें विश्व के 53 देशों को शामिल किया गया । इस आयोग के गठन से प्रतिवर्ष पर्यावरण एवं सतत् विकास की चर्चा के लिए नियमित रूप से न्यूयार्क में कराना निश्चित किया गया। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र संस्था समिति का भी गठन किया गया ताकि पृथ्वी सम्मेलन के सुझावों को अमल में लाया जा सके। 1993 में सतत्/संघृत विकास आयोग हेतु उच्चस्तरीय सलाहकार परिषद का गठन हुआ । 1996 में विश्व के 75 देशों द्वारा राष्ट्रीय सत्त विकास परिषद आयोग का गठन कर सत्त संघृत विकास के लिए राष्ट्रीय नितियॉ निर्धारित की गयी। 1993 से 1912 तक सत्त विकास आयोग द्वारा 20 सम्मेलनों का आयोजन किया गया।इसी दौरान आयोग की नाम परिवर्तित करके सतत् विकास पर उच्च स्तरीय राजनैतिक फोरम का निर्माण किया गया। जिसका उद्देश्य सदस्य देशों द्वारा सतत् विकास एजेण्डा 2015 के लक्ष्यों को प्राप्त करने की रणनीति बनाई गई। जिसमें निम्न उद्देश्यों को निर्धारित किया गया ।

1. गरीबी व भुखमरी मिटाना 2. सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा को बढाना 3. लिंग असमानता का मिटाना तथा महिला सशक्तीकरण 4. शिशु मृत्यु दर को घटाना 5. मातृत्व स्वस्थ्य कों बढाना 6. एड्स/एच0आई0वी0 तथा मलेरिया जैसी बीमारियों को रोकने हेतु कार्ययोजना बनाना 7. पर्यावरण सुरक्षा 8. वैश्विक विकास के लिए साझा प्रयास करना आदि।जुलाई 2021 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद द्वारा सतत् विकास पर उच्च स्तरीय राजनैतिक फोरम की बैठक में वैश्विक महामारी कोविड–19 के कारण आये अवरोध में सतत् विराम का एजेण्डा को प्राप्त करने हेतु पुनः रणनीति निर्धारित की गयी जिसमें निम्न उद्देश्यों को 2030 तक प्राप्त करने का एजेण्डा नया प्रारूप बनाया गया जिसमें सतत् विकास के लिए निम्न उद्देश्यों को शामिल किया गया है– (1) गरीबी मिटाना (2) भूख मिटाना, (3) उत्तम स्वास्थ्य एवं मानव कल्याण (4) अच्छे कार्य एवं आर्थिक वृद्धि (5) असमानता को घटाना (6) उत्तरदायी उपभोग एवं उत्पादन (7) जलवायु कार्य योजना (8) शान्ति न्याय एवं सशक्त संस्थान (9) साझा प्रयास।

उपरोक्त कार्य को सम्पादित करने के लिए एक सतत् विकास के इन्डेक्स को भी आधार बनाया गया है। जिसके आधार पर देशों के सतत् विकास इंडेक्स की गणना की गयी है। जिसमें स्वीडन (89.5) के साथ प्रथम, डेनमार्क (83.59) के साथ द्वितीय, नार्वे (82.3) तृतीय, फिनलैण्ड , स्वीटजरलैण्ड चतुर्थ व पंचम स्थान पर है। विश्व में यूरोपीय देशों का सतत् विकास इन्डेक्स 65 में अधिक रहा है जबकि सबसे खराब सतत् विकास इन्डेक्स अफ्रीकी देशों के अन्तर्गत– अफ्रीकन रिपब्लिक, नाईजर व चाड़ का है। सतत् विकास इन्डैक्स (48.4) के साथ भारत का स्थान 110 है इसीलिए वर्तमान समय में सतत् विकास की अवधारणा की आवश्यकता बहुत अधिक हैं ताकि संसाधनों को सुरक्षित रखते हुए पर्यावरण

की सुरक्षा के द्वारा उनके लक्ष्यों का प्राप्त किया जा सके। जिसको प्राप्त करने के लिए निम्न उपायों को शामिल किया जा सकता हैः–

1. पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता एवं क्रियाशीलता को समाप्त न किया जाये। इसके लिए जैवसंसाधनों का समुचित संरक्षण पर समुचित जोर दिया जाना चाहिए। परती भूमि का उपयोग करके जैव विधिवता को बनाये रखा जाय तथा पारिस्थितिकी तंत्रों एवं विभिन्न प्रजातियों की पोषणीय/सतत् /संधृत उपयोग सके।
2. राष्ट्रीय आर्थिक विकास की नीतियाँ वातावरण के अनुकूल बनानी जाये तो इसमें पर्यावरण नियोजन, वातावरण की गुणवत्ता का ऑकलन, विकास कार्यों का वातावरण पर प्रभाव का आँकलन आदि उपाय सम्भव किये जा सकेंगे।
3. उन्नत प्रौद्योगिकी का समन्वित विकास, पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बनाये रखने के लिए किया जाना चाहिए। इसके कार्य हेतु प्रदूषण निस्तारण की समुचित तकनीकें, कूडा–करकट निस्तारण आदि के लिए नयी–नयी सुरक्षित तकनीक विकसित की जानी चाहिए। जैव प्रौद्योगिकी तथा जैव कृषि इस समस्या के समाधान हेतु एक महत्वपूर्ण आवश्यक कदम है जिसका और अधिक विस्तार किया जाना समय की माँग है।

<u>संदर्भ ग्रन्थ सूची</u>

1. Bruntland, G.H. Our Common Future Report, 1983.
2. Cunningham, W & Cunnugham, M.A. : Principals of Environmental Science, MC Grow Hills 2003

श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगः

श्रीदिनेश्वर मिश्रः
गवेषकः, तुलनात्मकधर्मदर्शविभागः
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भक्तियोगः गीताज्ञानस्यामृतफलमस्ति सर्वासां विद्यानामयं नृपः तथा समेषां रहस्यानामपि रहस्यमस्ति। अतएवास्य नामनी राजविद्याराजगुह्यम् स्तः। गीतायाः हृदयं भक्तिरस्ति। विविधालोचनं कृत्वा निष्कर्षमिदमुपलभ्यते यत् विनाभक्त्यासम्पुटितमाचरण-मर्धमस्ति भक्तिरेवास्ति या सदाचरणं स्वकीयमाधुर्येसा पूरयति। विराड्रूपस्य दर्शनं कारयित्वा भगवतोदीरितं यद्दर्शनं नेज्यादानतपसां फल नास्ति अपितु भक्तेरेव फलमस्ति। यथा गीतायाम् -

भक्त्या त्वनन्या शक्यम् अहंमेव विधोर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुञ्च तत्वेन प्रवेष्टुञ्च परन्तप ॥[1]

यदनन्यया भक्त्या एव सुलभस्ति दर्शनमीदृशं किन्तुकोऽनन्यः तस्य लक्षणमपि भगवताग्रिमे श्लोके कृतंतद्यथा-

मत्कर्म कृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेतिपाण्डुव॥[2]

प्रकारेणानेनगीता भिन्नमार्गेषु समन्वयं संस्थाप्य साधनमार्गस्य सुगमता सुलभता च संसाधयति। गीतानुसारं कर्मभक्तिज्ञानानि विभिन्नाः साधनासरणयः न सन्ति ते तु मार्गस्यैकस्य बहूनि मुखानि सन्ति। गीतायाः सर्वगुह्यतम ज्ञानं त्विदमेवास्ति यत् भगवती समर्पणम्। भगवदभावयुक्तो भवभगवतः याजकोभव भगवतः सेवकोभव भगवन्तमेवनमस्कुरु एतैः कर्मभिः त्वम् मामेव प्राप्स्यसि। इतिनिगध श्रीकृष्णः अर्जुनं शोकमग्नं समुद्धार। प्रपत्तिमार्गेऽन्यमार्गाणां नैसर्गिक पर्यवसानं भवति। अतः सर्वात्मना भगवतः शरणागतिः स्वीकर्त्तव्येति।

गीतया प्रतिपादितं दर्शनं कर्ममीमांसा याः सामाजिकदर्शनस्य मानववादर्शाणां ज्ञानस्य च समन्वयात्मकं रूपमस्ति। गीतायां धर्म कर्मभोग मोक्षादीनां समुचिता मीमासां वर्तते। सन्देहं परिहृत्य एतदेव कथितुमुचितम् यत् गीता सदृशः सरलः दार्शनिकतत्वानां मुद्भावकः ग्रन्थः यस्मिन् लोकपरलाकयोः सारली सुलसिता समीक्षा भवेत् न तावदपर कश्चित् उपनित्तत्वानां सर्वेषां वैशद्येनात्र विवेचनं यादृशमभूत्लोकं लोकं केनचिदुक्तम् -

सर्वोपनिषदोगावो दोग्धागोपालनन्दनः।
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्तादुग्धं गीतामृतंमहत्॥

गीतायां प्रतिपादितम् कर्मदर्शनम् जीवनस्य पूर्णसाफल्यमयीं दृष्टिं प्रददाति गीतानुसारमादर्शो मानवः विहायसकलामीहा निष्कामेन चेतसा कर्मसम्पादनं विदधाति। श्रीकृष्णस्तु किंकर्तव्यविमूढमर्जुनं त्विदमेवोपदिशति अपि अर्जुन कर्मणि एवाधिकारोऽस्ति त्वदीयः तेषां परिणामेषु नास्ति। एवञ्च कर्मफलहेतुरपि न भवितव्यम् तथैव त्वदीयाऽऽसक्तिरकर्मणि अपि आ भूः यथा गीतायाम् -

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः मातेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

मानवेषु कर्मसम्पादनस्यै का स्वाभाविकी अभिरुचिर्भवति यतोहि सः किञ्चिदकिञ्चिदपि लब्धिमुद्दिश्य आजन्मासौ आसक्तिपूर्वकं कर्मसु युक्तो भवति किञ्चिदाशया कर्मसु तस्येदृशी आसक्तिर्भवति यद्यदा वृद्धावस्थायां तस्योन्द्रियग्रामः कर्मण्यसामर्थ्यमश्नुते तदानीमपि कर्मस्वसङ्गतां लधुं नैव यतते प्रकारेणानेन आसक्तिसंवलितः कर्मपरायणोऽसौ वराकः मृत्यमुखमभिपद्यते। परिस्थितौ चास्यां हठा कर्मणां त्यागमुपेक्ष्य कोप्ययुपरः उपायः सफलतां गन्तुमर्हति यस्यान्तर्गतः शास्त्रविदितानि कर्मानि कर्मणि कुर्वन्नेव कर्मासक्तिमपहाय मानवः कल्याणं लभेत्। दृष्ट्यानया

मनुष्यस्य कृते कर्मयोगानुष्ठानमेव सफलः सुगमञ्च उपायोऽस्ति। श्रीमद्भावते भगवतः कृष्णदेवस्य कर्मवादसमर्थकानि वाक्यानि नितरामवलोक्यानि। तद्यथा -

योगस्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां प्रयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित्॥
निर्विण्णानां ज्ञानयाग्रोन्यासिनामिह कर्मसु।
तष्वनिर्विण्र्ण चिन्तानां कर्मयोस्तु कामिनाम्॥

स्वकल्याणम भीष्टसूनां मानवानां कृते मया योगास्त्रयो प्रोक्ताः ते ज्ञानयोगकर्मयोगभक्तियोगसंज्ञकाः। एतदतिरिच्य कल्याणस्य कोऽप्यपरः मार्गः नैव सन्दृश्यते। योऽतिशयः वैराग्यसम्पन्नः सतु ज्ञानयोगस्याधिकारी यो संसारे आसक्तः तस्य कृते कर्मयोगस्य युक्तता समुचिता यो न विरागी नैवास्ति विषयानुरागी सातिशयं तस्य जनस्य कृते भक्तियोगस्योपयुक्तता सर्वथा प्रशस्ता। कर्मयोगस्याधिकारिणः संख्यायां समधिकाः प्रतीयन्ते। अत शङ्का क्रियते यत् संसारानुरागिणो मानवाः कथं कर्मयोगस्य मार्गे यास्यन्ति, किन्तु शंकायाश्चास्याः निरासोऽपि कृष्णवचने नैवभवति यत् नृणां श्रेयो विधितस्या, तात्पर्यन्त्विदमस्ति यत् सांसारिका मां भोगानां चयेषु रुचि धारयन् यदि मानवः वस्तुतस्तुहृदयेनतथ्यरूचिं निवार्य स्वकल्याणं चिकीर्षति सः कर्मयोगमनुपालयन् सौगम्यपूर्वकं स्वकल्याणं कर्तुमर्हतिं कर्मयोगद्वारा मानवस्य स्वकल्याणस्यविचारसरणिर्यादृशी दृढतरा भविष्यति तादृशी शीघ्रता तस्यात्मकल्याणे भविष्यति। कर्मयोगस्य तात्पर्यन्तिवदमस्ति यत् शरीरेण कर्म कुर्वता परमात्मनः सम्प्राप्तिः। कर्मयोगशब्दस्तु द्वशेः शब्दयोः कर्मणः योगस्य च योगेन सिध्यति। शास्त्रविहितानि कृत्यानि कर्माणि भवन्ति योगस्यास्य व्याख्या भगवता द्विधा प्रकारेण कृता। यथा समता योगनाम्नासमुच्यते सा यथा गीतायां-

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिध्यसिध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

योगेस्थितस्सन् कर्माचरणं कुरु तस्मिन् कर्मणि फलासक्तिं वर्जयन् तस्य सिद्धौ तस्यारसिद्धावपि समां दशां स्वीकुर्वता कर्माणित्वया कर्तव्यानि यतोहि समत्वमेव योगनाम्ना महर्षिभिः समुच्यते। यथा रामानुजभाष्ये-2. राज्यबन्धुप्रभृतिषु सङ्गं त्यक्त्वा युद्धादीनि कर्माणि योगस्थः कुरु। तदन्तभूर्तविजयादिसिध्यसिध्यो; समो भूत्वा कुरु। तदेदं सिध्यसिध्योः समत्वं योगस्थ इत्यत्र योगशब्दे नोच्यते योः सिध्यसिध्योः समत्वरूपं चित्तसमाधानम्। अपि च श्रीधराचार्येण सुबोधिन्यांयथोक्तं 3. योगः परमेश्वरैकपरता तत्र स्थितः कर्माणिः कुरु तथा सङ्गं कर्तृत्वाभि निवेशं त्यक्त्वा केवलमीश्वराश्रयेणैव कुरु। तत्फलस्यापि ज्ञानस्य सिध्यसिध्योः समो भूत्वा केवलमीश्वरार्पणं नैव कुरु यत् एवं भूते समत्वमेव योग उचयते सद्भिश्चित्तसमाधानरूपत्वात्। सङ्गत्यागपुरस्सरं समत्वमाश्रित्य स्वकल्याणकामी जनः सिध्यसिध्योः फलात्मकं कलिलमपहाय सर्वथापरिणामुपेक्ष्य कर्माणि समाचरेत् समत्वमिदमेवास्ति योयोगरूपेण बहुधाप्रपथञ्चितः शांकरभाष्येऽपि भगवता शंकरभगवत्पादेन यथोक्तं- योगस्थः सन् कुरु कर्माणि केवलमीश्वरार्थे तत्रापि हे धनञ्जय ईश्वरोतुष्यतुत् इति सङ्गं त्यक्त्वा। फलतृष्णाशून्येन क्रिययमाणे कर्मणि सत्वशुद्धिज्ञानप्राप्ति-लक्षणसिद्धिः तद्विपर्य यजां असिद्धिः तयोः सिध्यसिध्योः अपि समः तुल्योभूत्वा कर्मकुरु। कोऽस्ति योगः यः पूर्वमुक्तः तत्तु यस्मिन् स्थित्वा कर्माचरणं कथितम् स एव योगः साफल्यामसाफल्यां वा यत्तौल्यमस्ति सैव योगः। एतदतिरिच्य गीतायाः षष्ठेऽध्यायेऽपि भगवता योगशब्दस्य चर्चा कृतासा यथा -

तं विद्याद् दुःखसंयोग वियोगं यो संज्ञितम्।
स चिश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥[3]

पातञ्जलयोगदर्शनन्तु समाधौ योगस्य पर्यवसानमङ्गीकरोति, किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता परमात्मनः नित्यसिद्धं सम्बन्धमेव यो नाम्ना कथयति। पातञ्जलयोगदर्शनं योगशब्दः युज्समाधो धातुना निष्पद्यते, किन्तु गीताया अभीष्टः योगशब्दः युजिरयोगे धातुनां सिद्धिमुपयाति। मानवस्य परमात्मना नित्यसम्बन्धः विद्यते, किन्तु सांसारिक सम्बन्धवशात् सस्तं नित्यसम्बन्धं विसस्मार तेन विमुखोऽभवत्। अतः ज्ञानपूर्वकं संसारेण सम्बन्धविच्छेदे कृते सति ज्ञानयोगः सिद्धिमायति। कर्मणा संसारेण सम्बन्धविच्छेदः कर्मयोगायकल्पते भक्त्या संसारसंबन्धविच्छेदः भक्तियोगो भवति। समत्वेन परमात्मनि स्थितिर्भवति या योगनाम्नावबुध्यते संसारेण समत्वस्य परमात्मनः वा प्राप्तिर्भवति। कर्मयोगे

योगशब्दस्यैव महत्वमपता नैव कर्मणः। अतएव भगवता श्रीकृष्णेन निगदितं कर्मबन्धनात् त्राणार्थं योग एव क्षमोऽस्ति यथागीतायाम्-

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाययुज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥[4]

बुद्धियोगेन युक्तो भूत्वा कर्मकुर्वाणः पुरुषः अनादिकालादेव सञ्चितान् बन्धनकारणभूतान् पुण्यपापाननन्तान् त्यजति तस्मात् त्वं पूर्वनिर्दिष्टस्य बुद्धियोगस्यावाप्तये प्रयासरतो भव। कर्मणामाचरणे बुद्धियोग एव चातुर्यमस्ति कौशलं नाम कुशलता दक्षतेति। यथा गीतायाः शांकरभाष्ये शंकरभगवत्पादेनसमाम्नातम्[5]-

बुद्धियुक्तः समत्वविषयया बुध्या युक्तो बुद्धिमुक्तो जहाति परित्यजति इह। अस्मिन् लोके उभे सुकृतदुष्कृते पुण्यपापेसत् शुद्धिज्ञानप्राप्तिद्वारेण यतः तस्मात् समत्वबुद्धियोगाय युज्यस्व घटस्व। योगोहि कर्मसु कौशलं स्वधर्माख्येषु कर्मसु वर्तमानस्य या सिध्यसिध्योः समत्वबुद्धिः इश्वरार्पितचेतस्तया तत् कौशलं कुशलभावः तद्हि कौशलं यद्बन्धस्वभावान्यपिकर्मापि समत्वबुध्या स्वभावात्निवर्तन्ते। तस्मात् समत्वबुद्धियुक्तोभव समत्वबुद्धियुक्तः पुरुषः अन्तःकरणस्य शुध्यर्थं ज्ञानप्राप्त्यासुकृत दुष्कृतम् उभावेवात्र जहाति लोकेऽत्र कर्मभिः मुच्यते अतएव समत्वबुद्धियोगप्राप्तये यत्नं कुरुष्व। ईश्वरार्पितबुध्या समुत्पद्यमानः सिद्धि असिद्धि विषयकः यो समत्वभावः यत्तौल्यमस्ति सा एव कुशलता। कौशलश्चास्मिन् एतदेवास्ति यत् स्वभावतः यानिबन्धप्रदानि कर्माणि भवन्ति। तान्यपि समत्वबुध्यापराभूय स्वं स्वं भावं त्यजन्ति अत एव समत्वमेवबुद्धियोगस्तमेवाचरेत् हितेच्छुः। एतदतिरिच्य पुनरुच्चते यत् कर्मणामकर्मणाञ्च निर्णयः केन प्रकारेण भवेत् विषयेऽस्मिन् गीताया अन्तर्यामित्वं सर्वातिशयेन साहाय्यं प्रददाति। गीतादिशा समेषां जनानां हृदि ईश्वरालयः मन्यते। उक्तमपि यथाष्टादशाध्याये -

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढा निमायया॥[6]

ईश्वरः सर्वनियमनशीलो वासुदेवः सकलप्रवृत्तिनिवृत्तिमूलज्ञानोदये देशे कथं किं कुर्वन् निष्ठतिस्वेनेव निर्मितं देहेन्द्रियावस्थप्रकृत्याख्यं यन्त्रमारुढानि सर्वभूतानि स्वकीयया सत्वादिगुणमय्या माययागुणानुगुणं प्रवर्तयन् तिष्ठति।

सर्वेषां नियामकः समेषां जन्तूनां हृदयदेशे प्रवृत्तिनिवृत्तीनां मूलस्वरूपे स्वकीयया मायया शरीरेन्द्रियाणि रूपेणावस्थिते प्रकृतियन्त्रे आरूढानि सत्वादिगुणयुक्त्याशक्त्या परमेश्वरः परिवर्तयति। एतावता प्रतिजन्तुः ईश्वरेण कर्मणः प्रेरणा लब्धुं शक्नोति किन्तु मानवीयेयं दुर्बलता वर्तते यत् सः कर्मणः अनौचित्यं जानन् अपि तस्य सम्पादनं विदधाति। गीतयोपदिश्यते यत् व्यक्तिः कर्माचरणात् पूर्वं निश्चयात्मिकया बुध्या युक्तो भवतु। कर्मणः निश्चितौ सत्यां कर्मणः सम्पादनं यथावन्नैव भवितुं शक्यते गीतायाश्चेदं कर्ममपि ध्यातव्यमस्ति यद्गीता अकर्मण्यतां न कदाप्युपदिशति यथोक्तं गीतायां -

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्यसनादेवसिद्धिं समधिगच्छति॥[7]

ज्ञाननिष्ठायाः साक्षान्मोक्षसाधकतयाकर्मनिष्ठापेक्षया ज्यायस्त्वेऽपि ज्ञाननिष्ठायाम-धिकारस्य सिद्धये चित्तशुद्धिद्वारा कर्मनिष्ठाया ज्ञाननिष्ठां प्रति कारणत्वात् पूर्वमशुद्धचेतसः कृते कर्मनिष्ठैव युक्ता इति कृष्णवचनानामाशयः। पुरुषोऽधिकृतः कर्मणां क्रियाणां यज्ञादिरूपाणां स्वधर्माणां इह जन्मनि जन्मान्तरेवाऽनुष्ठितस्य दुरितसञ्चयस्य क्षये कारणत्वेन सत्वशुद्धिहेतुत्वेन च ज्ञाननिष्ठाहेतूनां अनारंभादननुष्ठानात् नैष्कर्म्यं निर्गतं कर्म यस्मादितिनिष्कर्मा सन्यासी तस्य कर्मज्ञानम् तदेव निष्कर्मभावं ज्ञाननिष्ठां निष्क्रिात्मस्वरूपेणैवावस्थानाम् ज्ञाननिष्ठां प्राप्नोति इति। सहैव गीतेदमपिकथयति कर्म बिना कोऽपि जनः क्षणमपि स्थातुं नैव शक्नोति। यथोक्तम् गीतायामेव -

नहि कश्चित् क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्मसर्वप्रकृतिजैर्गुणैः॥[8]

लोकेऽस्मिन् निवसन् कोऽपि पुरुषः कस्मिन्नपि समये विना कर्म स्थितो भवति। यतोहि न वयं किमपि कर्म करिष्यामः इति निश्चित्य समवस्थितानां जनानां कृते पूर्वकृत्कर्मानुसारं प्रकृत्या समेधितैः गुणैः सत्वरजस्तमोभिः विवशो भूत्वा स्वस्वयोग्यतानुसारं कर्मणि प्रवर्तनं नूनं भविष्यति। अतएव पूर्वोक्तेन कर्मयोगेन प्राक्कृतानां कर्मणां नाशं विधाय

गुणान् वशीकृत्य निर्मलेनान्तः करणेन ज्ञानयोगस्य सम्पादनं कर्त्तव्यम्। गीताकर्मभिः वैरत्यं नैव शिक्षयत्यपि तु कर्माचरणपुरः सरंमनासक्तिमुपदिशति। सम्बन्धेऽस्मिन् यथा गीतायाम् -

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्मकरोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निराग्निर्नचाक्रियः॥[9]

यो पुरुषः स्वर्गादिकर्मफलाननाश्रित्य केवलं कर्तव्यबुध्या कर्मफलकृष्णारहितः सन्कर्मनित्यनैमित्तिकं कायतिरिक्तं निवर्तयति सकर्मफलसन्यासी भवति निरग्नेरग्निरहितस्य क्रियाविरहिण्श्च श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासयोशास्त्राविहितं संन्यासित्वं योगित्वं वा कृष्णः प्रतिषेधति। गीताया अनासक्तिकर्मयोग एव निष्कामकर्मयोगोऽस्ति। वस्तुतस्तुगीताया आरम्भ एव आसक्त्या मोहाच्च भवति अर्जुनस्य स्वपारिवारिकेषु आसक्तिः मोहश्च स्तः। तस्मात् सः युद्धं कर्तुं नेच्छति यत्क्षत्रियस्य श्रेयस्करो धर्मः यथा गीतायाम् -

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धात्श्रेयोऽन्यद्क्षत्रियस्य न विद्यते॥[10]

युद्धरूपं स्वधर्मं पश्यता त्वयोद्विग्नता न कदापि करणीया यतोहि क्षत्रियस्य कृते धर्मरूपयुद्धादतिरिच्य किमप्यन्यत् कल्याणकारी नास्तीति। प्रकारेणानेन निश्चीयते त्विदमेव खलु यत् कर्मयोगेनैव तादृशानां सर्वथा कल्याणं सम्भविष्यति। गीतोपदेशश्रुतोऽर्जुनः जगाद-**मोहोऽयं विगतो मम।** द्रष्टव्यम् समस्तानां सांसारिकाणां दुःखानां प्रधानं कारणन्तु मोह एवास्ति। अनया रीत्या गीतोक्ते दर्शनं सर्वथा व्यावहारिकं परमश्रेयस्करं चास्ति।

संदर्भ सूची :

1. गीता 6/8
2. गीता 6/47
3. श्रीमद्भगवद्गीता 6/23
4. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50
5. शांकरभाष्य 2/50
6. गीता 18/61
7. शांकरभाष्य।
8. गीता 3/5
9. गीता।
10. गीता 6/1

Vol. XVI, [Issue No. 1, 2 & 3 combined], Jan.– Dec. 2019, ISSN: 0970-1745

मन्नू भंडारी के 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास की संवेदना

अपराजिता मिश्रा
शोध–छात्रा
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

'एक इंच मुस्कान' कथाकार–युगल राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी रूप से लिखित एक अत्यंत रोचक उपन्यास है। एक प्रयोग और एक श्रेष्ठ कथाकृति, दोनों ही दृष्टियों से यह एक सफल रचना है। राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी रूप में लिखित उपन्यास जिसका पहला परिच्छेद राजेन्द्र यादव का है तो दूसरा मन्नू भंडारी का.........और इस प्रकार यह उपन्यास अपनी परिणति पर पहुँचता है। उपन्यास में तलाकशुदा स्त्री 'अमला' लेखक के रूप में 'अमर' एवं उसकी पत्नी 'रंजना' मुख्य पात्र हैं। पूरा उपन्यास इन्हीं के इर्द–गिर्द घूमता है।

आधुनिक मानव विकास के उच्च्य सोपान पर पहुँच चुका है। स्त्रियाँ पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। कठिन से कठिन कार्य माने जाने वाले सेना में भी महिलायें अपना योगदान दें रही हैं। मगर महिलाओं के प्रति पुरुषवादी सोच में अभी समाज में कमी नहीं आयी है। उपन्यास में 'अमला' एक परित्यक्ता है, वह जीवन संघर्ष करती है। पुरुषवादी सोच को उजागर करती हुई अमला कहती है, ''बात यह है कि मैं परित्यक्ता हूँ, पति द्वारा त्यागी हुई। विवाह के एक साल बाद ही मैं फिर यहाँ लौट आई। इतना तो शायद तुम भी जानते हो कि जिस स्त्री को पति ने छोड़ दिया हो, उसके लिए रंग–बिरंगे कपड़े पहनना, सजना–संवरना एक तरह से निषिद्ध होता है, इसीलिए नहीं पहनती। आरम्भ में तो एक प्रकार से यह मेरी मजबूरी थी, पर अब तो मेरी रुचि ही बन गयी है।''[1]

समय के साथ शिक्षित महिलाएँ काफी सशक्त हो रही हैं। पुरुषवादी रवैये के खिलाफ ये महिलाएँ मजबूती से लड़ रही हैं। सामाजिक जकड़न को तोड़कर अपने को खुश रखने की कोशिश भी कर रही हैं, ''हँसते–हँसते ही अमला ने कहा, ''शायद तुम सोच रहे हो अमर, यह कैसी विचित्र नारी है जो अपने चरम दुर्भाग्य पर ही हंस रही है। पर तुम्हीं बताओं आज से दस साल पहले जो घटना घट गई उसे लेकर क्या उम्र–भर ही रोती रहूँ ? कोई कुछ भी कहे, मुझसे तो नहीं रोया जाता'', फिर कुछ रूक कर बोली, ''अगर गलत धारणा न बनाओं तो एक बात बताऊँ ? कभी–कभी तो सोचती हूँ कि जीवन का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य भी मेरे लिए सौभाग्य बनकर ही आया। जिस दिन वह घर छोड़कर हमेशा के लिए यहाँ आना पड़ा था, उस दिन सचमुच ही बहुत दुखी थी; पर आज जब पीछे मुड़कर देखती हूँ और इन दस वर्षों में जो कुछ पाया, उसका लेखा–जोखा करती हूँ तो लगता है मैंने खोया कम, पाया अधिक है; इसलिए कहती हूँ, किस बात का दुख और कैसा दुर्भाग्य ! लोग समझे दुर्भाग्य, मैं तो नहीं समझती।''[2]

समाज में पति को परमेश्वर का दर्जा देकर सदियों से स्त्रियों का शोषण किया जाता रहा है। पति शराबी हो, कुचरित्र हो, निकम्मा हो, वहशी हो इसके बावजूद स्त्री पुरुष की पूजा करे। यह हमारे समाज की सबसे बड़ी कुरीति है। उपन्यास में अमला स्वाभिमानिनी स्त्री है। अमला कहती है, ''पति की कमी क्या दुनिया में कोई पूरी कर ही नहीं सकता ? इस घटना के बाद ही मैंने पढ़ाई की, संगीत सीखा, चित्रकारी का भी थोड़ा शौक फर्माया, घूमना–फिरना सिखा, स्वतंत्र रूप से कुछ सोचना सीखा, लोगों से मिलना–जुलना सीखा, यों समझ लो नई जिंदगी पाई।''[3]

पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति को प्रभावित कर रही है। गीता में कर्म के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। उपन्यास में अमर पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है, वह अपनी जिम्मेदारियों से

भागना चाहता है, ''विवाह अपने–आप में एक समझौता है। सोचो, विवाह के लिए नौकरी करनी होगी, बंधी हुई निश्चित जिंदगी बितानी होगी........और जैसे–जैसे उत्तरदायित्व बढ़ता जाएगा, सीमाएँ और संकीर्ण होती जाएंगी.......इतनी संकीर्ण........इतनी संकीर्ण......नहीं, नहीं रचना, यह सब करने का मतलब होगा अपनी हत्या करना, तुम्हारी हत्या करना, यह सब मैं नहीं कर सकूँगा।''[4]

समाज में जाति–पांति एवं ऊँच–नीच का भेद अभी भी खत्म नहीं हो पाया है। मगर इस उपन्यास के माध्यम से लेखकद्वय ने इसे तोड़ने की कोशिश की है, अमला कहती है, ''शायद दो सौ साल की गुलामी के संस्कार ही हैं कि हमारा समाज अनेक कुण्ठाओं और विकृतियों का शिकार है, वर्ना मैं तो इसमें कतई जाति–पांति या ऊंच–नीच नहीं देखती। तुम्हारे पास पारखी की निगाह है और मेरे पास कलम; हमारे बीच कोई जाति नहीं आएगी।......''[5]

पिता–पुत्री का संबंध बहुत ही आत्मीय होता है। उपन्यास में अमला के जीवन को लेकर उसके पिता बहुत चिंतित हैं। वे फैसला करते हैं, ''अमला ! बेहद भर्राए और उखड़े–उखड़े स्वर में पिताजी ने बात आरम्भ की 'इस बार जब बम्बई और मद्रास गया तो वहाँ दोनों की सेट हुई मिलों के सारे के सारे शेयर्स तेरे नाम कर दिये ! कुछ साल बाद ही ये मिलें सोना उगलेंगी। यों भी तेरे नाम जो कुछ है, उससे तू ऐसे–ऐसे पाँच जीवन बिता सकती है।''[6]

दाम्पत्य जीवन विश्वास की नींव पर टिका है। प्रेम त्याग व बलिदान मांगता है। उपन्यास में रंजना को अपने और पति अमर के बीच तीसरे व्यक्ति अमला की उपस्थिति नागवार गुजरती है, ''याद है तुमने लिखा था कि रंजना तुम दिल्ली आ जाओ, मेरा मन नहीं लगता; और मैं मां–बाप, घर–बार छोड़कर चली आयी! तुम्हारी हर इच्छा को मैंने आदेश माना। आज भी मानती हूँ। आज भी तुम्हारा सुख मेरे जीवन की चरम कामना है; इसलिए कहती हूँ, जो कुछ भी हो, तुम मुझसे कहो। यदि अमला को लेकर सुखी होना चाहते हो, तो मैं स्वयं तुम्हारे जीवन से हट जाऊँगी।''[7]

पाश्चात्य जीवन मूल्यों की कुछ अच्छाइयों को भारतीय भी पसंद करने लगे हैं। उपन्यास का पात्र प्रेम विवाह को अच्छा मानता है, ''भई, आफ्टर आल, परम्परागत विवाह के मुकाबले लव–मैरिज को इसलिए तो तरजीह दी जाती है कि दोनों पक्ष एक–दूसरे की दृष्टियों और जीवन मूल्यों को समझें...।[8]

उपन्यास के अंत में अमर एवं रंजना का अलगाव हो जाता है। अमर अमला के करीब जाता है। अमर और अमला कुछ आत्मीय क्षणों के जीते हैं। इसके बावजूद अमर दुखी है। उसके भविष्य के सपने टूट गये हैं, ''अमर सारी रात ही तो रोया था.......सुबक–सुबककर, फूट–फूट कर ! उन आंसूओं में अमर के सारे सपने बह गये थे, भविष्य की सारी योजनाएँ बह गयी थीं, उसकी सारी दुनिया और जीवन का रस बह गया था।''[9]

'एक इंच मुस्कान' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रभाव, गठन और प्रवाह की दृष्टि से पहले एक श्रेष्ठ उपन्यास है और बाद में एक साहित्यिक प्रयोग। प्रेम, सौन्दर्य एवं आधुनिक जीवन मूल्यों के सजीव चित्रण में राजेन्द्र यादव एवं मन्नू भंडारी को उपन्यास में सफलता मिली है।

(2)'आपका बंटी' :

मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास में दो तलाकशुदा पति–पत्नी के एक दूजे से अलग होने, फिर नई जिन्दगी शुरू करने और इन सबके बीच एक छोटे बच्चे के पल–पल टूटते हुए बचपन की मनोव्यथा का अंकन बड़े ही भावपूर्ण ढ़ंग से किया गया है। यह बच्चा दूसरे बच्चों की तरह ही जिन्दगी जीना चाहता है किन्तु माँ–बाप की अहंवादिता ने उसे बचपन में ही जवानी की दहलीज पर पहुँचा दिया है। एक तरफ बंटी बचपन की शरारतों से भरा हुआ दिखाई देता है तो दूसरे ही पल वह अपनी बात और समझ के कारण बड़ा दिखाई देने लगता है। यह उपन्यास सामाजिक होते हुए भी पारिवारिक समस्याओं के कारण समाज को आईना दिखाने में सक्षम है।

एक माँ और बच्चे का रिश्ता अद्भुत होता है, जहाँ दोनों एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते। 'आपका बंटी' उपन्यास में बंटी की अपनी माँ के प्रति मनःस्थिति कुछ इस प्रकार ही दिखाई देती है जो माँ की तनिक भी दूरी बर्दाश्त नहीं कर पाता है वह अपनी माँ को प्यार की धौल जमाते हुए कहता है, ''तुम कहाँ गई थीं किसके साथ गई थीं क्यों गई थीं ?.....क्यों गई थीं....?''[10]

पुरातन समय में बच्चे की परवरिश दादी–नानी के हाथों होती थी, साथ ही लोरियाँ और कहानियाँ सुनकर ही वे बड़े होते थे किन्तु समय बदला है पति–पत्नी दोनों ही का कामकाजी होने के चलते बच्चे का अधिकांश समय घर में उनकी देखभाल करने वाली आया के साथ बितता है उसी से ही वे अपनी जिद और इच्छा रखकर संतुष्ट होना चाहते हैं। 'आपका बंटी' उपन्यास में बंटी भी अपनी फूफी के कहने पर कि, ''तुम यहाँ खड़े–खड़े क्या कर रहे हो बंटी भय्या ? चलकर नहा काहे नहीं लेते ?''[11] हाथ में झाड़ू लिए–लिए फूफी घुसी तो बंटी ने झाड़ू छीन लिया और उसके हाथ पर झूलता हुआ बोला, ''फूफी, वह कहानी सुनाओं तो सोनल रानी की, जो सचमुच में डायन थी और रानी बनकर रहती थी।''[12]

''एल्लो और सुनो ! यह कहानी कहने–सुनने का बखत है। काम सारा पड़ा है, और तुम्हें कहानी सूझ रही है। कहानी रात में सुनी जाती है, दिन में नहीं।''[13]

''नहीं मैं अभी सुनूँगा। कोई काम–वाम नहीं।'' फिर आँखों में जाने कितना कौतूहल भरकर पूछा, ''अच्छा फूफी, वह डायन से रानी कैसे बन जाती थी ? उसके पास जादू था ?''[14]

''और क्या तो ? डायन थी, सारे जादू बस में कर रखे थे। बस जो चाहती बन जाती। मन होता वैसा भेस धर लेती।''[15] ''क्यों फूफी, आदमी भी चाहे तो ऐसा कर सकता है ?''[16] ''कइसे कर लेगा आदमी ? आदमी के बस में क्या जादू होता है ?''[17]

प्राचीन समय में वृद्ध माता–पिता की सेवा का भार बच्चों पर ही होता था किन्तु परिवर्तित समय में वृद्धों का घर वृद्धाश्रम ने ले लिया है। मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' में जब शकुन बंटी से प्यार करती हुई पूछती है, ''अच्छा, बता तू मेरे लिए इतना सब करेगा बड़ा होकर या कि निकाल बाहर करेगा........हटाओं बुढ़िया को बोर करती है।''[18] तब बंटी अपनी माँ के प्रति प्रेम को दर्शाते हुए कहता है, ''धत्, ममी को कभी नहीं छोड़ूँगा।''[19]

इस उपन्यास में बंटी का प्रेम समर्पित है अपनी माँ शकुन के लिए जिसके अलावा वह कुछ नहीं सोच पाता है।

एक बच्चे में शरारत, कौतूहूलता, जिज्ञासा की भावना का होना बेहद जरूरी होता है और यही बातें उसे नई जानकारियाँ देने में उसकी मदद भी करते है। आपका बंटी' उपन्यास में बंटी अपनी माँ से पूछता है, ''ममी, पापा हम लोगों के साथ क्यों नहीं रहते ?''[20]

''टीटू कह रहा था कि तेरे ममी–पापा का का तलाक हो गया है। अब पापा कभी हमारे साथ नहीं रह सकते।''[21] ''क्यों रे, तू और टीटू ये ही सब बातें करते हो?''[22] ''मैं नहीं करता ममी टीटू ही कह रहा था। मुझे तो तलाक का मतलब भी नहीं मालूम। उसी ने बताया था कि ममी–पापा की लड़ाई को तलाक कहते है। जब देखो, उनके घरवाले पापा की बात जरूर करते हैं।''[23]

शकुन ने गहरी श्वास भरते हुए कहा, ''करने दो। इन लोगों के पास ये बाते न हों तो ये जिएँ कैसे बेचारे ?'' फिर बंटी को अपने पास खींचती हुई बोली'', पापा नहीं रहते ही क्या, मैं तो हूँ तेरे पास।''[24]

'तलाक' एक सामाजिक अभिशाप है, जिसमें दो व्यक्तियों की जिन्दगी ही नहीं प्रभावित होती बल्कि उनसे जुड़ा हर कोई इसकी चपेट में आ जाता है। आज इससे काबू पाने की भरपूर कोशिशे की जा रही है किन्तु अभी भी हमारे समाज में यह दिखाई देती है 'आपका बंटी' उपन्यास में शकुन और अजय का प्यार और टूटती कड़ियों का मध्यस्थ बंटी रहा है। वह अजय के लिए शायद इतना महत्वपूर्ण न हो किन्तु शकुन के लिए बंटी ही उसका सब कुछ है अतः जब चाचा ने उसे हॉस्टल भेजने को लेकर कहा तब वह बोल उठी, ''बंटी को होस्टल भेजने की बात तो आपने कह दी, पर कभी यह भी सोचा है कि उसे होस्टल भेजकर में कितनी अकेली हो जाऊँगी।''[25]

दुनिया में हर बच्चा नादानी और शरारत से भरा होता है, उसे किसी प्रकार की जिम्मेदारी का एहसास नहीं होता है लेकिन 'आपका बंटी' में बंटी का व्यक्तित्व कुछ अलग है वह इतनी छोटी उम्र में भी अपनी माँ और फूफी का हाथ बँटाना जानता है जब उसकी माँ कहती है, ''चार बजे के करीब सब लोग चाय पीने यही आएँगी। दही–पकौड़ी और आलू की टिकिया तुम घर में बना लेना। चिवड़ा और

मिठाई मैं चपरासी के हाथ भिजवा दूँगी मदद की जरूरत हो तो उसे रोक भी लेना। चार बजे तक सब कुछ तैयार रहे हाँ।''[26] तब माँ से बंटी कहता है, ''मैं सब देख लूँगा ममी तुम जाओ। चपरासी क्या करेगा, मैं मदद करवा दूँगा फूफी की।''[27]

किसी भी बच्चे का मन बाल–हठ से भरा होता है और यही उसके जीवन का सौन्दर्य भी है। 'आपका बंटी' का बंटी भी इन भावनाओं से युक्त है वह कहता है, ''इतनी देर हो गई, अब कब चढ़ेगे कवर?''[28]

आज के समय में विवाहेतर सम्बन्ध या विनर्विवाह का प्रचलन बढ़ता चला जा रहा है किन्तु इन सम्बन्धों में भी असन्तुष्टि का भाव बना रहता है शकुन जो अपने वैवाहिक जीवन से कभी सन्तुष्ट नहीं हो पाती। आज जोशी के साथ सम्बन्धों की पूर्णता का एहसास कर लेना चाहती है वह इस सम्बन्ध पर सिर्फ अपना अधिकार चाहती है अतः वह डॉक्टर से जिज्ञासा के साथ पूछती है, ''अच्छा क्या प्रेम सचमुच ही मात्र एक शारीरिक आवश्यकता और एक सुविधाजनक एक एडस्टमेंट का ही दूसरा नाम है ? बताओं, तुम्हे क्या कभी अपनी पत्नी की याद नहीं आती और आती है तो क्यों ? उसे तुम क्या कहोगे ?''[29] ''अच्छा तो यही होता शकुन, तुम उसका जिक्र कभी करती ही नहीं।''[30]

पुराने समय में माँ की गोद और लोरियों से बच्चों की नींद पूरी की जाती थी। किन्तु आधुनिक समय में बचपन से ही बच्चों का अलग कमरा ही नहीं बल्कि उनकी सारी आकांक्षाओं को छीन लिया जाता है बंटी जो सदैव से अपनी माँ के साथ सोता आया है उनके वैवाहिक जीवन में बँधने के बाद भी उसकी कमी महसूस करता है बंटी को जगता देखकर जब शकुन पूछती है, ''अरे, तू सोया नहीं बंटी बेटा ? और यह क्या, कुछ भी गरम नहीं पहन रखा और बिस्तर में से निकल आया। सर्दी नहीं लग जाएगी ?''[31] बंटी दौड़कर ममी के पैरों से लिपट गया। मैं अकेला कैसे सोता, मुझे डर नहीं लगता ?''[32]

पुनर्विवाह के सम्बन्धों में उस तरह का जुड़ाव नहीं हो पाता जैसा प्रथम विवाह के सम्बन्धों में होता है, इसका प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ना लाजिमी है। बंटी भी अपनी माँ के दूसरे पति डॉ. जोशी को कभी नहीं स्वीकार कर पाता है। बंटी से जब उसकी माँ प्यार से बोलती है, ''एक बात कहूँ बेटे मानेगा ?''[33] ''तू डॉक्टर साहब को पापा क्यों नहीं कहता ?''[34] बंटी चुप ! आँखों के आगे कहीं अपने पापा की तस्वीर तैर गई।''

उपन्यास में ममी एक क्षण चुप। चेहरा कहीं हलके से सख्त हो आया। ''ठीक है, हैं। पर जोत और अमि भी तो मुझे ममी कहते हैं।''[35] ''उनकी ममी मर गई हैं इसलिए कहते है, मैं क्यों कहूँ ?''[36]

परिवार और उससे जुड़ी हर चीज बहुत ही महत्वपूर्ण तब हो जाती है जब हम उससे दूर हो जाते है वह चीजें सिर्फ हमारी याद बनकर रह जाती है और जब भी उससे सम्बन्धित कोई चर्चा चलती है तो वह फिर हमारी स्मृति को ताजा कर जाती है। 'आपका बंटी' उपन्यास में बंटी भी अपने पुराने घर और बगीचे से इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि जब कॉलेज का माली आने के साथ ही बोलता है, ''नमस्ते बंटी भैया, कैसे हो''[37]

पुनर्विवाह में बँधना हर टूटे हुए वैवाहिक जोड़े का हल नहीं है। 'आपका बंटी' में शकुन और अजय फिर अलग–अलग से विवाह बंधन में बँधते हैं लेकिन अपने बच्चे बंटी को लेकर विचारों में एक नहीं हो पाते और सारा फैसला बंटी पर सौंपकर अपनी–अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा से मुक्ति पाना चाहते है। अजय और शकुन बंटी के मुद्दे पर आमने सामने हैं अजय कहता है, ''बंटी के बारे में कुछ सोचा ?''[38] शकुन की नजरें अजय के चेहरे पर टिक गईं। किसी भी तरह का कोई तनाव नहीं है वहाँ। प्रश्न भी ऐसा कि कोई जिद और दुराग्रह नहीं। बस, जैसे साथ बैठकर सोचने की बात ही हो। ''यह सही है कि बंटी को अब मैं अपने साथ ही रखना चाहता हूँ। फिर भी यह निर्णय मैं अकेला नहीं ले सकता–मेरा मतलब ?''[39] ''पर इस समय तो बंटी वैसे भी नहीं जा सकता। अगले महीने उसकी परीक्षाएँ हैं। एक साल खराब नहीं हो जाएगा ?''[40] अजय कहता है, ''कलकत्ते में सेशन जनवरी से शुरू होता है और अप्रैल तक एडमीशन हो जाते हैं मेरा परिचय है।''[41] शकुन कहती है, ''नए लोगों के बीच यह बहुत सहम जाता है। यो भी इस उम्र में ही बहुत इंट्रोवर्ट होता जा रहा है मुझे लगता है....''[42] ''हूँ ऽ ! सो तो मैंने भी देखा। सवेरे बिल्कुल बोला ही नहीं। अभी भी एकदम सहमा हुआ, चुपचाप।''[43] और अजय खुद चुप हो गया। जैसे कहीं गहरी चिंता में पड़ गया हो, जैसे कहीं से दुखी हो आया हो।

अजय बंटी के सम्बन्ध में कहता है, ''अगर बंटी राजी हो जाए और मैं इसे अभी अपने साथ ले जाऊँ तो तुम्हें कोई एतराज होगा? बार–बार आना जरा....''[44] शकुन जो अजय और मीरा के रिश्ते को भी बंटी की हरकतों से प्रभावित करना चाहती है किन्तु बाह्य रूप में वह सहजता से कहती है, ''आप बंटी से ही पूछ लीजिए। हम लोग अपनी–अपनी इच्छाएँ क्यों थोपें उस पर?''[45] और उसे खुद ही लगा कि कहने वाली और सोचने वाली शकुन एक ही है।

प्राचीन समय में परिवार की खुशियों के केन्द्र में बच्चे हुआ करते थे उनकी किलकारियाँ और शरारतों से ही घर का माहौल खुशनुमा बना रहता था किन्तु बदलते दौर में जब पति–पत्नी कामकाजी ही नहीं बल्कि अहंवादी भी है और इन्हीं टूटते–बनते रिश्तों के बीच अपना–अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम करने में लगे हुए यही माता–पिता बनकर भी अपने बच्चों के साथ भी न्याय नहीं कर पाते है। 'आपका बंटी' में बंटी भी अपने माँ–बाप के बीच यही स्थिति पाता है वह शकुन के प्यार को अजय में खोजने के लिए उसके पास आता है किन्तु वहाँ प्यार तो मिलता है लेकिन एक नई जगह की राह उसे दिखा दिया जाता है। अजय बंटी से कहता है, ''अब बिल्कुल डरने की बात नहीं है बेटा, वहाँ कोई इम्तिहान नहीं होगा। मैंने सारी लिखा–पढ़ी कर ली है। बस, अब तो सीधे क्लास में।''[46] पता नहीं, कितनी बार पापा यह बात कह चुके हैं। और हर बार मन ही उसने दोहराया है–माई फादर इज डिविजिनल मैनेजर–पापा की एक–एक बात उसने रट ली है। पर हो सका.....पापा बंटी को अपने करीब करते हुए कहते है, ''यहाँ नहीं हुआ तो कोई बात नहीं, मैंने हॉस्टल के लिए चिट्ठी लिख दी है।''[47]

''हॉस्टल में तुम्हे अच्छा लगेगा। तुम्हारी उम्र के बच्चों को तो हॉस्टल में ही रहना चाहिए। अपने बराबरी के बच्चों के साथ पढ़ो, उन्हीं के साथ खेलों, उन्हीं के साथ रहो......''[48] शकुन की बाते इसी बीच उभरती है बंटी के मन में ''वहाँ तुम्हें अच्छा लगेगा बंटी। वहाँ जाते है, अमि है, उनका साथ रहेगा। यहाँ अकेला–अकेला कितना बोर होता है।''[49]

आज समय ने तेजी से करवट ली है और सारे सम्बन्ध धराशायी होते जा रहे है, सम्बन्धों में प्यार और लगाव बस दिखावा का रह गया है। बस सभी अपने कर्त्तव्यों को बिना किसी भाव के बस पूरा करने में लगे हैं बंटी के पिता जो उससे उसकी मर्जी जाने बिना ही बस उसे होस्टल में रखने की सारी तैयारियाँ कर लेते हैं। अजय मीरा से पूछता है, ''बंटी की सारी चीजों पर नाम टँक गए ?''[50] 'आपका बंटी' उपन्यास तलाकशुदा दम्पत्तियों के बच्चों की मानसिक स्थिति को सजीव चित्रण करने एवं तलाकशुदा दम्पत्ति के जीवन संघर्ष को सजीव चित्रण करने में सफल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. एक इंच मुस्कान–राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, पृ0 19
2. वही
3. एक इंच मुस्कान–राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, पृ0 24
4. वही, पृ0 49
5. वही, पृ0 65
6. एक इंच मुस्कान–राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, पृ0 84
7. वही, पृ0 157
8. वही, पृ0 204
9. एक इंच मुस्कान–राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, पृ0 235
10. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 6
11. वही, पृ0 10
12. वही
13. वही
14. वही, पृ0 11
15. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 11
16. वही
17. वही
18. वही, पृ0 12

19. वही
20. वही, पृ0 16
21. वही
22. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 16
23. वही
24. वही
25. वही, पृ0 31
26. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 56
27. वही
28. वही, पृ0 66
29. वही, पृ0 80
30. वही
31. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 97
32. वही
33. वही, पृ0 106
34. वही
35. वही
36. वही
37. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 107
38. वही, पृ0 135
39. वही
40. वही
41. वही
42. वही
43. वही
44. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 136
45. वही
46. वही, पृ0 143
47. आपका बंटी–मन्नू भंडारी, पृ0 144
48. वही
49. वही
50. वही, पृ0 150

सैयद सालार मसूद गाजी

डॉ. मोहम्मद आदिल
असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग
भवंस मेहता महाविद्यालय भरवारी कौशांबी

उत्तर प्रदेश के अनेक शहरों व कस्बों में सैयद सालार मसूद गाजी (गाजी मियां) की साथियों की माजारें आज भी कड़ा–मानिकपुर, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, रायबरेली, जायस, सुल्तानपुर, आजमगढ़ जौनपुर, गाजीपुर, तथा बनारस आदि स्थानों पर देखी जा सकती है। अरब व्यापारियों के साथ इस्लाम धर्म सर्व–प्रथम दक्षिण भारत आया। मोहम्मद बिन कासिम और महमूद गजनवी के आक्रमणों ने इस्लाम धर्म को भारत में फैलने का आधार प्रदान किया। गाजी मियाँ को महमूद गजनवी का भांजा बताया जाता है। उत्तर भारत में इस्लाम धर्म का व्यापक स्तर पर प्रचार–प्रसार करने वाले प्रथम व्यक्ति गाजी मियां थे। गाजी मियां पर पहली किताब चौथे मुगल बादशाह जहांगीर के शासनकाल में अब्दुर्रहमान चिश्ती ने ''तारीख–ए–मसूदी'' नाम से लिखा।[1] अब्दुर्रहमान ने गाजी मियाँ का जन्म 21 शाबान, 405 हिजरी[2] व मृत्यु 424 हिजरी में लिखा है। गाजी मियां के पिता का नाम सालार साहू और माता का नाम सतरे मुअल्ला था। सतरे मुअल्ला सुल्तान सुबुक्तगीन की पुत्री व सुल्तान महमूद की बहन बताई जाती हैं। सालार साहू इस्लामी तारीख के चौथे खलीफा हजरत अली के वंशज थे।

सालार साहू महमूद की सेना में सिपहसालार थे। एक दिन चार ऊँट सवार रोते–पीटते भारत से महमूद गजनवी के दरबार में पहुँचे। उन्होंने महमूद को बताया कि ''सुल्तान अबुल हसन ने अपनी सेना सहित हम पर आक्रमण करके मुजफ्फर खाँ के सेवक हुर्मुझ को मार डाला और वह मुजफ्फर खाँ उसकी पत्नी–बच्चों और उसके पास के लोगों को भी मारने ही वाला था, परन्तु मुजफ्फर अपने आश्रित लोगों के साथ उस स्थान को छोड़कर मरुस्थल (रजस्थान में ही किसी स्थान पर) की ओर भाग आया। अब कुछ समय से वह अजमेर में रहता है। इस समय राय भीरू और रायकरन और राय सुमगिरिया चवालीस हिंदू राजाओं के साथ मुजफ्फर खाँ पर आक्रमण करने के लिए एकत्र हो गये हैं।''[3] सुल्तान महमूद ने उत्तर दिया '' धैर्य रखो मैं मुसलमानों की रक्षा करूँगा।'' ख्वाजा हसन मेमंदी ने जो सुल्तान का वजीर था उनसे पूछा कि ''वे खुत्बा किसके नाम का पढ़ते हैं।'' उन्होंने उत्तर दिया ''अब तक तो हम अल्लाह और उसके रसूल के नाम के अतिरिक्त खुत्बे में खलीफा का नाम लिया करते थे। अब सुल्तान ने हमको सहायता का वचन दे दिया है, इसलिए हम सुल्तान महमूद गजनवी का नाम भी खुत्बे में पढ़ेगें।'' उत्तर सुनकर सुल्तान प्रसन्न हुआ और ख्वाजा हसन मेंमंदी को आदेश दिया कि एक सेनापति चुन लिया जाय और उसको शीघ्र उपस्थित किया जाय। लम्बे परामर्श के पश्चात् सालार साहू के नेतृत्व में सात लाख अनुभवी सरदारों के साथ हिंदुस्तान भेजा गया। महमूद ने अपनी कुल्हाड़ी, कमरबंद, कटार और अरबी घोड़ा सेनापति को प्रादान किया और अन्य अफसरों को खिलअतें और घोड़े देकर सम्मनित किया और फिर कहा, यदि तुम लोग मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो मेरे भाई सालार शाहू को प्रसन्न करों। उसकी यथाशक्ति सेवा करो और उसका आदेश मानो। मेरा भाई सालार साहू होशियार, न्यायशील और विवेकवान पुरुष है। वह ऐसा कार्य कभी नहीं करेगा जो स्वामिभक्ति के विरुद्ध हो और उचित न हो। 5 जिलहिज्जा, 401 हिजरी (1011 ई०) को सालार साहू कंधार से अपना लश्कर और चार ऊँट सवारों को हमराह लेकर अजमेर की तरफ बढ़े। उस समय महमूद भी अपनी राजधानी (गजनी) छोड़कर कंधार आ गया था।

तीन दिन यात्रा करने के पश्चात् सालारी लश्कर अजमेर आ पहुँचा। सालार साहू ने ऊँट सवारों को सूचना देने के लिए मुजफ्फर खाँ के पास भेजा। जब मुजफ्फर खाँ ने सेनापति के आगमन का समाचार सुना तो उसे हर्ष हुआ और उसने नक्कारे बजवाना शुरु कर दिया। मुजफ्फर खाँ बाहर निकलकर बैरी से युद्ध की तैयारी शुरु कर दिया। जो राजा मुजफ्फर खाँ के विरुद्ध राजस्थान में एकत्रित हुए थे, सालारी सेना के आने की सूचना पाते ही अपने डेरे को सात कोस पीछे कर कोह पुखर के पास लगा लिए। मुजफ्फर खाँ सालार साहू से मिलकर उन्हें अजमेर लाया और अजमेर दुर्ग से अपने

बाल–बच्चों को हटाने की अनुमति सालार साहू से इस लिए माँगी की उन्हें अजमेर दुर्ग में ठहराया जा सके। सालार साहू ने उत्तर दिया ''मैं तो आपकी सहायता के लिए आया हूँ।'' उन्होंने दुर्ग में रहने से मना कर दिया। सालार साहू ने अपना डेरा पुखर की पाल पर लागाने का आदेश दे दिया। कुछ दिन विश्राम करने के पश्चात् युद्ध की तैयारी कर बैरी के सेना पर टूट पड़े। तीन दिनों तक घमासान युद्ध चलता रहा। हिंदुस्तानी राजा लम्बे युद्ध के आदी न थे जिसके कारण उन्हें रणभूमि छोड़कर भागना पड़ा। सालारी सैनिकों ने उनका पीछा कर उनके अनेक सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया और कईयों को बंदी बना लिया। इस विजय की सूचना गजनी महमूद के दरबार में भेजी गयी। जब सालार साहू का पत्र महमूद को मिला तो वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने गजनी से आदेश भेजा कि उस देश का शासन उसके स्वामिभक्त सालार साहू के सुपुर्द कर दिया जाय।[4]

अजमेर से विद्रोहियों ने भागकर कन्नौज में राजा अजयपाल की शरण ली। महमूद ने सालार साहू को यह भी कहला भेजा यदि कन्नौज का राजा अधीनता न स्वीकार करे तो हम स्वयं अपनी विजय वाहिनी के साथ उस देश पर प्रयाण करेंगे। साथ ही सालार साहू की पत्नी सतरे मुअल्ला को भी आदेश दिया गया कि वह अपने पति के पास चली जाय। जब सतरे मुअल्ला अजमेर पहुँची तो उसके एक वर्ष बाद ही मसूद गाजी का जन्म अजमेर में हुआ। कहा जाता है जब मसूद गाजी पैदा हुए तो उनके चेहरे पर हजरत युसुफ का सौंदर्य, हजरत इब्राहीम की कोमलता और मोहम्मद साहब का प्रकाश चमक रहा था। अब्दुर्रहमान चिश्ती ने लिखा है कि सुल्तान को बड़ी प्रसन्नता हुई कि उसकी बहन को पुत्र हुआ और उसने पिता और माता तथा बच्चे मसूद के लिए और अतीव अनुग्रह करके उसने अपने हाथ से ही यह पत्र लिखा, ''हिंदुस्तान के राज्य का शासन हम अपने भाई और उसके पुत्र को प्रदान करते हैं। यदि राय अजयपाल अधीनता प्रकट कर ले तो बहुत अच्छा है। यदि नहीं तो हम स्वयं हिंदुस्तान पर अभियान करेंगे और उसी अवसर पर हम अपने सालार मसूद को देखेंगे।''[5]

राय अजयपाल लगातार विद्रोहियों को सालारी सेना के खिलाफ भड़का रहा था। अजयपाल के दुराग्रह से चिंतित और दुखी होकर सालार शाहू साहू ने सुल्तान महमूद सब बातों से सूचित सूचित कर दिया। इसके कुछ ही दिन बाद महमूद ने अपनी सेना के साथ भारत की ओर कूच किया। सालार साहू और मुजफ्फर खाँ अपनी सेनाओं के साथ सुल्तान से मिलने गये और पहले उसको अजमेर ले आये और सालार मसूद को उसके स्वामी की भाग्य की भाग्यप्रद दृष्टि के सामने रखा और फिर धन और सम्पत्ति भेंट की। अजमेर से लश्कर तैयार करके कन्नौज की ओर प्रयाण किया तथा सालार शाहू और मुजफ्फर खाँ को सेनाग्रभाग का नेतृत्व दिया।

सुल्तान महमूद मथुरा लूटता हुआ कन्नौज पहुँचा। महमूद के कन्नौज पहुँचने पर अजयपाल ने बिना उसका सामना किए ही भाग गया। तवारीख–ए–महमूदी का लेखक कहता है कि जब सुल्तान भारत अभियान से वापस लौटा तो सालार शाहू ने उसकी सेवा में उपस्थित होने की अनुमति माँगी। परन्तु सुल्तान ने कहा, ''कन्नौज की विजय तुम्हारा काम है, इसलिए मैंने तुमको उसका शासक नियुक्त किया है।'' जब वह सब लाहौर के समीप पहुँचे तो सुल्तान ने सेनापति को खिलअत और सोलह अरबी घोड़े देकर विदा किया। सालार शाहू अजमेर वापस लौटकर आस–पास के इलाकों में शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए अपने अफसर भेजें। अजयपाल को इस शर्त पर कन्नौज में रहने दिया गया कि वह कर देता रहेगा साथ ही वह स्वामिभक्त बना रहेगा। सालार शाहू अजमेर में सुल्तान महमूद के नायक की हैसियत से भारत पर शासन करने लगे।

सालार शाहू अपने पुत्र से बहुत प्रेम करता था। जब सालार मसूद चार वर्ष चार माह चार दिन के हुए तो मीर सईद इब्राहीम को उसका अध्यापक नियुक्त किया गया। नौ वर्ष की आयु में सालार मसूद ने अपनी शिक्षा पूर्ण कर ली। दस वर्ष की आयु में तो उनमें ऐसा विद्यानुराग हो गया था कि वह सारी रात अध्ययन में व्यतीत कर देते थे और दिन में में एक पहर व्यतीत होने से पहले अपने कमरे में से निकलते थे।[6]

अगले दस वर्ष तक सालार शाहू ने हिंदुस्तान के अनेक प्रांतों को विजित करने में व्यातीत किया। काबुलीज पर जब विद्रोहियों ने हमला किया तो महमूद ने सालार शाहू को विद्रोह को दबाने के लिए भेजा।[7] काबुलीज कश्मीर के समीप स्थित था। काबुलीज को सुरक्षित कर सालार शाहू विजय का का वृत्तांत लिखकर सुल्तान को भेजा तो सुल्तान ने एक फरमान भेजा, ''हम काबुलीज प्रांत अपने

विजयी भाई को जागीर में देते हैं, यह उसकी पहली जागीर की सवाई है। वह इसको अपना ही कर ले।'' जब यह निश्चित हो गया कि सालार शाहू को काबुलीज में रहना है तो उसने संदेशवाहक अजमेर भेजकर अपने नेत्र–ज्योति सालार मसूद से कहलवाया कि वह अपनी माता के साथ तुरंत आये। सालार मसूद अजमेर से रावल नामक कस्बे पहुँचे। रावल का जमींदार सतगुन ख्वाजा हसन मेमंदी के पुत्र का श्वसुर था। वह सालार मसूद के स्वागतार्थ बाहर आया और उसने आग्रह किया कि वह उसके मकान पर ठहरने की कृपा करे ताकि जमींदारों में उसका सम्मान हो, परंतु हसन मेमंदी की बईमानी का सितारा सतगुन के ललाट पर चमक रहा था।[8] इसलिए सालार मसूद ऐसे धोखेबाज के मकान पर उतरने के लिए राजी नहीं हुये और अपनी आदत के अनुसार उसने कस्बे के बाहर अपने डेरे लगा दिये। सतगुन ने अनेक प्रकार के खाने का इंतेजाम किया था लेकिन सालार मसूद ने उसे स्वीकार न किया। रावल कस्बे से निकलते समय सालार मसूद को सतगुन ने मिठाई दी थी। कुछ दूर चलने के बाद सालार मसूद ने मिठाई निकलवाकर कुछ कुत्तों को खिलाने को कहा। उन्हें खाते ही विष के कारण कुत्ते मर गये। सालार मसूद ने हसन मेमंदी के षडयंत्र को समझ लिया।

सालार मसूद ने अपनी माँ से कहा हम इसी स्थान पर एक दिन और ठहरते यह स्थान आखेट के लिए बहुत अच्छा है। माँ ने कहा ठीक है। सब वहीं ठहर गये। सालार मसूद अपने हजार साथियों को लेकर रावल कस्बे में पहुँचे। सतगुन अपने साथियों के साथ लड़ने के लिए आया लेकिन उसके सैनिक मसूद के सैनिकों के सामने टिक न सके। सतगुन को जीवित पकड़ कर मसूद के सामने प्रस्तुत किया गया। तो मसूद ने कहा ''अरे सतगुन क्या तुम हमको नहीं जानते, जो तुमने मेरे विरुद्ध ऐसा षडयंत्र किया।''[9] इसके बाद सतगुन के परिवार को बंदी बनाकर रावल कस्बे को लुटवा दिया। यह सालार मसूद की 12 वर्ष की आयु में प्रथम अभियान और सर्वप्रथम विजय थी।[10]

अगले दिन सारा वृत्तांत सुल्तान महमूद को भेज दिया गया। महमूद इस प्रकरण से पहले से ही परिचित था क्योंकि सतगुन के भाई नारायण ने हसन मेमंदी के माध्यम से महमूद को सूचना दे दी थी। जब मसूद का खत महमूद को मिला तो वह पूरा प्रकरण समझ गया। उसने आदेश दिया कि अपराधी पर सावधानी से निगरानी रखी जाय, क्योंकि जाँच करके उसे दण्ड दिया जायगा। इस फरमान की प्राप्ति पर शहजादे को बड़ा हर्ष हुआ और परंतु हसन मेमंदी के घर पर शोक छा गया और उसका गुप्त छ्ल प्रकट हो गया। उधर महमूद खुरासान के काम से खाली होकर गजनी पहुँचा तो उसने एक फरमान सालार साहू के पास भेजा। उसमें सालार शाहू को मसूद के साथ दरबार में उपस्थित होने को कहा गया था। बाप और बेटे महमूद के दरबार में उपस्थित हुए तो महमूद ने उनका कृपापूर्वक स्वागत किया और मसूद के प्रति इतना स्नेह प्रकट किया कि वजीर हसन मेमंदी को ईर्ष्या होने लगी।

महमूद ने सालार शाहू को दीवान–ए–खास में बुलाकर उनसे सोमनाथ के विरुद्ध सेना संचालन करने के विषय में सलाह ली तो सालार शाहू ने कहा अपकी यह योजना सर्वोत्तम है, सोमनाथ अभियान तुरंत करना चाहिए। ख्वाजा हसन मेमंदी सालार की बातों से सहमत नहीं था लेकिन सुल्तान को यह सलाह अच्छी लगी। इसके बाद सालार को काबुलीज जाने की अनुमति दे दी। सालार के विदा होते ही महमूद अपनी सेना लेकर सोमनाथ लूटने के लिए निकल पड़ा। 1025 ई. में महमूद ने सोमनाथ लूटा और वहाँ की मूर्ति को अपने साथ गजनी ले गया। हिंदुस्तानी राजाओं ने हसन मेमंदी के माध्यम से सोमनाथ की मूर्ति प्राप्त करनी चाही लेकिन उन्हें सफलता न मिली। इसी बात को लेकर हसन मेमंदी और महमूद के बीच मतभेद उत्पन्न हो गया। उसने वजीर के पद का भी त्याग कर दिया। चूँकि सोमनाथ अभियान सालार शाहू और सालार मसूद के सुझाव पर किये गये थे। सोमनाथ मंदिर के टुकड़े सालार मसूद की सलाह पर ही किए गये थे। सालार शाहू महमूद की सेना में ईरानी सेना का अध्यक्ष थ। जब भी महमूद किसी अभियान पर सफलता प्राप्त करता था तो उसके और उसके रिश्तेदारों के परिश्रम और साहस का फल हुआ करता था। तवारीख–ए–महमूदी के लेखक के अनुसार मसूद और हसन मेमंदी के झगड़े का और सालार शाहू तथा मसूद की वीरता और सज्जनता का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है।

ख्वाजा हसन मेमंदी को शासन–प्रबंध का अच्छा अनुभव था। महमूद के साम्राज्य के विभिन्न भागों के दल उसकी आज्ञा–पालन के लिए तैयार रहते थे। हसन जब विद्रोही हुआ तो यह भय महमूद को सताने लगा कि कहीं चारों ओर अव्यवस्था न उत्पन्न हो जाये। महमूद ने हसन को संतुष्ट करने

का प्रयास किया। हसन जब भी सालार मसूद को देखता और सुल्तान उस पर कृपा करता तो हसन साँप की भांति बल खाया करता था। दूसरे शब्दों में वह मसूद को दरबार में देखना पसंद नहीं करता था। इस स्थिति से परेशान होकर महमूद ने एक दिन सालार मसूद को बुलाया और कृपापूर्वक उससे कहा हसन मेमंदी का स्वभाव दुष्ट है और दुष्टता करके वह तुम (मसूद) से बड़ी नफरत करता है। इसी कारण उसने दफ्तर में आना भी छोड़ दिया है। सुल्तान ने ये भी कहा कि मैं उसको वजीर के स्थान से हटाकर उसके स्थान पर अबुल जंग मिकाइल को नियुक्त कर दूँगा। लेकिन जब तक यह काम न बने तुम काबुलीज चले जाओ और वहाँ शिकार करते रहो और अपने माता पिता की सेवा करो। सालार मसूद ने सुल्तान की बात का आशय समझकर उत्तर दिया, मुझे अपने माता पिता के पास क्या काम है। आपकी अनुमति हो तो मैं हिंदुस्तान पर अभियान करूँगा और जो राज्य अभी भी सुल्तान के अधीन नहीं है उसे सुल्तान के अधीन करके सच्चा धर्म फैलाऊँगा और आपके नाम का खुत्बा पढ़वाऊँगा। सुल्तान ने उत्तर दिया, बच्चे मुझे तुमसे बिछुड़ने में कोई हर्ष नहीं हो रहा। कहा मानो और कुछ समय के लिए अपने पिता के पास चले जाओ। मैं बहुत जल्दी तुमको वापस बुला लूँगा।

तवारीख–ए–महमूदी में लिखा है कि उसके अनुचर और जो उसने नये भर्ती किये, कुल मिलाकर 11 लाख सैनिक थे। इन सबके परिवार और घर गजनी में थे। सालार मसूद गजनी से काबुलीज पहुँचे जहाँ उन्हें सालार शाहू और सतरे मुअल्ला ने उन्हें रोकना चाहा लेकिन वे वहाँ रुकने के लिए तैयार न हुए। यह देखकर कि बच्चे को नहीं समझाया जा सकता तो उनकी इच्छा हुई कि उसी के साथ जायें। लेकिन मसूद ने कहा कि यदि वे उसके साथ चलेंगे तो हसन मेमंदी सुल्तान से यह कहेगा कि आप विद्रोही हो गये। इसलिए आपको यही रहना चाहिए। अंत में उनके माता–पिता बाध्य होकर उसकी बात माननी पड़ी। उन्होंने सालार मसूद के साथ अच्छी सेना और समझदार सलाहकार भेजे।

सालार मसूद सिंधु नदी के तट पर पहुँचे तो नाव का इंतेजाम करके नदी पार कर सहूर पर आक्रमण कर दिया। सहूर का शासक राय अर्जुन ने सालार मसूद के आने की सूचना पाकर पहाड़ों में शरण ले ली थी। सहूर से मसूद को पाँच लाख स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त हुईं। सहूर विजय मसूद की हिंदुस्तान में पहली विजय थी।[11] इसके बाद मसूद जब मुल्तान पहुँचे तो वह नगर उजाड़ पड़ा हुआ था। सुल्तान महमूद के समय उसे दो बार लूटा जा चुका था। वहाँ के शासक राय अर्जुन और आनंदपाल उच्छ प्रांत में रहने लगे थे। उन्हों ने उच्छ से मसूद के पास दूत के माध्यम से यह पूछा कि किसी भी देश पर इस प्रकार आक्रमण करना क्या उचित है और यह भी कहा कि ‘‘शायद आपको इसका पश्चाताप करना पड़े।’’ मसूद ने उत्तर भेजवाया कि ‘‘देश ईश्वर का होता है। उसके दास का कोई राज्य नहीं होता’’ परन्तु जिसको ईश्वर जो देता है वह उसी का स्वामी बन जाता है।

दूतों के वापस जाते ही मसूद ने हुसैन अरब, अमीर बाजिद जफर, अमीर तरकान, अमीर नकी, अमीर फिरोज और उम्र मुल्क अहमद इन छः अमीरों को कई लाख सवार देकर राय आनंदपाल पर आक्रमण करने के लिए भेजा। आनंदपाल युद्ध के लिए दुर्ग से निकला और तीन घंटे घमासान युद्ध के बाद मसूद की सेना विजयी रही। इसी बीच वर्षा आरम्भ होने के कारण मसूद अपनी सेना के साथ मुल्तान में ही वर्षावास किया। चार मास के बाद मसूद अपनी सेना लेकर अजोधन पर आक्रमण किया। अजोधन का एक अन्य नाम पट्टन भी मिलता है। अजोधन पर अधिकार के बाद मसूद दिल्ली की ओर रवाना हुए। उस समय दिल्ली का राजा राय महिपाल था। उसके पास एक विशाल सेना थी। सुल्तान महमूद और सालार शाहू लाहौर तो जीत लिया लेकिन दिल्ली पर आक्रमण नहीं कर सके और वापस लौट गये। सालार मसूद कूच दर कूच उस नगर पर जा पहुँचा। उसका सामना करने के लिए राय महिपाल सेना लेकर बाहर निकला। दोनों सेनाएँ एक–दूसरी से कई मील दूर थीं परन्तु दोनों पक्ष के युवा सैनिक नित्य प्रातः काल से सायंकाल तक कुछ झपटें मारा करते थे। इस प्रकार एक मास और कुछ दिन निकल गये। फिर मसूद को परिणाम के विषय विषय में भय बना रहा। गजनी से मलिक बहाउद्दीन, सालार सैफुद्दीन, मीर बख्तियार, मीर शहीद अजीजुद्दीन की मदद आने की सूचना मसूद को मिली तो उनकी सेना में हर्ष की लहर दौड़ गयी। इन सभी सिपहसालारों ने हसन मेमंदी के दुर्व्यहार के कारण ही गजनी छोड़ा था। सैफुद्दीन मसूद के सगे चाचा थे। मीर बख्तियार और अजीजुद्दीन भी मसूद के रिश्तेदारों में से थे। मलिक दौलत सुल्तान महमूद का सेवक था। और रजब सालार शाहू का

विश्वसनीय दास था। शाहू को उस पर इतना भरोसा था कि उसे मसूद को दे दिया था और मसूद ने भी कृपा करके उसको जागीर दी थी। किंतु ज्योंहीं सालार मसूद अपने अभियान पर रवाना हुआ त्योंहीं हसन मेमंदी ने वह जागीर छीन ली और सुल्तान को इसकी सूचना भी नहीं दी। इसलिए मियाँ रजब मसूद का अनुयायी बन गया और मसूद ने उसको इतना विश्वास के योग्य समझा कि उसको सेना का कोतवाल नियुक्त कर दिया।

जब महिपाल ने सुना कि शत्रु की सेना में वृद्धि हो गयी तो वह बड़ा डरा। चार दिन बाद दोनों सेनाओं में लड़ाई हुई। मसूद जब सरफुल मुल्क से बात कर रहा था तो महिपाल के पुत्र गोपाल ने उस पर आक्रमण किया और उसके सिर पर एक कुल्हाड़ी मारी तो उसकी नाक पर घाव हो गया और उसके दो दाँत टूट गये। सरफुल मुल्क ने तलवार मारी तो एक ही वार में गोपाल की मृत्यु हो गयी। महिपाल और श्रीपाल ही रणभूमि पर अंतिम समय तक डटे रहे और अंत में मारे गये। अब दिल्ली मसूद के अधिकार में आ गयी।

सालार मसूद (मसूद गाजी) यह कहते हुए दिल्ली की गद्दी नहीं स्वीकार की कि वह तो ईश्वर की कीर्ति के लिए लड़ रहा है। मसूद ने महिपाल के साथ युद्ध में अपने कई साथी खो दिए थे। उनमें मलिक अजीजुद्दीन को भी खो दिया था, उन्हें दिल्ली में दफनाया गया। मसूद ने दिल्ली की बागडोर अमीर बाजीद जफर को इस ताकीद के साथ दी कि वह दिल्ली वासियों के सुख के लिए उत्तरदायी होगा। छः मास दिल्ली में रहने के बाद मेरठ की तरफ कूच किया। उस समय मेरठ पर हरिदत्त का शासन था। हरिदत्त के बारे में कहा जाता है कि उसने महमूद के आक्रमण के समय अपने 10,000 साथियों के साथ इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। जब गाजी मसूद मेरठ पहुँचे तो हरिदत्त ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। मेरठ के राजाओं ने पहले ही सुन लिया था कि मसूद के सामने कोई टिक नहीं सकता। उसकी सेना जिधर जाती है वहीं उसको विजय प्राप्त होती है। इसलिए वे डरे हुए थे। उन्होंने मसूद को बहुमूल्य भेंटे भेजीं और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुतुबुद्दीन ऐबक जब दिल्ली का सुल्तान बना तो उसने मेरठ में मसूद गाजी की याद में एक मकबरे का निर्माण कराया। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद के आक्रमण के समय मेरठ में मुसलमान आबाद थे। इसका स्पष्ट प्रमाण मेरठ में बनी जामा मस्जिद है, जिसका निर्माण हसन मेमंदी ने कराया था। मसूद ने मेरठ के राजाओं अधीनता स्वीकर करने से उनके राज्य उन्हीं के पास रहने दिया और कन्नौज की ओर प्रयाण किया।[12]

मेरठ के बाद मसूद गाजी उत्तर भारत के महत्तपूर्ण नगर कन्नौज पहुँचे। कन्नौज अपनी महत्ता के कारण ''महोदय नगर'' के नाम भी जाना गया। महमूद ने 406 हिजरी (1015 ई०) अजयपाल को पराजित कर कन्नौज पर भी अधिकार कर लिया। जब सुल्तान महमूद ने राय अजयपाल को कन्नौज से निकाल दिया था तो मसूद ने उसको क्षमा दिलवाकर पुनः अपने पद पर बहाल करा दिया था। मसूद गाजी की इस साहायता के बदले अजयपाल उनके आने पर स्वामिभक्ति दिखाते हुए उनके स्वागत् के लिए आया और दस घोड़े उनकी सेवा में प्रस्तुत किया। अजयपाल ने सेना के रसद की व्यवस्था करके वापस जाने लगा तो मसूद गाजी ने उसे विशेष खिलअत और वे ही दस घोड़े देकर विदा किया जो अजयपाल अपने साथ ले आये थे। मसूद ने अजयपाल से कहा कि मुल्क की सब प्रकार से देखभाल करों ताकि प्रजा प्रतिदिन उन्नति करती रहे।

कन्नौज से मसूद गाजी 1022 हिजरी में लगभग 18 वर्ष की आयु में बाराबंकी में कस्बा सतरख नामक स्थान पर पहुँचे। उस समय भारत के नगरों और कस्बों में सतरख सर्वाधिक सम्पन्न था। महमूद गजनवी सीतापुर के आगे नहीं बढ़ा था। बाद में सीतापुर के आगे भी मुस्लिम सेनाएँ भेजी गयी। सतारिख की जलवायु मसूद गाजी को रास आयी उन्होंने उसे केंद्र बनाकर विभिन्न क्षेत्रों में अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिए प्रचारकों के दस्ते भेजे। मलिक अम्बर (लखनऊ), मलिक युसुफ (अमेठी), आदम (मडियावां) आदि क्षेत्रों में जो मजारें हैं वे संभवतः मसूद गाजी के द्वारा भेजे गये प्रचारको की हैं जो स्थानीय राजाओं से लड़ते हुए मारे गए थे। सतारिख प्रवास के दौरान ही अजमेर से सूचना आयी कि वहाँ के स्थानीय राजाओं ने मिलकर अजमेर व उसके आस–पास के क्षेत्रों मे बगावत का अलम बुलन्द कर दिया है। इन विद्रोहियों में राय दीन दयाल व जयपाल भी शामिल हो गए हैं। उन्होंने मिलकर दोस्त मोहम्मद को धुंधगढ़ के किले में घेर रखा है। मसूद गाजी ने एक सैन्य टुकड़ी अजमेर दोस्त मोहम्मद की सहायता के लिए भेजी। इस विद्रोह को सफलता पूर्वक दबा दिया गया।

कड़ा के शासक देवनारायण और मानिकपुर के राजा भोजनेर ने मसूद गाजी को यह कहलवा भेजा कि तुम्हारी इसी में खैर है कि तुम अपने वतन लौट जाओ। मसूद गाजी ने उसी एलची के माध्यम से कड़ा–मानिकपुर के राजा को उत्तर भेजा वह वापस नहीं जायेंगे आवश्यकता पड़ने वह युद्ध के लिए भी तैयार हैं।

421 हिजरी (1030) ई० में मसूद गाजी की माँ के देहांत के बाद सालार साहू सतारिख आये। सतरे मुअल्ला के देहांत के कुछ दिनों बाद महमूद गजनवी ने भी 1030 ई० में इस फानी दुनिया को अलविदा कह दिया। महमूद की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी मसऊद हुआ। उसने हसन मेमंदी को पुनः वजीर पद पर बैठा दिया। चूँकि सालार साहू व हसन मेमंदी के बीच दुशमनी पहले से ही चली आ रही थी। उसका कारण ये था कि सालार साहू के रहते वह महमूद के दरबार में अपना प्रभाव न जमा सका। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि हसन मेमंदी की माँ भारतीय और बाप अफगानी था। महमूद सोमनाथ मंदिर की सोने की मूर्ति को लेकर गजनी चला गया। भारतीय राजाओं ने महमूद से उस मूर्ति को प्राप्त करने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल तैयार किया था। उस प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व हसन मेमंदी कर रहा था। जब ये प्रतिनिधि मण्डल गजनी महमूद के दरबार में पहुँचा और मूर्ति के बदले उतने ही हीरे जवाहरात देने के लिए महमूद को तैयार कर लिया तो वहाँ मौजूद मसूद गाजी ने महमूद से कहा था कि '' मूर्ति को इस तरह से लौटाने में बड़ी बदनामी होगी और कयामत के रोज अल्लाह के यहाँ बुतशिकन के स्थान पर बुतफरोश कहलाये जायेंगे।'' इसके बाद महमूद ने मूर्ति लौटाने से इनकार कर दिया।[13]

पत्नी की मृत्यु के बाद सालार साहू सतरख पहुँचे। उनका सतारिख आना स्थानीय सरदारों के लिए शुभ संकेत नहीं था। मियाँ रजब और सैफुद्दीन को मसूद गाजी ने सतरख से बहराइच के विरुद्ध रवाना किया था। मियाँ रज्ब अपने पिता के स्थान पर कोतवाल बनाया गया था। रजब और सैफुद्दीन ने बहराइच पहुँचते ही वापस कहलाया कि वहाँ कोई सामान नहीं मिलता और सेना रसद के अभाव में नष्ट हो जाने की आशंका है। सहायता मिले तब ही रक्षा हो सकती है। ये सूचना पाते ही मसूद गाजी ने आस–पास के परगनों के मुकद्दमों और चौधरियों को बुलवाया तो सात या आठ परगने से लोग आये। सद्दाहुर के चौधरी बीपास और अमेठी के चौधरी नरहरि को मसूद गाजी ने अपने समक्ष बुलाकर कहा कृ षि की उन्नति करें जिससे उसको और प्रजा को लाभ हो और उनसे यह भी कहा कि अग्रिम रुपये लेकर रसद का इंतेजाम करो। दोनों ने उत्तर दिया हम रुपये बाद में ले लेंगे पहले हम आपके सामान (रसद) की व्यवस्था कर दें। लेकिन मसूद ने आग्रह किया कि रुपये पहले लिए जायें। मसूद गाजी ने मलिक फिरोज उमर को सरयू नदी के तट पर बहराइच में सैफुद्दीन के पास रसद पहुँचाने के लिए लगाया था।

फिरोज उमर ने तीन जासूसों को पकड़ा जो कड़ा–मानिकपुर के राजा द्वारा भेजे गए थे। उन जासूसों के पास बहराइच के आस–पास के राजाओं के लिए लिखित पत्र भी थे जिसमें सालार मसूद के विरुद्ध लामबंद होने की बात कही गयी थी। उन जासूसों में एक नाई भी था जिसने मसूद गाजी को जहर देकर मारने का प्रयास किया था। नाई को उसके कुकृत्य के लिए मौत के घाट उतार दिया गया।[14] सतरख से सालार शाहू एक विशाल सेना लेकर कड़ा–मानिकपुर की ओर कूच किया। कड़ा के समीप पहुँचकर सालार साहू ने अपनी सेना के दो हिस्से कर एक सैन्य टुकड़ी को कड़ा और दूसरी टुकड़ी को मानिकपुर की तरफ रवाना किया। सालारी सेना ने कड़ा से देवनारायण और मानिकपुर से भोजनेर को बंदी बनाकर सतरख भेज दिया गया। कड़ा–मानिकपुर और उसके आस–पास के क्षेत्र सालार साहू के अधिकार में आ गये। सालार साहू ने मलिक अब्दुल्लाह को कड़ा का और मलिक कुतुब हैदर को मानिकपुर का शासन प्रबंध सौंपकर[15] स्वयं सतरख रवाना हो गए। सालार साहू सतरख वापस जाते हुए रायबरेली को फतह कर वहाँ का शासक मलिक अब्दुल्लाह को नियुक्त किया। ऐसा प्रतीत होता है कि सालार साहू कड़ा–मानिकपुर प्रवास के दौरान विभिन्न क्षेत्रों के विजय के लिए अपने प्रतिनिधि भेजे होंगे। इन टुकड़ियों के सरदार उन क्षेत्रों को जीतकर वहीं आबाद हो गए।

कड़ा–मानिकपुर के राजाओं की पराजय ने हिंदुस्तान के अन्य क्षेत्रों के राजाओं की आँखें खोल दी। उन्हें महसूस हुआ यदि हम बिखरे रहेंगे तो अवश्य ही हम अपना राज्य खो देगें। हिंदुस्तानी राजा एकत्रित होकर बहराइच के चारों ओर घेरा डाल दिया। बहाराइच से सतारिख एक एलची मसूद गाजी

के पास आकर सूचना दी कि बैरी ने हमें चारों ओर से घेर लिया है। आपकी सहायता के बिना उन्हें पराजित करना संभव नहीं है। 17 शाबान, 423 हिजरी (1032 ई०) मसूद गाजी सतारिख से बहराइच पहुँचे। अगले महीने में सतरख से अबुल मलिक का पत्र आया। जिसमें लिखा था कि 15 शव्वाल, 423 हिजरीको सालार शाहू को मस्तक पीड़ा हुई तो उन्होंने अपना आखिरी वक्त जानकर कहा मुझे सतरख में ही दफनाया जाये। उसी माह की 25 तारीख को सालार शाहू का देहांत हो गया। वालिद के देहांत की खबर सुनकर मसूद गाजी अपना आपा भूल गये और जोर–जोर से विलाप करते हुए उसने अपने कपड़ों पर धूल फेंकी।[16] उनके बहराइच पहुँचने की सूचना जैसे ही बहराइच के राजाओं की को मिली उन्होंने घेरा उठा लिया। पिता की मृत्यु के बाद सतारिख के शासन व्यवस्था की देख–रेख के लिए मलिक फिरोज को नियुक्त कर मसूद गाजी बहराइच में रहने लगे।

बहराइच के आस–पास के राजाओं ने अपना आस्तित्व बचाने के लिए मसूद गाजी के के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा तैयार किया। उन राजाओं में राय रायब, राय सायब, राय अर्जुन, राय भीखन, राय किंग, राय कल्याण, राय निगरु, राय सिधरु, राय करन, राय बीरबल, राय अजय पाल, श्रीपाल, हरपाल, राय हरकुन, राय हरखू, राय निरहू,राय गिरजाधारी, राय देव नारयाण तथा राय नरसिंह शामिल थे। इन राजाओं ने एक चेतावनी भरा पत्र मसूद गाजी के पास भेजा। उस पत्र में लिखा था कि तुम अपने वतन लौट जाओ यदि रुके तो परिणाम बुरा होगा। जब मसूद गाजी बहराइच में डटे रहे तो बैरियों ने भखला नदी के तट पर अपनी छावनी स्थापित कर युद्ध की तैयारी करने लगे। मसूद गाजी भी अपनी सेना के साथ संयुक्त मोर्चा के विरुद्ध आ डटे। युद्ध आरम्भ हुआ बैरी युद्ध में टिक न सके और सालारी सेना विजयी रही। यह युद्ध बहराइच और नेपाल की सीमा के उत्तर–पश्चिम में 25 से 30 मील तारामणी या तरावन के जंगलो में भखला नदी के तट पर हुआ था। भखला नदी वर्तमान में परगना चर्दा तहसील नानपारा में एक ताल से निकलती है। चर्दा के निकट ही राजा सुहलदेव ने एक दुर्ग का निर्माण कराया था। संयुक्त मोर्चा के राजाओं की हार के बाद अनेक राजाओं ने मसूद गाजी की अधीनता स्वीकार कर ली। उन राजाओं में गोविंदा दास का नाम मिलता है जो जमला पर्वत के राजा बताए जाते हैं।

मसूद गाजी से पराजित होने के बाद स्थानीय राजा चौन से ना बैठे। उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए हिंदुस्तान के अन्य क्षेत्रों के राजाओं को परस्पर एकजुट करने का प्रयास किया। हिंदुस्तान में जिन–जिन राजाओं ने महमूद के आतंक देखे थे। उन्होंने संयुक्त मोर्चे के राजाओं का साथ देने से इसलिए भयभीत थे कि कहीं गजनी से मसूद गाजी की सहायता के लिए सैनिक न आ जायें। किंतु बदले की ज्वाला उनके दिलों में भी इसलिए भड़क रही थी कि महमूद से लड़ते हुए उन्होंने अपना कुछ न कुछ खोया था। अंत में उन्होंने मसूद गाजी के विरुद्ध बने मोर्चे में शामिल होने का फैसला किया। ऐसे ही एक चेदी के कलचुरी राजा गंगेयदेव17 का (1015–1040 ई०) नाम मिलता है जो मसूद गाजी के विरुद्ध मोर्चे में में शामिल था। राजा सुहल देव सुजौली से और बहर देव सुम्बोलना से बहराइच पहुँचे। ऐसे ही हिंदुस्तान के अनेक क्षेत्रों के राजा बहराइच में जमा होकर पूर्व में मसूद गाजी से हुई हार के कारणों पर विचार विमर्श किया। राजा सुहलदेव ने मसूद गाजी के विरुद्ध युद्ध में गोला–बारूद के प्रयोग पर बल दिया। तमाम राजा एक होकर युद्ध के लिए पुनः भखला नदी के तट पर छावनी लगाकर युद्ध की तैयारी शुरु कर दी। भखला नदी के तट से एक एलची मसूद गाजी के पास आकर कहा कि भखला नदी के पास हिंदुस्तान के तमाम राजा अपने दल–बल के साथ एकत्रित होकर यह कहला भेजा है कि ''तुम अपने लोगों का भला चाहते हो तो अपने सभी साथियों को लेकर सरयू नदी के पार चले जाओ।'' मसूद गाजी ने उस एलची से कहला भेजा कि '' मुल्क ईश्वर का है। वो जिसे चाहता है देता है, उसे देता है।'' एलची के जाने के बाद मसूद गाजी अपने साथियों को बुलाकर विचार–विमर्श के बाद युद्ध के लिए सेना को एकत्रित करने का आदेश दे दिया। इधर तैयारी चल ही रही थी कि सूचना आयी कि बैरी हमारे मवेशियों को खोल ले गए हैं। इतने में युद्ध शुरु हो गया। सालारी लश्कर इस बार भी विजयी रहा। इस युद्ध में मसूद गाजी के अधिकांश पुराने साथी मारे गए। हिंदुस्तान के पराजित राजाओं ने विभिन्न क्षेत्रों के राजाओं से अपील की कि यदि हम एक नहीं हुए तो हमारा राज्य छिन जाएगा। इस बार विभिन्न क्षेत्रों के राजाओं ने बड़े पैमाने पर अपने सैनिक भेजे। उधर सालारी सेना दो युद्धों में अपने एक चौथाई सैनिक खो दिए चुकी थी। अभी भी भारतीय नरेशों को ये चिंता सता रही थी कि कहीं गजनी से सैनिक सहायता मसूद गाजी को मिल गयी तो हमारा पतन निश्चित ही हो जायेगा। हिंदुस्तान की विशाल सेना देखकर मसूद गाजी ने अपने सैनिकों

में ऊर्जा का संचार करने के लिए उन्हें संबोधित करते हुए कहा '' तुम्हारी वफादारी बेमिसाल है। आप सबका मेरे ऊपर बड़ा ऐहसान है। गजनी से लेकर हिंदुस्तान तक आप लोगों ने मेरा साथ दिया। तरह–तरह की तकलीफें झेलते हुए आप लोग मेरे साथ डटे रहे। अल्लाह ने चाहा तो इस बार भी हमें हार का मुँह नहीं देखना पड़ेगा। किंतु आज हम एक संकट के मोड़ पर खड़े हैं जहाँ हमारी संख्या बहुत कम है। बैरी हमें मिटाने के लिए कसम खाकर हामारे सिर पर खड़ा है। हम में से जो भी कोई वतन लौटना चाहता है। वह खुशी से जा सकता है। अल्लाह ने मुझे वह हिम्मत और साहस दिया है। बड़ी से बड़ी शक्ति भी मुझे डरा नहीं सकती। हमारे पुरखे कभी युद्ध से नहीं फिरे तो हम कैसे युद्ध से मुँह मोड़ लें।'' 19 साल के इस युवा गाजी का संबोधन सेना में स्फूर्ति पैदा हो गई। 13 रज्जब 424 हिजरी सन् 1033 ई० को प्रातः काल पराजित राजाओं ने संयुक्त सेना के साथ सालारी लश्कर पर आक्रमण कर दिया। जब आक्रमण की सूचना मसूद गाजी को हुई तो बिना सुरक्षा कवच पहने ही अरुपे नीली घोड़ी पर सवार होकर युद्ध स्थल पर पहुँचे। संयुक्त सेना का नेतृत्व सुहलदेव व बहरदेव कर रहे थे। युद्ध के पहले दिन सालारी सेना के अधिकांश सैनिक मारे जा चुके थे। दूसरे दिन सुहलदेव ने युद्ध को अपने पक्ष में मानते हुए सालार मसूद गाजी को घेर कर तीरों से छलनी कर दिया। सिकंदर दीवाने ने मसूद गाजी का सिर अपने गोद में लिए हुए बैठा था। उसके सीने में भी कई घाव हो गये थे। कहा जाता है कि उसको अपने स्वामी के प्रति ऐसा गहन स्नेह था कि उसने मसूद गाजी के सिर के नीचे से अपने घुटने हिलाये भी नहीं और उनकी सेवा करते हुए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। 14 रज्जब, 424 हिजरी या 1033 ई० को 19 वर्ष की आयु में सालार मसूद इस फानी दुनिया को विदा कह दिया। सालार मसूद की मृत्यु के बाद सालारी सेना का नेतृत्व सैयद इब्राहीम ने संभाली। सैयद इब्राहीम ने सालारी सेना को पुनर्गठित कर सुहलदेव का सामना किया लेकिन इस युद्ध में सुहलदेव और बाद मे सैयद इब्राहीम दोनों मारे गये।

सैयद सालार मसूद गाजी मारे गए तो एक योद्धा के रूप में लेकिन उनको प्रसिद्धी मिली एक सूफी के रूप में। मसूद गाजी के बारे में इतिहासकारों द्वारा भिन्न–भिन्न मत दिए जाते रहें हैं। महमूद का दरबारी अबू नस्र बिन अब्दुल जब्बार उत्बी ने ''तारीख यामिनी'' जिसमें 411 हिजरी (1020 ई०) तक का इतिहास लिखा है। इसके बाद अबू सईद गरदेजी ने जैन–उल–अखबार 404 हिजरी में लिखा। ये किताब महमूद की मृत्यु के नवें या दसवें साल प्रकाशित हुई। जैन–उल–अखबार प्रकाशित होने के कुछ समय बाद महमूद के एक सेवक अबुल फज्ल मोहम्मद हुसैन ने 451 हिजरी (1059 ई०) एक पुस्तक लिखी। इसमें उसने महमूद और उसके पुत्र मसऊद का विस्तृत उल्लेख किया है। तहकीक–ए–हिंद का लेखक अलबरूनी कई वर्षों तक हिंदुस्तान में रहा था। उसने अपनी ग्रंथ में हिंदुस्तान के बारे में विस्तृत विवरण दिया है। शाह अब्दुल सत्तार अलवी कादरी की तारीख–ए–महमूदी जिसमें उसने मोहम्मद गोरी के दिल्ली व अजमेर अभियानों का उल्लेख किया है। उक्त सभी ग्रंथों सालार मसूद का उल्लेख नहीं मिलता है। सालार मसूद का पहला लिखित उल्लेख अब्दुर्हमान चिश्ती ने ''मिरात–ए–मसूदी'' में किया है। चौथे मुगल शहंशाह जहाँगीर के शासनकाल में 1620 ई० अब्दुर्रहमान चिश्ती ने मिरात–ए–मसूदी की रचना की थी। कुछ इतिहासकारों ने मिरात–ए–मसूदी को ऐतिहासिक ग्रंथ मानने से इनकार किया है क्योंकि इसकी रचना करते समय अब्दुर्रहमान ने स्रोतों के स्थान पर सुनी–सुनाई बातों के आधार पर अपना ग्रंथ तैयार किया है।[18] इब्नब्तूता कि बातों से पूरी तरह सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि ऐसा भी संभव है कि अब्दुर्रहमान जब मिरात–ए–मसूदी लिख रहे थे तो तमाम तथ्यों को खोजकर लिखा हो, जैसा कि इलियट एवं डाउसन कि अब्दुर्रहमान बड़े समय से तथ्यों को खोज रहा था। बहुत समय बाद उसे मुल्ला मोहम्मद गजनवी की लिखी हुई एक पुस्तक प्राप्त हुई। यह व्यक्ति सुल्तान सालार साहू और सुल्तान महमूद का सेवक था। अब्दुर्रहमान ने शम्स सिराज अफीफ के रोजतुस्सफा और तारीख दृ ए–फिरोजशाही और मुंतखब–उत–तवारीख जैसे ग्रंथों का भी उपयोग किया है।[19] अब्दुर्रहमान चिश्ती के पूर्व के इतिहासकारों ने भी मसूद गाजी का उल्लेख किया है। मोहम्मद तुगलक के शासनकाल से मसूद गाजी का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है। एक प्रश्न ये उठता है कि मसूद गाजी को पराजित करने के बाद हिंदुस्तानी राजाओं का पुनः बहराइच पर शासन स्थापित कर लिया था। मसूद गाजी की मजार बहराइच में कैसे बना दी गयी? महमूद के आक्रमण के बाद भारत में अनेक क्षेत्रों में मुस्लिम बस्तियाँ स्थापित आबाद हो गईं थी। महमूद के उत्तराधिकारियों ने भी भारत से किसी न किसी रूप में संबंध कायम रखे।

तारीख–ए–गुजीदह में हमदुल्लाह मुस्तौफी ने लिखा है कि महमूद गजनवी की एक सौतेली माँ भी थी। महमूद गजनवी के दो चाचा थे जिनमें से एक का नाम बुगरा चक था। ये संभव है कि सतरे मुअल्ला महमूद गजनवी की चचाजाद बहन हो या उनके सौतेली माँ की बेटी हो।[20] जियाउद्दीन बरनी और शम्स सिराज अफीफ दोनों ने अपने ग्रंथ का नाम तारीख–ए–फिरोजशाही रखा है। इनमें भी कहीं ये नहीं मिलता कि मसूद गाजी महमूद के भांजे थे। तबकात–ए–अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद का दावा है कि सिपहसालार मसूद गाजी महमूद गजनवी के करीबी रिश्तेदारों में से थे। दारा शिकोह ने सफीनत–उल–औलिया में शेख अब्दुल हक के हवाले से लिखा है कि मसूद गाजी महमूद के सरदारों में से थे।[21] बैहाकी,गरदेजी और अब्दुल कादिर बदायूँनी के लेखों से भी पता चलता है कि महमूद की एक बहन की शादी रजनैतिक कारणों से ख्वारिज्म के शाह अबू अब्बास इब्न मामू के साथ हुआ था। इब्न खल्दून के अनुसार महमूद गजनवी की एक बहन की शादी अबू नस्र बिन अबुल हदस अहमद बिन मोहम्मद से हुई थी जो खानदान फरीगून से था।[22] यदि इब्न खल्दून के कथन को सत्य माने तो अबु नस्र बिन अबुल हदस बिन मोहम्मद और सालार साहू एक नहीं हो सकते। इस प्रकार महमूद की दो बहनों का सालार साहू से पति का संबंध नहीं था। अब्दुर्रहमान चिश्ती के पहले या बाद के लेखकों ने मसूद गाजी को महमूद का करीबी रिश्तेदार लिखकर पाठकों के लिए उलझन पैदा कर दिया है।

ये कहना कि मसूद गाजी, महमूद गजनवी के भांजे थे। मिरात–ए–मसूदी के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रंथों में नहीं मिलता है। तारीख–ए–फरिश्ता के लेखक मोहम्मद कासिम हिंदूशाह फरिश्ता ने भी मसूद गाजी को महमूद का करीबी रिश्तेदार बताया है। बहराइच गजेटियर में मसूद गाजी को महमूद गजनवी का भतीजा बताया गया है। मिरात–ए–मसूदी के अनुसार मसूद गाजी की मृत्यु के बहराइच और उसके आस–पास के मुसलमानों द्वारा उनकी शहादतगाह को रोशन किया। मसूद गाजी के जो साथी सतरख में मौजूद थे। उन्होंने बहराइच जाकर मसूद गाजी की मजार की देख–रेख करना आरम्भ कर दिया। मसूद गाजी की मजार की इमारत सर्व प्रथम उनकी शहादत के दो सौ वर्षों के बाद इल्तुतमिश के पुत्र मलिक नासिरुद्दीन महमूद ने निर्माण कराया था।[23] 641 ई० में अलाउद्दीन मसूद के समय नासिरुद्दीन महमूद बहराइच का सूबेदार था।[24] मिरात–ए–मसूदी की माने तो उसमें मसूद गाजी के मजार के संबंध में कुछ इस प्रकार वर्णन मिलता है। एक औरत को संतान नहीं हो रही थी तो वह मसूद गाजी के आस्ताने पर जाकर दुआ माँगी तो उसकी मुराद पूरी हो गई। उसको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। ये घटना चारों दिशाओं में तेजी से फैल गई मसूद गाजी की मजार बड़ी करामाती है। वहाँ जाकर सच्चे मन से दुआ करने से मुरादें पूरी होती है। बाराबंकी (अवध) के सैयद रुक्नुद्दीन और सैयद जमालुद्दीन ने सर्व प्रथम मसूद गाजी के मजार पर एक गुम्बद का निर्माण कराया। इस गुम्बद के निर्माण के पीछे बीबी जोहरा की एक दास्तान जुड़ी हुई है। बीबी जोहरा सैयद जमालुद्दीन की पैदाइसी नाबीना पुत्री थी। बीबी जोहरा मसूद गाजी के आस्ताने पर जाकर अपनी बीनाई के लिए दुआ किया। मसूद गाजी के आशीर्वाद से उनकी आँख की रोशनी आ गई। इसी लिए बीबी जोहरा के कहने पर उनके पिता ने मसूद गाजी की मजार पर एक गुम्बद का निर्माण कराया था। ऐतिहासिक आधार पर मसूद गाजी के मकबरे का पहला उल्लेख इब्नबत्तूता ने अपने ग्रंथ 'रेहला' इस प्रकार करता है कि '' सरयू नदी के किनारे बहराइच नामी एक सुंदर शहर स्थित है। यहाँ के आस–पास के क्षेत्रों को सालार (मसूद गाजी) ने अपने अधीन कर लिया था। सालारके बारे में यहाँ अनेकों आश्चर्य जनक बातें प्रसिद्ध हैं। मैं (इब्नबत्तूता) सुल्तान मोहम्मद तुगलक के साथ सालार की दरगाह पर जियारत (दर्शन) के लिए गया था। दरगाह में इतनी अधिक भीड़ थी कि सुल्तान अपने सैनिकों के साथ दरगाह के अंदर प्रवेश कर गया लेकिन मैं दरगाह के अंदर नहीं जा सका।''[25] फरिश्ता ने लिखा है कि '' सुल्तान मोहम्मद तुगलक मसूद गाजी के आस्ताने पर जियारत के लिए गया था। उसने दरगाह के मुजावरों को इतना उपहार दिए कि वो माला–माल हो गये।[26]

मसूद गाजी के अनुयायियों ने उन्हें सैयद–उस–शोहदा, सुल्तान–उस–शोहदा, आफताब–ए–शहादत, शहीद बरहक, सालार–ए–आजम, गाजी मुजाहिद–ए–हिंद, बाले बादशाह आदि नाम दिए हैं। भारतीय इतिहास में किसी भी सूफी के इतने उपनाम नहीं मिलते। उनके अनुयायी विभिन्न स्थानों से आज भी दूल्हे की बारात (मेदनी) अलम (झण्डा) निशान और दहेज के पलंग पेढ़ी आदि वस्तुओं के साथ गाते–बजाते मई के महीने में बहराइच जाते हैं। मसूद गाजी हिंदुस्तान के इतिहास में शहादत पाने वाले पहले ऐसे योद्धा थे जो युद्ध करते हुए मारे गए लेकिन उनको प्रसिद्धी एक सूफी के रूप में मिली।

उनके साथी जो भारतीय राजाओं से लड़ते हुए मारे गए उनकी भी मजारें हिंदुस्तान के विभिन्न क्षेत्रों में बनाई गई हैं। मसूद गाजी की अनेक प्रतीकात्मक मजारें उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर बनाई गई हैं। ऐसे ही एक प्रतीकात्मक मजार इलाहाबाद(प्रयागराज) जिले के सिकंदरा में स्थित है। ये मजार कब बनी और किसने बनवायी कोई जानकारी नहीं मिलती। यहाँ पर प्रत्येक रविवार को मेले का आयोजन होता है। इस अवसर पर विभिन्न क्षेत्रों से लोग गाजे–बाजे के साथ निशान लेकर आते हैं और गाजी बाबा की मजार पर चढ़ाते हैं। सिकंदरा में ही प्रत्येक वर्ष मई के महीने में एक भव्य मेले का आयोजन होता है। इस अवसर पर दोमदार के नेतृत्व में कटरा इलाहाबाद स्थित काली माई की थान से लगभग 500 लोगों के साथ एक बारात बहराइच के लिए पैदल निकलती है। इस वर्ष ये बारात 15 मई 2022 को सिकंदरा पहुँची। इस अवसर पर सिकंदरा में बारात का स्वागत् सिकंदरा के तकियादार मोईन अली द्वारा किया गया। सिकंदरा में गाजी बाबा को फातिहा देने के बाद दोमदार अपने साथियों के साथ यहीं रात्रि विश्राम करते हैं। रात्रि प्रवास के दौरान ही यहाँ पर आए हुए लोगों का जत्था दोमदार के माध्यम से बहराइच स्थित गाजी बाबा की मजार के लिए कुछ न कुछ चढ़ावा भेजते हैं। बारात सुबह 4 बजे सिकंदरा से निकलकर सोमवार को सुबह 7 से 8 के बीच मऊआइमा पहुँचती है। मऊआइमा में भी इस अवसर पर एक बड़ा मेला तकिया में लगता है। इसी मेले में बारात कुछ देर ठहरती है। तकिया में ही खादिम नाश्ता तैयार करते हैं। जुलूस के सारे लोग (जिसमें स्त्री–पुरुष दोनों शामिल होते हैं) नहा–धोकर 10 से 11 बजे के बीच यहाँ से आगे के लिए कूच करते हैं। तकिया के इस मेले की ऐतिहासिकता काफी प्राचीन है। यहाँ पर अनेक बुजुर्गों की लाहौरी ईंटों की बनी मजारे आज भी देखी जा सकती हैं। ये मजारें अपनी बनावट के आधार पर तुगलक कालीन प्रतीत होती हैं। उनमें से कई मजारें खण्डित अवस्था में पहुँच चुकीं है।

मऊआइमा में खुशिहाल मस्जिद के पास लेखक 11 बजे पहुँचा तो दोमदार सरफराज से उनके कुछ साथी वहाँ मिले। बाकी उनके कुछ साथी दोमदार से अनुमति लेकर आगे निकल चुके थे। बारात में शामिल झूँसी निवासी 80 वर्षीय श्याम लाल बताते हैं कि मैं बचपन से ही बारात के साथ गाजी बाबा के दर्शन के लिए बहराइच पैदल जाता हूँ। हम लोग अपने–अपने घरों से मार्ग में खर्चे के लिए पैसे लेकर निकलते हैं। मार्ग में कोई कुछ खाने को देता है तो हम लोग उसे स्वीकार कर लेते हैं। जहाँ भी हमारा जत्था ठहरता है भोजन में खिचड़ी का प्रयोग अधिक करते हैं। दोमदार ने बताया कि बारात के साथ कई अलम होते है। जिसमें एक लाल अलम लेकर खादिम आगे चलता है और उसके पीछे भाले में लगा हुआ काला अलम चलता है। पीला और लाल वस्त्र उन्हें पुरखों से मिला है। जिसे पहनकर वह बहराइच तक जाते हैं। प्रतापगढ़ गढ़वारा बाजार होते हुए अमेठी होते हुए गोमती नदी पार करके रुदौली में रात्रि विश्राम के बाद बहराइच में हठीले पीर की मजार पर फातेहा पढ़ते हैं। इसके बाद पीर नसरुल्लाह की मजार पर बारात पहुँचकर फातेहा पढ़ती है। पीर नसरुल्लाह के मजार से निकलकर बारात मसूद गाजी के आस्ताने पर पहुँचती है। हिंदुस्तान के लगभग 52 जिलों से ऐसी बारात मसूद गाजी के अनुयायी बहराइच लेकर आते हैं। अनारकली झील में बाराती स्नान करके ही मसूद गाजी की कब्र पर चादर चढ़ाते और मिन्नतें माँगते हैं।

ऐसे ही गाजी बाबा की याद में बनारस में अलईपुर बड़ी बाजार में आठ दिनों का मेला लगता है। अलईपुर से भी एक बारात बहराइच जाती है। रुदौली से एक बारात दहेज के साथ बहराइच पहुँचती है। बहराइच में दहेज उतारकर उसकी नीलामी की जाती है। नीलामी से प्राप्त धन मजार कमेटी को सौंप दिया जाता है। गाजी मियाँ की प्रतीकात्मक मजारे उत्तर भारत विभिन्न क्षेत्रों में देखी जा सकती हैं। मसूद गाजी के विभिन्न स्थानों पर प्रतीकात्मक मजारों के संबंध हजरत मखदूम शर्फुद्दीन यहया मनेरी के एक शिष्य ने उनसे दरयाफ्त किया कि ''ये क्या कायदा है कि हर शहर में हजरत सैयद सालार मसूद गाजी की लोग कब्र बना लेते हैं।'' हजरत ने उत्तर दिया कि '' अल्लाह ने जो कमालात हजरत सालार को अता किया है। यदि तमाम लोग अपने घरों में मसूद गाजी की मजार बना लें तो उन्हें इसका फायदा मिलेगा।''[27]

संदर्भ ग्रंथ

1. ईलियट एवं डाउसन, भारत का इतिहास, हिंदी अनु०, आगरा, 1974, पृ.373.
2. ईलियट एवं डाउसन, पृ.376.

3. ईलियट एवं डाउसन,पृ.374.
4. ईलियट एवं डाउसन, पृ.376.
5. ईलियट एवं डाउसन, पृ. वही.
6. ईलियट एवं डाउसन, पृ.378.
7. मौलवी मोहम्मद अब्बास खाँ ने हयात–ए–मसूदी में तमाम तथ्यों को ध्यान में रखते हुए काबुलीज को कालिहर माना है जो सत्य प्रतीत होता है।
8. ईलियट एवं डाउसन, पृ.379.
9. ईलियट एवं डाउसन, पृ.380.
10. ईलियट एवं डाउसन, वही.
11. ईलियट एवं डाउसन, पृ. 385.
12. ईलियट एवं डाउसन,पृ. 388.
13. मौलाना सैयद मोहम्मद अबुल हसन शाह मानिकपूरी,आइन–ए–अवध, निजामी प्रेस, कानपुर, 1303 हिजरी पृ.35.
14. ईलियट एवं डाउसन, पृ.391.
15. आइन–ए–अवध,पृ.36
16. इलियट एवं डाउसन,पृ. 393.
17. डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी, प्राचीन भारत, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1962, पृ. 144.
18. इब्नबत्तूता, पृ०213.
19. ईलियट एवं डाउसन, पृ.372 व 373.
20. हयात–ए–मसूदी, पृ.48.
21. मोहम्मद दारा शिकोह, सफीनत–उल–औलिया, प्रकाशन आगरा मदरसा (मूल फारसी) 1853 ई० पृ०275.
22. इब्न खल्दून, उर्दू अनुवाद, जिल्द–13, पृ. 230.
23. डॉ० फुहरर, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,भाग–2, पृ०292.
24. मोहम्मद कासिम हिंदूशाह फरिश्ता,तारीख–ए–फरिश्ता,जिल्द–1,उर्दू अनुवाद अब्दुल हई ख्वाजा, अलमीजान उर्दू बाजार,लाहौर, 2008,पृ. 186.
25. इब्नबत्तूता, सफरनामा इब्नबत्तूता, उर्दू अनुवाद खान बहादुर मौलवी मोहम्मद हुसैन, पाँचवा संस्करण,मतिया महल देहली, 1998 ई० पृ०192.
26. फरिश्ता,पृ. 310.
27. सैयद जफर हुसैन, सुल्तान–उस–शोहदा, बहराइच, 2011,पृ. 92.

लोक साहित्य एक परिचय

डॉ0 विकास कुमार
सम्पादक- शोध
Civil Line, Takiya Road, Sasaram, Rohtas, Bihar

साहित्य के क्षेत्र में दो शब्द प्रचलित है– शिष्ट साहित्य और लोक–साहित्य। लोक–साहित्य लोक–वार्ता का एक महत्त्वपूर्ण अंग है तथा लोक–गीत, लोक–कथाएँ, कथा–गीत, धर्म–गाथाएँ, लोक–नाट्य, नौटंकी, रासलीला आदि लोक साहित्य के अन्तर्गत आते है। शिष्ट साहित्य और परिनिष्ठित साहित्य निश्चित रूप में लिखित साहित्य होता है, जबकि लोक–साहित्य अलिखित एवं लिखित दोनों रूप में उपलब्ध होता है। वैसे तो लोक–साहित्य सामान्यतः मौखिक ही रहा है तथा वह मौखिक परम्परा द्वारा ही अनवरत चलता रहता है, परन्तु अब शिक्षा एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रचार–प्रसार के कारण लोक–साहित्य के रूप में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। आज का लोक कवि जो भी नये साहित्य की रचना करता है, वह सब लिपिबद्ध या लिखित होता है। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य के संकलन एवं संग्रह तथा शोध में प्रगति होने के कारण फलस्वरूप बहुत सा लोक–साहित्य लिपिबद्ध किया जा रहा है तथा उनको ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया जाने लगा है।

लोक साहित्य का जन्म :–

'साहित्य' शब्द के पूर्व 'लोक' अभिधान लगने के बाद उसका अर्थ होगा– लोक का साहित्य। लोक का अर्थ जनता–जनार्दन द्वारा लिया जाता है। इसलिए लोक साहित्य का बोध ऐसे साहित्य से होता है, जिसकी रचना जनता–जनार्दन द्वारा की जाती है। एक विशिष्ट व्यक्ति की रचना न होने का तात्पर्य यही हो सकता है कि जिस साहित्य की रचना एक जनसमूह द्वारा की जाती हो, उसे लोक–साहित्य कहा जाता है। जन–समूह की भी जो भावनाएं– हर्ष, विषाद, भय, प्रेम, शोक आदि होती है उनकी सामूहिक अभिव्यक्ति गीत, कथा आदि के रूप में हुई होगी। किसी एक ने एक पंक्ति की मौखिक रचना की है तो दूसरे ने उसमें भी एक पंक्ति जोड़ दी होगी, तीसरे ने तीसरी पंक्तिरचकर गीत को आगे बढ़ाया होगा। इसी प्रकार परवर्ती पीढ़ियों ने भी इस गीत में संशोधन, परिवर्द्धन किये होंगे और इस प्रकार अनेक लोगों के रचना कौशल के सहयोग से जो साहित्य रचा गया वह साहित्य लोक–साहित्य के अन्तर्गत आती है।

यही काराण है कि लोक–साहित्य की विशेषताओं के रूप में निम्नलिखित बिन्दुओं का उल्लेख उल्लेखनीय है :

* लोक साहित्य की रचना का रचनाकार ज्ञात नहीं होता।लोक–साहित्य मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होता चला जाता है।
* लोक–साहित्य की रचना अनेक रचनाकारों के योगदान द्वारा अस्तित्व में आती है, अर्थात लोक साहित्य लोक–मानस द्वारा रचित होता है।
* लोक के द्वारा, लोक के लिए, लोक का साहित्य ही लोक साहित्य कहलाता है।
* लोक–साहित्य कोई शास्त्र नहीं होता है, अर्थात उसकी रचना के मानादण्ड पूर्व निर्धारित नहीं होते। लोक–साहित्य शास्त्रों के नियमों, बन्धनों को स्वीकार नहीं करता। रचना के छन्द, अलंकार आदि संबंधी कोई नियम नहीं होते।
* लोक–साहित्य निश्चित ही निजी जनपदीय बोली के माध्यम से व्यक्त होती है। इसमें लोक–जीवन और लोक–संस्कृति का झांकी जनपदीय बोली में चित्रित की जाती है।

* लोक–साहित्य में आदि सभ्यता, अर्द्धसभ्यता या असभ्य लोगों या समाजों की भावनाओं उनके असभ्य जीवन, रहन–सहन आदि का प्रभाव आवश्यक होता है।

* लोक–साहित्य में कोई आडम्बर नहीं होता, वरन् वह सहज, सरल और अकृतिम होता है। वह स्वतः स्फूर्त होता हैं

* लोक साहित्य में आदिम सभ्यता, अर्द्धसभ्य तथा असभ्य समाजों की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। इन समाजों से जुड़े रीति–रिवाजों और संस्कारों की झांकी उस समाज की बोली के माध्यम से लोक–गीतों में चित्रित की जाती है।

उपर्युक्त विशेषताओं में सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि लोक–साहित्य का रचनाकार शास्त्रीय सिद्धांतों से परिचित नहीं होता। न तो वह रवावयवों से परिचित होता है और न पिंगलशास्त्र का ही ज्ञाता होता है, तथापि उसकी वाणी के काव्य के वे सभी तत्व विद्यमान होते हैं, जिन्हें शिष्ट साहित्य के रूप में अनुभूति, सहज, अभिव्यक्ति, सरल और अकृतिम तथा शास्त्रीय नियमों के बंधन को नकारते हुए स्वच्छन्द बने रहते है।

लोक–साहित्य की परिभाषा :

लोक–साहित्य की विशेषताओं के आधार पर कोई ऐसी पूर्ण तथा सर्वमान्य परिभाषा विद्वानों द्वारा आज तक नहीं दी जा सकी है, जिसके आधार पर लोक–साहित्य की कोई पहचान स्थापित की जा सके। फिर भी अनेक विद्वानों ने ''लोक साहित्य'' की परिभाषा अपने–अपने दृष्टिकोणों से देने का प्रयास तो किया ही है। पहले हम कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ निम्नक्रम से उद्धृतकर रहे है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में :–''ऐसा मान लिया जा सकता है जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती है, वे ही लोक–साहित्य, लोक–शिल्प, लोक नाट्य, लोक–कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती है।''[1]

उपर्युक्त परिभाषा में यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोकचित्त' शब्द का प्रयोग किया है। लोकचित्त से द्विवेदी जी का आशय परम्परा, प्रस्थित और बौद्धिक विवेचनापरक शास्त्रों और ऊपर की गयी टीका–टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होने वाली जन शक्ति या बुद्धि से है।

डॉ0 सत्येन्द्र के अनुसार – ''लोक–साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें –(क) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों। (ख) परम्परागत मौखित क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और लोक–मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो। (ग) वह कृतित्व हो, किन्तु वह लोक–मानस के सामान्य तत्वों से ऐसे युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।''[2]

डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार– ''लोक–साहित्य लोक–मानस की सहज अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ाता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कहता–सुनता है, उसे समूह की वाणी बनकर और समूह में घुल–मिलकर ही कहता है। संभवतः लोक–साहित्य, लोक–संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब भी होता है। अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल, लोक–साहित्य परिमार्जित भाषा, शास्त्रीय रचना पद्धति और व्याकरणिक नियमों से मुक्त रहता है। लोकभाषा के माध्यम से लोकचिंता की अकृतिम अभिव्यक्ति लोक–साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।''[3]

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार– '' वास्तव में लोक–साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक–समूह अपना मानता है।[4]

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार– '' डॉ0 उपाध्याय ने सुप्रसिद्ध पाश्चात्य लोक–वार्ता–विशारद ग्रिम के नाम का उल्लेख करते हुए 'जनता का, जनता के लिए रचा गया, जनकाव्य कहकर लोक–साहित्य की निम्न परिभाषा निर्धारित करने का प्रयास किया है।

''सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी समाज व्यवस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, हानि–लाभ, सुख–दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस लोक–साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक–साहित्य कहते है। इस प्रकार लोक–साहित्य जनता का वह साहित्य है, जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया है।''[5]

डॉ0 कुन्दनलाल उप्रैती ने निष्कर्ष स्वरूप एक परिभाषा देने का प्रयास किया है, जो इस प्रकार है– ''अतः आदिम मानव के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोक–वार्ता तथा लोक–साहित्य है। हमारे विचार में लोक साहित्य लोक समूह द्वारा स्वीकृत व्यक्ति की परम्परागत मौखिक क्रम से प्राप्त वह वाणी है, जिसमें लोक–मानस संग्रहीत रहता है।''

उपर्युक्त सभी विद्वानों की परिभाषाओं में प्रायः सभी ने एक तथ्य का अवश्य उल्लेख किया है कि इसके रचयिता का पता नही होता। कभी–कभी इस तथ्य का इस रूप में भी उल्लेख किया गया है कि यह लोक–साहित्य, लोक–मानस की कृति होती है। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न अनायास ही उपस्थित होता है, कि क्या लोक–साहित्य के अन्तर्गत सम्मिलित होने वाली सभी रचनाएँ एक व्यक्ति द्वारा रचित नहीं होती? क्या लोक ही उनका रचयिता होता है? इस सम्बन्ध में लोक–साहित्य की रचना प्रक्रिया पर स्पष्ट रूप से विचार किया जाना चाहिए।

लोक–साहित्य वह रचना अथवा अभिव्यक्ति है जिसका रचनाकार ज्ञात नहीं होता, जो मौखिक परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरन्तर चलती जाती है, जो किसी जनपद के लोक–जीवन और लोक–संस्कृति की अभिव्यक्ति जनपदीय बोली के माध्यम से करती है, जिसे किसी शास्त्री सिद्धांतों का बंधन स्वीकार्य नहीं होता और सहज, स्वतः स्फूर्त जनमानस की अनुभूतियों को व्यक्त करती है। इसी अर्थ में किसी भाषा के शिष्ट या परिनिष्ठित साहित्य से वह भिन्न होती है, क्योंकि शिष्ट साहित्य की रचना लिखित रूप में, पृथक रूप वाली, लिखित या प्रकाशित कृति होती है और उसका रचनाकार ज्ञात होता है तथा उसकी वैयक्तिक अनुभूति का ही उसमें अभिव्यंजन होता है।

लोक–साहित्य की संस्कृति :–

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक–पृथक धाराएँ प्रवाहित हो रही थी। वे दो धाराएँ निम्न है–

(1) शिष्ट–संस्कृति (2) लोक–संस्कृति।

शिष्ट संस्कृति से हमारी तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो कि बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था, जो अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी और पथ–प्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था। यहाँ लोक–संस्कृति से अभिप्राय जन–साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्सभूमि जनता थी और बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी। यदि ऋग्वेद तथ अर्थवेद का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाये तो यह पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है।

लोक–संस्कृति के विषय में प्रो0 बलदेव उपाध्याय के विचार इस प्रकार है–लोक–संस्कृति, शिष्ट साहित्य संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया–कलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से 'अर्थवेद' ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहिताएं दोनों विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायिकाएँ है।

अथर्ववेद लोक–संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जन–जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्टा जन–जीवन है।[6]

वर्तमान समय में लोक–संस्कृति के प्रति हमारी जो अवधारणा है वही पीछे लौटने पर लोक–वार्ता है। डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय 'लोक–वार्ता' से अधिक उपुर्यक्त शब्द लोक–साहित्य को मानते हैं। उसका तर्क है कि लोक–संस्कृति एक चिर–परिचित शब्द है। इसके उच्चारण मात्र के जनजीवन का चित्र, उसकी संस्कृति की झांकी हमारी आंखों के सामने उपस्थित हो जाती है। जब वह शब्द विद्यमान है और हमारे रक्त का अंग बना हुआ है, तब फिर अन्य शब्दों की क्या आवश्यकता रह जाती है? डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय के तर्को से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि 'लोक–संस्कृति' शब्द लोक–वार्ता के

बहुत निकट है। परन्तु इसे लोक–वार्ता का स्थानापन्न स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि शिष्ट और अशिष्ट में जो अंतर है, वही अन्तर लोक–साहित्य और लोक–वार्ता के बीच है। अतः लोक–संस्कृति शब्द को फॉकलोर शब्द का पर्याय मानकर ही इसके क्षेत्र का विवेचना करेंगे। डॉ0 उपाध्याय ने लोक–संस्कृति शब्द को ग्रहण करने के भी कुछ तर्क दिये है, जिसमें पहला तर्क है लोक–संस्कृति शब्द की व्यापकता, दूसरा तर्क है कि चिर–परिचितता और तीसरा तर्क है डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा समर्पित किये जाने का।''

परिणामतः लोक–साहित्य में छन्द रचना के नियमों का निर्वाह नहीं किया जाता है तुकान्त का ठीक से पालन नहीं किया जाता है। जो भी अलंकार आते है, वे सभी सहज, स्वाभाविक और आयाम होते है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोक–साहित्य सहज, सरल, स्वच्छन्द का नाम है, जो किसी प्रकार के शास्त्री नियमों का बंधन स्वीकार नहीं करता और अनंगढ़, अकृतिम तथा कलात्मक अभिव्यक्ति से कोसों दूर रहता है।

लोक–साहित्य का क्षेत्र :–

लोक–साहित्य का क्षेत्र व्यापक है। लोक साहित्य के विद्वानों का मत है कि जहाँ–जहाँ लोक है, वहीं–वहीं लोक साहित्य भी उपलब्ध होता है। आदिम जीवन का तो लोक–साहित्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि यह कहा जाये कि आदिम जीवन लोक–साहित्य का संस्कार विधाता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पूर्ण सभ्य, संस्कृति जातियों के जीवन में संस्कारों को सम्पन्न करने में जो भूमिका वैदिक मंत्रों की की होती है, आदिम जातियों के लोक–गीतों की भी वही भूमिका होती है। वास्तव में लोक जीवन के लिए लोक–गीत ही वैदिक मंत्र है। जन्म से लेकर विवाह, मरण आदि तक के विविध अवसरों पर लोकगीत गाने की परम्परा है। सम्पूर्ण वर्ष सभी ऋतुओं में, जीवन के विविध क्रिया–कलापों के अवसर पर लोक–गीतों के गाने की परम्परा है, इसी प्रकार बाल्यकाल से ही दादी–नानी की कहानियों से लेकर व्रतों, त्यौहारों, पर्वो, उत्सवों, मेलों, तीर्थो, धार्मिक, सामाजिक क्रिया–कलापों के अवसर पर लोक–गीतों को गाया जाता है। तात्पर्य यह है कि लोक–जीवन का प्रत्येक क्षण लोक–साहित्य से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध रहता है। जिस प्रकार मनुष्य का जीवन बहुआयामी है, उसी प्रकार लोक–साहित्य का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। इस सम्बन्ध में डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय का निम्नांकित कथन उद्धृत करना उपयुक्त होगा– ''लोक–साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोडश संस्कारों के विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया हैं, प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं, कि बहुत प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने की प्रथा प्रचलित है।

विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है उसका प्रभाव जनसाधारण के ह्रदय पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः वाह्य जगत में इस परिवर्तन को देखकर ह्रदय में जो उल्लास या आनन्द की अनुभूति होती है, वह लोकगीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बुआई, निराई, गुणाई आदि के समय भी गीत गाये जाते है। जनता अपने पूर्व महापुरूषों के शौर्यपूर्ण कार्यो को गा–गाकर आनन्द प्राप्त करती है। उसका यशोगान कर श्रोताओं के ह्रदय में वीर–रस का संचार करती है। ये गीत लोक–गाथाओं की कोटि में रखे जा सकते है।[7]

इस प्रकार हम देखते है कि लोक–साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री, पुरूष, बच्चे, जवान तथा बुढ़े सभी लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है।

लोक–साहित्य के विषय क्षेत्र में सारा लोक–जीवन, लोक–संस्कृति और लोक–परम्परा प्रथाओं का संसार समा जाता है। इसलिए इसका विषय–क्षेत्र बहुत ही व्यापक है और कोटि–कोटि जन–समुदाय तक लोक–साहित्य का प्रचार–प्रसार होता है। लोक साहित्य का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक, भाषाशास्त्रीय जैसे सभी विषय समाविष्ट रहते है।

लोक–साहित्य में भौगोलिक एवं आर्थिक दशा का चित्रण उपलब्ध होता है। लोक साहित्य के उल्लेखों से आर्थिक भूगोल का भी पता चलता है। लोक–गीतों और लोक–कथाओं में प्रयुक्त शब्द तत्कालीन समाज की अर्थव्यवस्था का ज्ञान कराते है।

लोक साहित्य में सामाजिक वर्णन अधिक दृष्टिगत होता है। समाज के अध्ययन की बहुमूल्य सामाग्री लोक साहित्य में मिलती है। लोक–गीतों एवं कथाओं में मनुष्यों के रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान, रीति–रिवाज, आदि का सच्चा चित्रण देखने को मिलता है। 'कैरियर हालविन' ने लोक साहित्य के क्षेत्र का उल्लेख करते हुए लिखा है कि– ''लोक साहित्य मानवशास्त्र के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री प्रदान करता है।

उपर्युक्त सभी वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि लोक साहित्य का ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप है। उसके क्षेत्र की व्यापकता को नकारा नहीं जा सकता।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. विचार और वितर्क– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 206।
2. लोक साहित्य विज्ञान–सं0 डॉ0 सत्येन्द्र, पृ0 4–5।
3. हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक–तत्व– डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर, पृ0 5।
4. हिन्दी साहित्य कोश–ज्ञान मण्डल काशी।
5. लोक साहित्य की भूमिका– डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 25।
6. समाज–काशी विद्यापीठ, वर्ष–4, अंक–3, पृ0 446।
7. लोक साहित्य की भूमिका– डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 23–24

Vol. XVI, [Issue No. 1, 2 & 3 combined], Jan.– Dec. 2019, ISSN: 0970-1745

महिला सशक्तिकरण एवं कामकाजी महिलाएँ

डॉ0 अर्चना गोस्वामी

किसी समाज एवं सभ्यता की आत्मा को समझने एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने का सर्वोत्तम आधार उसमें स्त्रियों की दशा का अध्ययन करना है। स्त्रियों की दशा किसी देश की संस्कृति का मानदण्ड मानी जाती है। समुदाय का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक आधार रखता है। किसी भी दशा के समग्र विकास के लिए महिला एवं पुरुष दोनों का समान गति एवं निर्वाध रूप से उन्नति के पथ पर अग्रसर होना आवश्यक है। महिलाओं की कार्यक्षमता किसी भी मायने में पुरुषों से कम नहीं है। एक संस्कारिक परिवार, एक सभ्य समाज तथा एक सबल राष्ट्र के निर्माण में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है लेकिन ये सारी बातें इस तथ्य पर निर्भर है कि समाज में उसकी स्थिति कैसी है?

भारतवर्ष में नारी को शक्ति मानने की परंपरा रही है त्रेता युग में जगत नियंता शिव भी नारी के अभाव में जड़ बने रहते हैं। राम की रावण पर विजय भी शक्ति पूजा से सम्भव हो पायी थी। 'यत्र नार्यस्त पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' की परंपरा प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। ऋग्वेद में महिलाओं ने कई मंत्रों एवं ऋचाओं की रचना की थी। विश्ववारा को ब्रह्मवादिनी एवं मंत्रदृष्टी कहा जाता है। घोषा, लोपा मुद्रा, शाश्वती, अपाला, इंद्राणी आदि विदुषी महिलाओं के नाम हैं। उपनिषद काल में मैत्रेयी, गार्गी, अत्रेयी को दार्शनिकों की श्रेणी में गिना जाता है। गार्गी ने उस समय के प्रख्यात दार्शनिक याज्ञवल्क्य से राजा जनक की सभा में गूढ़ दार्शनिक प्रश्नों पर वाद–विवाद किया था, अनेक शिक्षित महिलाओं ने अध्यापन का कार्य किया था। मध्यकाल में रजिया सुल्ताना ने रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था के बीच शासन के शीर्ष पद को सुशोभित किया। उसने सुल्तान का पद धारण कर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया था। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। सरोजनी नायडू, मीरा बेन, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित, अरूणा आसफ अली खान ने आजादी प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

आजादी के उपरांत स्त्रियों में क्रांतिकारी बदलाव आया। राष्ट्रीय नेताओं ने इस बात पर बल दिया कि जब तक महिलाओं का विकास एवं उत्थान नहीं हो जायेगा तब तक उनको पुरुषों के समान अधिकारों की प्राप्ति नहीं होगी, तथा भारत का पूर्णरूपेण विकास संभव नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद–15 में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि जाति लिंग के आधार पर राज्य किसी नागरिक से भेदभाव नहीं करेगा। फलतः स्त्रियों ने वे सभी राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति की है जो पहले केवल पुरुषों को प्राप्त थे। 1990 के दशक के प्रारम्भ में विदेशी ऋणों के भुगतान में देरी से बचने के लिए भारत ने संरचनात्मक समायोजन का रास्ता अपनाया। इसी कारण आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया ने गति पकड़ी इन सुधारों के कारण अर्थव्यवस्था में खुलापन आया और सामाजिक परिवर्तन की गति तेजी से बढ़ी। मानव संसाधन की कुशलता का दौर आया तथा शिक्षा के बढ़ते प्रसार और नई आर्थिक सामाजिक प्रवृत्तियों के चलते बड़े पैमाने पर महिलाएँ कार्य करने घर से बाहर निकलीं। भारत में कामकाजी महिलाओं का निरंतर बढ़ रहा है। छोटे कस्बे से लेकर गाँवों तक में महिला आर्थिक सशक्तिकरण की पहल अपना रंग दिखा रही है लेकिन इसके बावजूद महिलाओं की वर्तमान स्थिति में उस सीमा तक परिवर्तन नहीं आया है जहाँ तक अपेक्षा या आवश्यकता है।

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति बड़ी अस्पष्ट है हमारे पवित्र ग्रंथों में उसे देवी से लेकर दासी तक का स्थान दिया गया है। वहीं अबला और निःशक्त की संज्ञा देकर उसका अपमान एवं दमन भी किया है। आज भी बड़े पदों से लेकर गृहिणी महिलाओं तक को घरेलू तथा सार्वजनिक जीवन में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से हिंसा, अत्याचार और अपमान सहन करना पड़ता है। भारत में कामकाजी महिलाओं की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। आधुनिक जीवन शैली ने उनपर अनेक अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ लाद दी है। भारत का सामाजिक ढाँचा आर्थिक और तकनीकी परिवर्तन के

कारण तेजी से नहीं बदल पा रहा है। परंपरा और संस्कृति की दुहाई देकर उनपर आज भी समाज के रूढ़िवादी तत्त्वों द्वारा अनेक गैर–जरूरी वर्जनाएँ आरोपित की जा रही हैं। महिलाओं को घर से बाहर निकलने के दौरान बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम तो महिलाओं के संदर्भ में सुरक्षा संबंधी विसंगतियाँ देखने को मिलती है। सरसरी दृष्टि से देखने पर प्रतीत हो रहा है कि परंपरा में महिलाओं ने अपने सुरक्षा की कीमत अपनी आजादी से चुकायी और आधुनिक समाज में अपनी आजादी की कीमत सुरक्षा से चुका रही हैं। आर्थिक विकास के नित नये प्रतिमान बनाते भारत के महानगर महिला सुरक्षा की दृष्टि से असुरक्षित हैं।

विकास की अंधी दौड़ में महिला सुरक्षा से संबंधित पहलुओं को बुरी तरह नजरअंदाज किया गया जिससे महिला कामगारों का बड़ा वर्ग बुरी तरह आक्रान्त रहा। कार्यालय में महिलाओं की सुरक्षा पर सिर्फ 3 प्रतिशत महिलाएँ ध्यान देती हैं। चौंकाने वाली बात यह है कि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को लेकर बड़े कानून के बारे में मुम्बई में ज्यादातर कामकाजी महिलाओं को जानकारी नहीं है। एक कम्पनी द्वारा किये गये सर्वे में इस बात का खुलासा हुआ है। इस सर्वे में दक्षिण मुम्बई के 449 ऐसे संस्थानों की महिलाओं की बात कही गयी जहाँ 10 से अधिक लोग काम करते हैं। सर्वे में पता चला कि 386 यानि 86 प्रतिशत संस्थानों को केन्द्र सरकार के यौन–उत्पीड़न रोकथाम, निषेध एवं निवारण अधिनियम 2013 के बारे में पता ही नहीं है। 49 संस्थानों को इस कानून की जानकारी है लेकिन वे उस पर अमल नहीं करते। ऐसे ही एक मामले में प्राइवेट कम्पनी पर सितम्बर 2014 में 1.68 करोड़ रुपये का जुर्माना मद्रास उच्च न्यायालय ने लगाया था। इसके बावजूद देश के ज्यादातर प्राइवेट संस्थान कानून के प्रावधानों को लागू नहीं करते। दक्षिण मुम्बई में हुए इस सर्वे की रिपोर्ट महिलाओं की सुरक्षा को लेकर चिंताजनक पहलुओं को उजागर करती है यही स्थिति लगभग सभी जगह है।

यहाँ दो महत्वपूर्ण प्रश्न उभर कर सामने आते हैं पहला प्रश्न यह है कि क्यों कामकाजी महिलाओं को अपने सुरक्षा के प्रति मिले अधिकारों की जानकारी नहीं है? और दूसरा प्रश्न यह है कि गैर–सरकारी संस्थान यौन उत्पीड़न अधिनियम 2013 का पालन क्यों नहीं करते? दोनों प्रश्नों का उत्तर है कामकाजी महिलाओं में अस्थायी जागरूकता। जब देश के किसी कोने में यौन उत्पीड़न की घटनाएँ घटित होती है तो कामकाजी महिलाएँ अपने अधिकारों तथा सुरक्षा के प्रति चिंतित होती हैं और निजी संस्थान यौन उत्पीड़न कानून को लागू करने की औपचारिक घोषणाएँ भी करते हैं परन्तु कुछ वक्त व्यतीत होने के बाद जागरूकता शांत हो जाती है। केन्द्र सरकार ने 2013 के कानून में न केवल महिलाओं के उत्पीड़न रोकने की बात की है बल्कि इसके साथ ही महिलाओं के साथ उचित सम्मान, विनम्रता और गरिमा के साथ पेश आने की बात कही गयी। इसमें कहा गया है कि भारत का संविधान धर्म, नस्ल जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करनेके साथ ही हर व्यक्ति को समानता का अधिकार देता है। इस अधिकार के तहत महिलाओं के लिए कार्यस्थलों पर अनुकूल और हर प्रकार से सुरक्षित माहौल उपलब्ध कराना भी शामिल है। कार्यस्थल पर महिलाओं का उत्पीड़न एक चिंता का विषय है।

सूचना प्रौद्योगिकी और आउटसोर्सिंग उद्योग की 6 सौ महिला कर्मचारियों के बीच हुए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि उनमें से 88 प्रतिशत को कार्यस्थल पर किसी न किसी प्रकार के यौन उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। अहमदाबाद वूमेन एक्शन ग्रुप द्वारा किये गये सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि 40 प्रतिशत महिलाओं को उनके कार्यस्थल पर मौखिक, मानसिक, शारीरिक यौन शोषण का शिकार होना पड़ता है। किस हद तक उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाई जाती है उनके अन्दर सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ–साथ यह भी घर किये हुए है कि विरोध करने की स्थिति में उन्हें नुकसान पहुँचाया जाता है या नौकरी से निकाला जा सकता है। सबसे कठिन अपने ऊपर लगे आरोप को सिद्ध करना एक चुनौती है। इस तरह से कामकाजी महिलाओं की सबसे बड़ी चुनौती उनके सुरक्षा संबंध प्रश्न हैं। NCRB के आँकड़ों के अनुसार महिला शीलभंग तेजी से बढ़ता अपराध है।

महिलाओं की त्रासदी है कि उनकी भूमिका को हमेशा जरूरतों को ध्यान में रखकर पुरुष या सामाजिक व्यवस्था द्वारा तय किया जाता है। कामकाजी महिला की दूसरी बड़ी समस्या है दोहरी जिम्मेदारियों का बोझ। महिलाओं पर आर्थिक सक्षमता का उत्तरदायित्व बढ़ा देने के बावजूद उनकी भूमिका में कोई काट–छाँट नहीं की। एक आकलन के अनुसार महिला सप्ताह में 77 घण्टे कार्य करती

है जबकि पुरुष मात्र 40 घण्टे, परन्तु फिर भी महिलाओं के कार्य को उत्पादक नहीं माना जाता है। एक चिकित्सकीय सर्वे में यह तथ्य उभरकर आया कि भारतीय कामकाजी महिलाओं में उक्त रक्तचाप, हाइपरटेंशन, पीठ दर्द जैसी अनेक समस्याएँ तीव्रता से बढ़ रही हैं।

समाज का परंपरागत ढाँचा महिलाओं पर बढ़ते दबाव को कम करने की दिशा में अग्रसर होता नहीं दीख रहा है। महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा संसाधन भी कम मिलते हैं जिससे उनकी गुणवत्ता और कुशलता पूरी तरह प्रभावित होती है। भारत का सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य कामकाजी महिलाओं को उचित व्यावसायिक वातावरण नहीं प्रदान करता है जहाँ समाज कामकाजी महिलाओं पर पारंपरिक दायित्वों का दबाव निर्मित करता है वहीं सार्वजनिक निजी–प्रतिष्ठानों में महिला सुरक्षा और आत्मसम्मान से जुड़ी प्रणाली का अभाव है। संस्थानों में बच्चों से जुड़ी उच्चस्तरीय (क्रेच) शिशु गृहों का भी अभाव होता है।

आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं को उपलब्ध रोजगारों में आमतौर पर उसे सहायक श्रेणी के रोजगार मिलते हैं तथा निर्णय क्षमतायुक्त कार्य प्रायः नहीं मिलते हैं। लगभग आधी आबादी होने के बावजूद महिलाओं की निर्णायक संस्थाओं में भागीदारी 10 प्रतिशत से अधिक नहीं है। संसद, केन्द्रीय मण्डल, प्रशासकीय सेवा, उच्च न्यायालय तथा ट्रेड यूनियनों में महिला भागीदारी 10 प्रतिशत से कम है। U.N. Womenकी रिपोर्ट के अनुसार भारत के असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत करोड़ों महिलाएँ बड़ी ही व्यापक गरीबी, अन्याय और हिंसा की शिकार हैं। असुरक्षित किस्म के रोजगार में कार्यरत महिलाएँ किसी बीमा या आर्थिक सुरक्षा से वंचित हैं उन्हें पुरुषों से 30 प्रतिशत कम वेतन मिलता है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि महिलाओं की संतानों की देखरेख नहीं हो पाती है। महिलाओं को देश के आर्थिक विकास में सहायक बनाने और राष्ट्रीय आय में उनकी भागीदारी में वृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य है कि आधारभूत संरचना में सुधार के साथ कानून व्यवस्था की स्थिति दुरूस्त हो।

संकीर्णता में लिपटी इस विचारधारा को धक्का तब लगा जब 1977 में उच्चतम न्यायालय ने विशाखा एवं अन्य द्वारा राजस्थान राज्य एवं अन्य के विरुद्ध दायर याचिका में अपना सर्वाधिक निर्णय दिया तथा यौन उत्पीड़न रोकने के लिए कुछ महत्वपूर्ण दिशा निर्देश दिया। उनके अनुसार भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के निर्देशों का क्रियान्वयन किया जाए। इसी परिप्रेक्ष्य में श्रम मंत्रालय ने विभिन्न राज्य सरकारों को सूचित किया कि वे कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकें महिला सशक्तिकरण में बने कानूनों में यह मील का पत्थर बना। आवश्यक है कि देश की हर निजी एवं सरकारी संस्था में कार्यरत महिलाओं के निमित्त बने कार्यशालाओं का आयोजन किया जाए और निजी संस्थाओं का लाइसेन्स देते समय व्यवस्था की जाए कि यौन उत्पीड़न अधिनियम 2013 का पालन हो क्योंकि जब प्रश्न देश की आधी आबादी का हो तो कानून के निर्वहन के लिए प्रशासन को कठोरता बरतनी होगी।

कामकाजी महिलाओं के सुरक्षा के लिए ये उपाय हो सकते हैं–

1. कामकाजी महिलाओं के विरुद्ध होने वाली आतंकवादी गतिविधियों जैसे– सार्वजनिक स्थान पर हमला, बलात्कार, उन पर तेजाब फेंकना, निर्वाचित सदस्यों के साथ अश्लील बर्ताव, आफिस में बुरा व्यवहार इन अत्याचारों के खिलाफ बने कड़े कानूनों का सही ढंग से क्रियान्वयन किया जाए।
2. पुलिस प्रशासन में महिलाओं की अधिकाधिक भागीदारी होनी चाहिए। क्राइम अगेन्स्ट वुमेन सेल का गठन किया जाना चाहिए।
3. महिला हिंसा से संबंधित मामलों का निपटारा तुरन्त किया जाना चाहिए। इस हेतु विशेष अदालत की जरूरत है। महिला जाँच ब्यूरो जैसे विभाग की स्थापना की जानी चाहिए।
4. पीड़ितों की सुरक्षा, मदद और सलाह की आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी चाहिए।
5. महिलाएँ जो शोषण की शिकार है की सहायता के लिए औपचारिक अदालतों की स्थापना भी एक उपाय हो सकता है।
6. ऐसे संगठनों का प्रचार होना चाहिए जो महिलाओं को निःशुल्क कानूनी सहायता दें।

7. महिलाओं के बारे में हेल्पलाइन तथा महिला आयोग की सरल पहुँच सुनिश्चित की जानी चाहिए।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को लेकर केन्द्र सरकार सख्त है। यौन उत्पीड़न के मामलों में किसी फरियादी को तीन महीने का वैतनिक अवकाश मिलेगा और उसे या आरोपी सरकारी कर्मचारी को जाँच के दौरान दूसरे विभाग में स्थानान्तरित किया जा सकता है।

इस तरह से कामकाजी महिलाओं की सुरक्षा अनिवार्य है। महिलाओं की सुरक्षा के लिए कई कानून बनाये जा सकते हैं। इसके बावजूद इस दिशा में बहुत कुछ करना है केवल कानून बना देने से उसे आजादी नहीं मिल सकती। इसके लिए हमें अपनी मूल मानसिकता तथा सामाजिक मूल्यों को फिर से स्थापित करना होगा। साथ ही समाज के आचार, विचार और व्यवहार का आदर्श साबित करना होगा। महिलाओं से संबंधित निलंबित योजनाओं को लागू करने में सरकार के दृढ़ इच्छाशक्ति की जरूरत है। महिलाओं को अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित करना होगा उन्हें रूढ़िगत समाज में परिवर्तन लाना होगा। उन्हें दहलीज से बाहर निकलना होगा तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों का सामना करना होगा। उन्हें एक नई दुनिया का निर्माण करना होगा।

संदर्भ सूची :

1. डॉ0 वीना गर्ग, 'भारतीय महिलाएँ एक विश्लेषण', आर्या पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011
2. डॉ0 निशांत सिंह, 'सामाजिक सुरक्षा और महिलाएँ', खुशी पब्लिकेशन, गाजियाबाद, 2011
3. राम आहूजा, 'सामाजिक समस्याएँ', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011
4. सुबाष चन्द्र गुप्ता, 'अल्का सक्सेना पारिवारिक प्रताड़ना एवं महिलाएँ' राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
5. आशा कौशिक, 'महिला अधिकारों का प्रश्न : भारतीय संदर्भ राज्य शास्त्र समीक्षा', रा0वि0 विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, 2004
6. सुभाष शर्मा, 'भारतीय महिलाओं की दशा', आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2006
7. आर्य साधना, मेनन निवेदिता एवं लोकनीता जिनी, 'नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन अकादमी, दिल्ली, 2001
8. समसामयिक घटना चक्र अतिरिक्त्यांक बाते निबन्ध की भाग 5, इलाहाबाद, 2014
9. कुरुक्षेत्र संपादक दीपिका कच्छल, मार्च 2015
10. दैनिक जागरण, 8 मार्च 2015
11. हिन्दुस्तान, 8 मार्च 2015

Universal Declaration of Human Rights: An Analytical study

Dr. Neeru Varshney
Assistant Professor
Department of English
S. V. College, Aligarh (U.P.)

Abstract

The Universal Declaration of Human Rights, which was signed in 1945, is not a treaty and is not a legally enforceable international instrument. It is merely a declaration of the fundamental concepts underlying inalienable human rights. The establishment of a universal benchmark for the accomplishment of human rights, and the ability of each Member State to take actions to promote respect for these rights and freedoms by adopting the standards into their own legal systems in order to comply with the benchmark In addition to the preamble, the Declaration is made up of thirty articles that address various aspects of human rights and fundamental freedoms. These are rights and freedoms to which all men and women, no matter where they live in the world, are entitled without any form of discrimination based on their gender.

Introduction

The preamble of the Universal Declaration of Human Rights, which was written in 1948, acknowledges the inherent dignity of the individual as well as the equal and inalienable rights of all members of the human family.[1] The fundamental principle articulated in the declaration, which proclaims that all human beings are born free and equal in dignity and rights and that everyone is entitled to all of the rights and freedoms set forth in the declaration without any distinction of any kind, including distinctions based on sex. This basic principle proclaims that all human beings are born free and equal in dignity and rights and that everyone is entitled to all of the rights and freedoms set forth in the declaration.[2]Everyone has the same standing before the law and should receive the same protection from it without any kind of prejudice. An individual should not be subjected to arbitrary interference with his privacy, family, home, or correspondence, nor shall he or she be subjected to an attack upon his or her honor or reputation.[3] Everyone has the right to the protection of the law against interference from other people or attacks. The Declaration includes a clause that states, "As a guarantee against factors affecting human dignity, all forms of violence such as domestic violence, sexual violence, rape, and violence both within and outside the family that affects honor and reputation are included." This provision is intended to protect women from being subjected to sex-based discrimination and from being subjected to violence both within and outside of the family. This is due to the fact that women are frequently subjected to both of these types of situations.[4]Another generally accepted norm that serves to defend women's rights is the freedom to marry and start a family without any restrictions based on factors like as one's ethnicity, nationality, or religion. It is common practice to deny women the ability to pick their partner. This denial of their rights endures throughout the entirety of their marriage, from the beginning to the end, even when it has ended. Quite frequently, the consent of women to marriage is disregarded, and she is either obliged or forced to wed in accordance with the decision of her parents or guardians.

The Universal Declaration of Human Rights specifies that a person must have reached the age of majority and be able to provide their free agreement in order to be eligible for marriage. There is no provision in the declaration that r[5]

The intrinsic right of every human being is acknowledged to include both the right to work and the right to equal remuneration for equal work, free from any consideration of sex discrimination. ' The right to equal pay for equal work without discrimination based on gender implies that men and women have the same right to employment, that they should be treated equally in regard to work of equal value, and that they should be treated equally in regard to the evaluation and quality of their work.There will be no discrimination on the basis of sexual orientation, particularly in the areas of marriage and motherhood. The declaration also includes clauses that ensure the right to a quality of living that is adequate for a person's health and well-being, as well as the well-being of his family, and that includes the facilities necessary to live with human dignity.It encompasses things like food, clothing, a place to live, medical treatment, necessary social juices, and the right to security in the event of things like unemployment, disease, disability, widowhood, old age, and other such things. In accordance with the Declaration, motherhood and childhood are to be afforded the highest possible level of special care and protection. The protection of civil and political rights is the focus of Articles 2 through 21.[6] They include the rights to life, liberty, and security of one's person; freedom from slavery or servitude; a prohibition against torture, inhumane or degrading treatment or punishment; recognition as a person before the law; equality before the law and equal protection under the law without any discrimination; effective remedy before national tribunals; freedom from arbitrary arrest, detention, or exile; and the right to a fair and public hearing by an independent and impartial tribunal.

The Declaration of Human Rights addresses economic, social, and cultural rights in articles 22 through 27. These rights include the right to social security, the right to work and the freedom to choose one's place of employment, the right to rest and leisure, the right to a standard of living that is adequate for one's own health and the health of his family, the right to education, the right to participate in cultural life, and the right to a good social and international order.

The Universal Declaration of Human Rights, which was drafted in 1945, did not include any mechanisms for its implementation. As a result, the General Assembly came to the conclusion that it should adopt two Covenants together with the apparatus necessary for their enforcement. As a result, in 1966, the United Nations General Assembly ratified the International Covenant on Economic, Social, and Cultural Rights as well as the International Covenant on Civil and Political Rights.[7] Individuals now have the ability to take legal action against those who violate their human rights thanks to the Optional Protocol to the Covenant on Civil and Political Rights. In a democratic society, the individual rights that are granted to people as a result of the Declaration of Independence are supposed to be subject to the norms of public order, public morality, and general benefit. Inalienable, universal, indivisible, interdependent, and interrelated are some of the characteristics of the rights that are acknowledged in the declaration. The United Nations has drawn inspiration for their varied courses of action from the Universal Declaration of Human Rights, which was published in 1948. A variety of international conventions, national constitutions, pieces of domestic legislation, and decisions of domestic courts have been influenced by the provisions.

InternationalCovenantonCivilandPoliticalRights,1966

The International Covenant on Civil and Political Rights is comprised of a total of 53 articles and may be broken down into six distinct sections[8] The first three parts, "Parts I, II, and III," deal with numerous freedoms, while the remaining parts deal with the procedure that must be

followed in order to effectively realize these rights.The right of the people to exercise their own self-determination is the primary topic covered in Part I. In Part II, the State Parties are obligated to take the necessary steps to incorporate the provisions of the Covenant into their domestic laws and to adopt such legislative or other measures to give effect to the rights recognized in the Covenant. These obligations are imposed on the State Parties by the International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR). It is the responsibility of the State Parties to ensure that men and women have equal rights in the enjoyment of all civil and political rights.The third section discusses the precise rights that individuals have as well as the obligations that the state parties have. The natural and unalienable rights of women are acknowledged not only in the preamble of the Covenant but also in other provisions of the document.[9] In addition to this, it foresees the promotion and protection of equal rights for men and women. Only until individuals and states alike acknowledge the need of protecting the rights of others will there be any chance of preserving global peace.It is a requirement of the Covenant that the State Parties take the necessary actions to ensure that the rights guaranteed by the Covenant are accessible to all individuals without regard to their gender. In addition to prohibiting discrimination on the basis of race, caste, religion, and place of birth, it also forbade discrimination on the basis of a person's sexual orientation. All people are equal before the law and are entitled to equal protection of the law without discrimination on any ground such as race, color, sex, language, political or other opinion, national or social origin, property, birth or other status. These rights are available to men and women in equal measure.Part III of the Covenant deals with the specific rights of the individuals and the obligation of the State Parties.[10] They are right to life, freedom from inhuman and degrading treatment," freedom from slavery, servitude and forced labour,' right to liberty and security, right to be treated with humanity, freedom from imprisonment for inability to fulfill contractual obligation, freedom of movement and to choose his residence, freedom of aliens from arbitary expulsion , right to fair trial non-retroactive application of criminal law, right to recognition as a person before the law," right to privacy, family, home or correspondence," freedom of thought, conscience and religion, freedom of opinion and expression,' prohibition of propaganda of war, right to peaceful assembly, freedom of association, rights of the child, right to take part in the conduct of public affairs, to vote and to be elected, equality before the law and rights of minorities. etc.

Privateers and family protection are necessary for the right to live a decent life. These rights must be protected by law if they are ever attacked or interfered with. Women have greater privacy rights than males do. She has a right to protect her privacy as well as her family, marriage, motherhood, and other personal freedoms. The Covenant requires the State Parties to integrate these standards into their domestic law so that people can live in dignity free from sexual and domestic violence.The family is regarded as the basic and natural unit of society and is deserving of preservation. The Covenant also recognizes the right to marry and create a family, as well as their protection. It also acknowledged the attainment of majority and free consent as prerequisites for marriage. Thus, the Covenant impliedly forbade marriages of minors. Women also received recognition for their equal nationality rights.Articles 28 to 45 of Part IV discuss the methods used to put civil and political rights into practice. Under Article 28, the Human Rights Committee was established. The constitution and operation of the committee are covered in Articles 29 through 40. The mechanisms envisioned by the Covenant for implementation are listed below

Reporting Procedure States are required by Part I of Article 40 of the International Covenant on Civil and Political Rights of 1966 to report to the Secretary General, who then forwarded the report to the Human Rights Committee, on the steps they have taken to implement the rights granted by the Covenant. The first section of the report must include information about

human rights violations, and the second section must include any restrictions, limitations, or other actions the State has put in place to prevent the enjoyment of those rights. By using this mechanism, the committee can actually evaluate and monitor the human rights problems in a particular country if the state provides a fair and truthful report.

Inter State Communication System A State Party may accuse another State Party of violating the treaty by using the mechanisms set forth in Article 41 of the instrument. If a State Party believes that another state is not upholding the Covenant's requirements, that State may be informed in writing of the situation. The receiving State may provide additional information about the domestic process or remedies used in that case within three months. After giving notice to the committee and the State, either State has the power to refer the case to the human rights committee if it cannot be resolved to the satisfaction of both States within six months. Except in situations where using domestic law resulted in an undue delay in making a decision, the committee won't take up the issue until it is convinced that all other options have been exhausted. After providing the parties with chances, the committee will attempt to settle the dispute amicably while upholding the fundamental liberties and human rights enshrined in the Covenant. If a peaceful resolution is possible, the committee must provide a report outlining the facts and any agreements made. The report must be shared with the State Parties involved If an amicable resolution cannot be reached, the committee may request pertinent information on the matter from the State Parties. A concise summary of the relevant facts, the written submissions, and a record of the oral comments made by the State Parties are all included in the committee's report. The grievance procedure described in this article is optional. It only takes effect after a State Party states that it acknowledges the human rights committee's authority to receive and consider communications from other States Parties.

Conciliation Procedure The Human Right Committee uses the conciliation process when the interstate system fails. In order to reach a mutually agreeable resolution of the issue based on the observance of the International Covenant on Civil and Political Rights, 1966, Article 42 of the Covenant provides for the establishment of an ad hoc conciliation commission with the prior consent of the State Parties involved. The committee chairman will receive the commission's report. The report must provide a succinct summary of the problem and the remedy. The study expresses its opinions on the likelihood of a peaceful settlement if one cannot be reached. The Commission evaluates the situation and then informs the parties of its findings. The views are open for acceptance or rejection by the parties. However, the Covenant makes no mention of the remedies at the disposal of the harmed state. It is one of the conciliation system's flaws.

Individual communication system According to the optional protocol to the Covenant on Civil and Political Rights, the committee reviews the complaint and communicates its findings to the State Parties in question after notifying them and inviting them to provide reasons.[16] The committee lacks the authority to make decisions or render judgments. The protection and promotion of rights cannot be effectively carried out under the terms of this Covenant. It is believed that in order for people to be able to exercise their rights, the Covenant should have established a separate court enforcement mechanism.

Conclusion THE DECLARATION ON ELIMINATION OF VIOLENCE AGAINST WOMEN 1993 AND CONVENTION ON ELIMINATION OF ALL FORMS OF DISCRIMINATION AGAINST WOMEN Noting that these rights and principles are enshrined in international instruments, such as the Universal Declaration of Human Rights, the International Covenant on Civil and Political Rights, the International Covenant on Economic, Social, and Cultural Rights, and the Conventionon the Elimination of All Forms of Discrimination against Women, We, the Undersigned, Recognizing the Urgent Need for the Universal Application to Women of the Rights and

Principles With Regard to Equality, Security, Liberty, Integrity, and Dignity of All Human Beings Recognizing that the elimination of violence against women will be aided by the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women, and that the Declaration on the Elimination of Violence against Women, as set forth in the present resolution, will fortify and complement that process, In light of the fact that the Nairobi Forward-looking Strategies for the Advancement of Women recognized that violence against women is a barrier to achieving equality, development, and peace and recommended a series of measures to combat violence against women, and in light of the fact that the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women has not yet been fully implemented, we are concerned that this situation must change. Concerned about the persistent failure to protect and promote women's rights and freedoms in the context of violence against women, and affirming that violence against women violates women's rights and fundamental freedoms and impairs or nullifies their enjoyment of these rights and freedoms, Violence against women is one of the most important social mechanisms that keeps women in a subordinate position relative to men, and it is a reflection of the historically unequal power relations between men and women that have led to male dominance and discrimination against women and the suppression of their full advancement. Aware of the heightened risk of violence for certain populations of women, including those who identify as members of minority groups, indigenous women, refugees, migrants, women living in rural or remote communities, the poor, female children, women with disabilities, elderly women, and women caught up in armed conflicts, As stated in paragraph 23 of the annex to Economic and Social Council resolution 1990/15 of 24 May 1990, "urgent and effective steps must be taken to eliminate the incidence of violence against women in the family and society, which is pervasive and cuts across lines of income, class, and culture."

References :

1. Brown, Gordon. *The Universal Declaration of Human Rights in the 21st Century*. Open Book Publishers, 2016.
2. Hughes, Glenn. "The concept of dignity in the universal declaration of human rights." *Journal of Religious Ethics* 39, no. 1 (2011): 1-24.
3. Morsink, Johannes. "The Universal Declaration and the conscience of humanity." *Human Rights and History: a challenge for education* (2010): 25-36.
4. Lauterpacht, Hersch. "The universal declaration of human rights." *Brit. YB Int'l L.* 25 (1948): 354.
5. Glendon, Mary Ann. "Knowing the universal declaration of human rights." *Notre Dame L. Rev.* 73 (1997): 1153.
6. Keith, Linda Camp. "The United Nations International Covenant on Civil and Political Rights: Does it make a difference in human rights behavior?." *Journal of Peace Research* 36, no. 1 (1999): 95-118.
7. Tomuschat, Christian. "International covenant on civil and political rights." *United Nations Audiovisual Library of International Law, United Nations* (2008): 1-4.
8. Keith, Linda Camp. "The United Nations International Covenant on Civil and Political Rights: Does it make a difference in human rights behavior?." *Journal of Peace Research* 36, no. 1 (1999): 95-118.
9. Dura, Nicolae, and Riccardo Mititelu. "International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights." *EIRP Proceedings* 8 (2013).
10. Dankwa, E. Victor O., and Cees Flinterman. "Commentary by the Rapporteurs on the Nature and Scope of States Parties' Obligations." *Human Rights Quarterly* (1987): 136-146

रीतिकालीन काव्य में देश–भक्ति

डॉ0 भारतेंदु कुमार पाठक
सहायक प्रोफेसर
स्नातकोत्तर, हिंदी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–190006
जम्मू व कश्मीर

कविता में देश दिखना चाहिए। कवि कैसा? जो राष्ट्र के प्रति प्रेम न रखता हो। सतसईकार कविवर बिहारीलाल ने राजा को इस प्रकार समझाया है–

"स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।

बाज पराये पानि परि, तू पच्छिन न मारि।"

यहाँ पर राजा को यह समझाया गया है कि तू अपने देश के राजाओं से युद्ध करके उन्हें मत मारों।

उसी प्रकार कवि भूषण द्वारा विरचित रचनाएँ देश प्रेम की परम अभिव्यक्ति है। "भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्यायदमन में तत्पर, हिन्दू धर्म के संरक्षण, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे।"[1] कवि भूषण ने इन्ही देश रक्षक राजाओं के संदर्भ में कहा है– "सिवा को सारहौ कि सराहौ छत्रसाल को।"

उसी प्रकार भारत के विभिन्न प्रान्तों का एकीकरण संबंधित पद्माकर का निम्नलिखित छंद प्रसिद्ध है–

"मीनागढ़ बंबई सुमंद मंदराज बंग,

बन्दर को बंद करि बंदर बसावैगो।

कहै पद्माकर कसकि काश्मीर हू को,

पिंजर सो घेरिके कलिंजर छुडावैगो।

बाँका नृप दौलत, अलीजा महाराज कबै,

सजि दल पकरि फिरगिव दबावैगो।

दिल्ली दहपटी, पटना हू को झपट करि

कबहूँक लत्ता, कलकत्ता को उड़ावैगो।।[2]

मीनागढ़, बंबई, बंगाल, कश्मीर, कलिंजार दिल्ली, पटना व कलकत्ता इत्यादि पर विजय हेतु महाराज दौलत राव सिधिया से कहा जा रहा है। उसी प्रकार "गुरु गोविन्द सिंह जी सिखों के महा पराक्रमी दसवे गुरु थे। ये हिंदू भावों और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर युद्ध करते रहे। तिलक और जनेऊ की रक्षा में इनकी तलवार सदा खुली रहती थी।"[3]

गुरु गोविन्द की कविता में देश प्रेम व उत्साह भाव की व्यंजना है–

"सवा लाख पर एक चढावो,

तबे गोविन्द सिंह नाम कहावो।"

उसी प्रकार नदी, नाले, वन, पर्वत, समुंद्र, वृक्ष, तृण, लताएँ, निर्झर, चन्द्रिका, विभिन्न ऋतुओं इत्यादि का चित्रण में सेनापति, बिहारीलाल व द्विजदेव कवि सिद्ध हस्त हैं। देश की पहचान यहाँ की प्रकृति से होती है, जिसका चित्रण प्रायः सभी रीतिकालीन रचनाकारों ने किया है। कहने का भाव है कि रीतिकाल की कविता में भारत देश की उपस्थिति उपलब्ध है।

संदर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ– 141, 38वाँ संस्करण संवत–2057 वि०, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वाराणसी
2. उपर्युक्त, पृष्ठ– 170
3. उपर्युक्त, पृष्ठ – 183

नयी कविता : काव्य और अभिप्राय

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
प्रधान सम्पादक
''शोध'' (रिसर्च जर्नल)

'परिवेश' 'काल' के खण्ड–विशेष को कहते हैं। परिवेश शब्द का मूलतः विवेचन इतिहास सम्मत है, लेकिन साहित्य का सम्बन्ध भी इतिहास से अछूता नहीं है। इतिहास के आलोक में मानव जगत की समग्रता को व्यक्त करना ही साहित्यिक परिवेश है। परिवेश बदलते हुए समय का साक्षात्कार है। साहित्य का रचनाकाल इतिहास की काल–सीमा के समानान्तर चलता है। साहित्य और इतिहास दोनों परिवर्तन वैविध्य या विकास यात्रा के साक्षी होते हैं। इस यात्रा में युगीन पाठकों की रुचि भी सम्मिलित होती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास काल में प्रत्येक काल का अपना एक परिवेश रहा और कवियों का समूह भी प्रवृत्ति–विशेष के आधार में ढल कर काव्य रचना करता रहा।

सामान्यतः किसी भी काव्य प्रवृत्ति के उद्‌गम को निश्चित तिथि से नहीं बांधा जा सकता है, किन्तु साहित्येतिहासकार काव्यधारा विशेष की परम्परा पर विचार करते हुए भी उसके प्रवर्तनकाल के निर्धारण से विमुख नहीं होते हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास क्रम के विवेचक छायावाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के पश्चात् 'नयी कविता' का नाम लेते हैं, लेकिन स्पष्ट है कि सभी युग का अपना परिवेश है। स्वतन्त्रता– प्राप्ति के बाद मानसिक तौर पर विभिन्न बदलावों के साक्षी हिन्दी प्रदेश की युवा शक्ति के साहित्यिक विद्रोह को मूर्त करने वाली नवीन रचनात्मकता के प्रति समीक्षकों ने अनेक भ्रान्त धारणायें प्रचारित कर रखी है।

हिन्दी साहित्य में नई कविता के प्रादुर्भाव से पहले पूर्ववर्ती काव्य–धाराओं छायावाद और प्रगतिवाद का अवसान हो चुका था प्रयोगवादी काव्यधारा मुख्य काव्य धारा के रूप में प्रवाहमान थी। ऐसा नहीं है कि इस समय छायावादी और प्रगतिवादी रचनायें नहीं हो रही थी। रचनाएँ तो छायावादी और प्रगतिवादी ढंग की अब भी हो रही थी, किन्तु अब छायावाद और प्रगतिवाद मुख्य काव्यधारा नहीं रह गए थे। साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति के रूप में अब छायावाद और प्रगतिवाद के स्थान पर प्रयोगवाद ही मुख्य काव्यधारा के रूप में प्रवाहमान थी, जो आगे चलकर नयी कविता के रूप में पर्यवसित हो गया। अब हम नयी कविता के पूर्ववर्ती काव्य विशेषतः छायावाद के परिवेश को व्याख्यायित कर रही हूँ।

छायावाद :

छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के रोमाण्टिक उत्थान का वह परिवेश है जो लगभग सन् 1918 से 1936 अर्थात् उच्छवास से युगान्त तक की प्रमुख वाणी रही जिसमें प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि मुख्य कवि हुए और सामान्य रूप से भावोच्छवास प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना वैभव की वह स्वच्छन्द प्रवृत्ति है जो देश काल गत वैशिष्ट्‌य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा–आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही है। स्वच्छन्दता की उस सामान्य भाव धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य में छायावाद पड़ा। यह काव्यधारा 1918 ई0 के आस–पास द्विवेदी युगीन नीरस, उपदेशात्मक इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के बीच से प्रमुखतः रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रवाहित हुई। यह नई काव्य–धारा अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों तथा बंगला के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्यधारा के ढंग या उससे प्रभावित थी।

छायावाद में पिछले युगों की नितान्त वस्तुपरकता के प्रति गहरा विद्रोह छिपा था और अपने व्यक्तित्व की स्वी.ति के लिए खुला ऐलान थी और इस प्रतिक्रिया में उसकी अपनी वैयक्तिकता अपनी अन्तर्मुखी हो गयी कि कवि वस्तु जगत की नितान्त अवहेलना करके स्वप्नों और आशा के रंगीन चित्रों में अपने को भटकाता रहा। ऐसी दशा में जीवन के सत्य से साक्षात्कार न कर वह कल्पनाशील बन गया था। निश्चय ही, छायावाद की यह स्थिति बहुत दिनों तक सम्भव नहीं थी। जीवन की अस्वीकृतियों

को गौरवान्वित करके, मानसिक कुण्ठाओं को छिपाकर कल्पना लोक के छायाभास और रहस्याभाव–वैभव में अपने आपको भुलाए रहना अधिक सम्भव नहीं था और सामाजिक भावनाओं के लिए अज्ञात अशरीरी आलम्बन का रहस्यात्मक आधार भी अधिक टिकाऊ सिद्ध नहीं हो सका। परिणामस्वरूप काव्य में एक नया मोड़ स्वाभाविक था। इस नए काव्य के काव्य को भावजगत् के काल्पनिक कुहासे से निकाल कर जीवन की वास्तविकता तथा यथार्थ का दिग्दर्शन कराया। सन् 1936ई0 के आस–पास उसके पुरोधााओं ने ही उसके रश्मिबन्ध तोड़ डाले और जीवन के यथार्थ से कविता का साक्षात्कार कराया। आधुनिक कवि की भूमिका में पन्त ने लिखा– ''छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा, क्योंकि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था, वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया।''

सचमुच 1936 ई0 तक आते–आते छायावाद युगीन परिवेश और यथार्थ के साथ गति मिलाने में असमर्थ हो गया। यह हमारी नयी समस्याओं और परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सका। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा– ''छायावाद की असामयिक मृत्यु का एक प्रमुख कारण यह है कि उसमें जीवन से सम्बन्धित किसी रचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव था। द्वितीय महायुद्ध के घुटन के दौरान छायावाद–रहस्यवाद के गीत अर्थहीन हो गए थे। छायावाद जीवन के उन तत्त्वों को आत्मसात नहीं कर सका जिनके कारण कोई भी साहित्य अधिक स्थायी हो पाता है जिन सूक्ष्म तन्तुओं से उसका निर्माण हुआ था वे संघर्षों के कठोर युग के उपयुक्त न थे। छायावाद वह रेशम था जिससे युद्ध तथा संकट के दिनों में सिपाहियों की वर्दी नहीं बन सकती थी।''

इसी बीच 1936ई0 तक आते–आते सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द के सहयोग से 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। शिवदान सिंह चौहान ने सन् 1937 के मार्च के 'विशाल भारत' में 'प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक लेख लिखा, जिसमें हिन्दी कवियों एवं लेखकों को उन्होनें ललकारा ''हमारा साहित्यिक नारा कला कला के लिए नहीं वरन् कला संसार को बदलने के लिए है। इस नारे को बुलन्द करना प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यकार का फर्ज है।'' अब छायावादियों के पैर डगमगाए। सामने कई सैद्धान्तिक प्रश्न आ खड़े हुए, साहित्य किसलिए? स्वयं के लिए या दूसरों के लिए? साहित्य का अन्तिम प्रयोजन क्या है– आत्मतुष्टि या समाज कल्याण? इन सारे प्रश्नों ने छायावादी कवियों को भी आत्म अन्वेषण के लिए बाध्य किया। इस समय तक आते–आते छायावादी प्रवृत्तियाँ प्रायः ह्रासोन्मुखी हो चुकी थी। 1935–36 ई0 तक आते–आते छायावाद वही नहीं रह गया जो 1916 या 1918 में था। प्रकृति प्रेम से जिसका आरम्भ हुआ था, अन्त तक जाते–जाते उसके प्रेम का प्रसार मानव–जीवन तक हो गया, जिस निराला ने 'जूही की कली' के साथ 'केलि' से काव्य आरम्भ किया था आगे चलकर 1935 तक जाते–जाते तुलसीदास की रत्नावली से मुक्त होकर देश के काल की चिन्ता करने निकल पड़े। जो प्रसाद पहले 'आँसू' में ही डूबे रहे, उन्हीं को कुछ ही वर्षों बाद 'आँसू' के द्वितीय संस्करण में अपनी पीड़ा को मंगलमयी ज्योति का रूप देना पड़ा। उन्होनें अपने आँसूओं को विश्व के आँसूओं से मिला दिया और मंगलकामना की। निजी आँसुओं के 'निहार' में वन्दिनी रहने वाली महादेवी ने रश्मि के आलोक में जीवन की व्याप्ति का दर्शन किया और प्रखर ताप को झेलते हयु सान्धक्षणों तक जाते–जाते समाजव्यापी दुख की अनुभूति करने लगी।'' इस प्रकार छायावादी कवि भी युग की माँग के अनुसार प्रगतिवादी रचना करने लगे। पन्त ने छायावाद का युगान्त घोषित किया प्रगतिवाद को युगवाणी के रूप में तुरन्त अपना लिया। देर–सवेर निराला और महादेवी ने भी अपनी–अपनी सीमाओं में इसे स्वीकार किया। इसके फलस्वरूप कविता में पहली बार किसानों–विशेषतः मजूरों के गन्दे पैरों की धूल दिखायी पड़ी।

प्रगतिवाद :

प्रगतिवाद का आन्दोलन सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह आन्दोलन था, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु–सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अगसर होने की प्रेरणा दी, किन्तु प्रगतिवाद ने यथार्थ को सीमित और संकुचित परिधि में ही देखा, वह भी अपने रंगीन चश्में से। एक राजनीतिक मन्तव्य के प्रचार मात्र का साधन बन इसने संकीर्णता का परिचय दिया। प्रगतिवादियों की दृष्टि एकांगी हो गयी। काव्य के नाम पर स्थूल इतिवृत्त और उपदेश का सर्जन होने लगा। इस तरह प्रगतिवादी कविता अपने

आप में रूढ़ होने लगी और उसकी विषयवस्तु एक सीमित परिधि के भीतर चक्कर काटने लगी। प्रगतिवादी विशुद्ध रूप में मार्क्सवाद की गोद में जा बैठा और उसका उद्देश्य साहित्य न होकर रह गया। प्रगतिवाद मानव–मूल्यों के स्थान पर वर्गमूल्यों की चर्चा में व्यस्त हो गया। यही नहीं, मानव–मूल्यों की उपेक्षा करके प्रगतिवाद ने वर्ग–मूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा की और यह देखने का प्रयास ही नही किया कि कला और कविता के क्षेत्र में इन तत्त्वों से परे भी कोई मूल्य है, जो काव्य के गुण और दोष निर्धारित करते हैं। काव्य के मूल तत्त्व हट जाने के कारण उनकी दृष्टि साम्प्रदायिक बनकर रह गयी और यहाँ तक की नव यथार्थ की पद्चाप उन्हें सुनायी ही न दी। उनकी यथार्थ के प्रति जो दृष्टि थी, उसका विवेचन करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा– ''यथार्थ के प्रति उनकी दृष्टि क्या थी, यह तो उस समय और भी स्पष्ट हो जाता है जब केवल उसे नीति के रूप में मार्क्सवादी विचारधारा अथवा कम्युनिज्म को स्थापित करने में प्रयुक्त करते हैं। यथार्थ और मानव–विशिष्टता दो तत्त्व के रूप में उन्हें स्वीकार नहीं होते, उनके सामने तो कम्यूनिस्ट नीति और उसके साथ यथार्थ की उपयोगिता (विशेषकर उस नीति को स्थापित करते के लिये) की ही समस्या प्रमुख है।'' विषय वस्तु को इतना एकांगी और सीमित बना देने के फलस्वरूप प्रगतिवादी साहित्य जीवन की मूलधारा से ही विच्छिन्न हो गया और उसकी अपनी ही भूमि से प्रयोगवादी कविता के अंकुर फूट पड़े।

प्रयोगवाद :

हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद का जन्म एक विशेष परिस्थिति में हुआ। प्रयोगवाद या प्रयोग की आवश्यकता साहित्य मे ंउस समय होती है जब कविता की प्रेषणीयता इतनी अभिधापूर्ण हो जाती है कि उसमें कोई रस–विशेष नहीं मिल पाता अथवा कोई रागात्मक सहानुभूति नहीं मिल पाती। प्रयोग की सार्थकता सदैव इसमें ही निहित रहती है कि कवि एक रूढ़ि को त्यागकर नए स्तर पर रागात्मक सम्बन्धों को ढूँढता है और यह प्रयास करता है कि वे माध्यम जो अपनी प्रेषणीयता नष्ट कर चुके है अथवा जो अत्यधिक अभिधात्मक हो गए हैं, उनके अतिरिक्त माध्यमों को स्थापित करें। हिन्दी में इस विशिष्ट विचारधारा के जन्म के कुछ कारण थे।

छायावाद नवीन भावनाओं का अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो गया था और प्रगतिवाद की अतिशय सामाजिकता ने व्यक्ति को एकदम निरर्थक बना दिया था, इतना ही नहीं प्रगतिवाद अपनी अतिशयता में नारेबाजी और मार्क्सवादी दृष्टि का पर्याय बनकर रह गया था। छायावाद और प्रगतिवाद जब नयी भावभूमि को वाणी देने में असमर्थ प्रतीत होने लगे तक प्रयोगवाद युग की अनिवार्य चेतना के रूप में काव्य में उद्भूत हुआ।

'तारसप्तक' के प्रकाशन काल (1943ई0) से प्रयोगवाद की शुरुआत मानी जाती है। यद्यपि 'प्रयोगवाद' नाम से 'तारसप्तक' के सम्पादक अज्ञेय सहमत नहीं थे और उन्होनें दूसरे सप्तक (1951 ई0) की भूमिका में इसका विरोध भी किया है– ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नही है। न प्रयोग अपने आप में ईष्ट या साध्य है। अतः प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना।'' परन्तु जिस प्रकार छायावदियों के न चाहने पर भी 'छायावाद' संज्ञा निरर्थक होकर भी हिन्दी पाठकों के बीच प्रचलित हो गयी उसी प्रकार 'प्रयोगवाद' नाम भी चल पड़ा।

इन कवियों के सम्मुख वर्तमान युग की जटिल संवेदनाएँ थी। सम्पूर्ण जीवन तेजी से बदल रहा था, मशीनी सभ्यता और संस्कृति में पल्लवित होने वाला समाज अपने पूर्व समाज से सर्वथा भिन्न था। प्रगतिवाद तक आते–आते युग का दृष्टिकोण यथार्थमूलक मात्र हो सका वैज्ञानिक नहीं। निसन्देह आज के वैज्ञानिक युग में पूरा ताना–बाना उलट–पलट गया है। मानवीय सम्बन्ध मानव–मूल्य पहले की अपेक्षा अधिक जटिल, संकुल और अस्त–व्यस्त है। ऐसी स्थिति में एक नए साहित्य की आवश्यकता महसूस हुई। प्रयोगवाद अपने समर्थन में यह नहीं कहता कि उसका अभीष्ट एवं सिद्धि प्रयोगमात्र है, बल्कि उसका आग्रह है कि प्रयोग के माध्यम से ही आज की जटिल एवं अस्त–व्यस्त संवेदना की अभिव्यक्ति हो सकती है। प्रयोगशीलता की मूलप्रेरणा के सम्बन्ध में अज्ञेय ने कहा कि– ''जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुंचाया जाय यह पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलता को ललकारती है, क्योंकि कवि यह अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व नहीं है।''

चूंकि छायावाद भाषा नवीन भाव–बोध को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं रह गयी थी, इसलिए प्रयोगवाद में बार–बार इस बात को लेकर पर्याप्त बहस हुई है। प्रयोगवादी कवियों को इस बात चिन्ता थी कि भाषा असमर्थ हो गयी है उपमान बासी पड़ गए है और मैले हो गए हैं। अतः शब्दों में नया अर्थ भरना है। इसी के साथ सम्प्रेषण का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। अज्ञेय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कहा है कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए है उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी तक छुआ नही गया, या जिनको अभेद्य मान लिया गया है। भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से अंकों और सीधी–तिरछी लकीरों से छोटे–बड़े टाइप से सीधे या उल्टे अक्षरों से लोगों एवं स्थानों के नामों से अधूरे वाक्यों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगाता कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण पहुंचा सके। पूरी सफलता उसे नहीं मिली जहाँ वह पाठक के विचार सूत्रों को नहीं छू सका, वहाँ से उसे पागल प्रलापी समझा गया या अर्थ का अनर्थ पा लिया गया। बहुत से लोग इस बात को भूल गए कि आधुनिक कवि जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है– भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है।''

इस तरह से प्रयोगवाद कविता ने हिन्दी की अब तक की काव्य–वस्तु के क्षेत्र से आगे बढ़कर उसमें नयी क्रान्ति की है। जहाँ छायावादी काव्य–वस्तु सीमित थी और सौन्दर्य के एक ही पक्ष को ग्रहण करते हुए युग के यथार्थ से विमुख हो चली थी और प्रगतिवादी काव्य–वस्तु एक सीमित घेरे में बंधकर प्रचार मात्र का साधन बन कर रह गयी थी तथा जिसने समाज को अतिशय स्वीकृति देकर व्यक्ति को एकदम तिरस्कृत कर दिया था वहाँ प्रयोगवाद ने अपनी काव्य–वस्तु में व्यक्ति को अस्तित्व की प्रतिष्ठा कर नवीन युगीन यथार्थ को उसके सम्पूर्ण परिवेश के साथ स्वीकृत किया।

छठे दशक के प्रारम्भ के साथ ही प्रयोगवाद के अतिरिक्त उत्साह से मुक्ति पाकर हिन्दी कविता एक नयी दिशा में मुड़ी, जिसमें परम्परा को आत्मसात् करके स्वीकारने और स्वानुभूति की सघनता के दबाव में विवश होकर सहज आत्माभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति प्रमुख थी। इसी को 'नयी कविता' कहा जाने लगा। नयी कविता के उन्मेष और वाद–रहित मानवीय जीवन–दृष्टि तथा विकसित एवं परिष्कृत सौन्दर्य बोध ने प्रयोगवाद की दुर्गति तक पहुँचाने या बिखर जाने से बचा लिया।

संदर्भ सूची :

1. आधुनिक कवि– 2 भूमिका पन्त पृ. 17
2. हिन्दी नवलेखन रामस्वरूप चतुर्वेदी पृ. 15
3. छायावाद डॉ0 नामवर सिंह पृ. 137–138
4. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ डॉ0 नामवर सिंह, पृ. 71–72
5. नयी कविता के प्रतिमान– लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ. 115
6. दूसरा सप्तक स0 अज्ञेय भूमिका
7. तारसप्तक सं0 अज्ञेय पृ0 27 प्रथम संस्करण
8. तारसप्तक सं. अज्ञेय पृ0 270–71 प्रथम संस्करण

Merger and acquisition of TATA Motor Co. Ltd

Sudhir Kumar Sah
(UGC-Net & JRF, SRF qualified)
(Research Scholar, University Deptt of Commerce & Business Administration T.M.B.U.Bhagalpur)

Abstract

Mergers and Acquisitions (M&A) are considered as a quickest route to expansion. M&A is a prudent decision when compared to levying a green field project, which involves longer gestation period and huge investments. Companies are attracted to M&A for availing economies of scale, economies of scope, enormous size and expansion of domestic and foreign market. Rise in disposable income of customers, has converted an all time luxury to a necessity. Indian automobiles market is an eyewitness to such growing necessity. Indian companies are inclined for M&A to reduce competition and grab larger market share. Automobile majors often try to bond with foreign players especially for new technology and tapping the new market in home country as well as cross border country. Present study tries to analyze the motive of Tata Motors Limited for acquiring foreign brands and the also tries to study the post merger financial performance of the company.

Keywords: Merger and Acquisitions, Profitability Ratios, Synergistic Benefits.

1. Introduction.

Tata motors Limited is India’s largest automobile company. It is the largest commercial vehicle manufacturer in India and **second** largest passenger car and bus manufacturer. It is the **fifth** largest medium and heavy commercial vehicle manufacturer in the world. The popular brands of the company are Tata Indica, Tata Indigo, Tata sumo and Tata safari. The company’s 24000 employees are guided by the vision to be “best in the manner in which we operate best in the products we deliver and best in our value system and ethics”. Established in 1945, Tata Motors presence indeed cuts across the length and breadth of India. Over 4 million Tata vehicle ply on Indian roads, since the first rolled out in 1954. Following a strategic alliance with Fiat in 2005, it has set up an industrial joint venture with Fiat Group Automobiles at Ranjangaon to produce both Fiat and Tata cars and Fiat power trains. In 2006 Tata Motors entered into joint venture with Thonburi Automobile assembly Plant Company of Thailand to manufacture and market the company’s pickup vehicles in Thailand. The foundation of the company‘s growth over the last 50 years is a deep understanding of economic stimuli and customer needs, and the ability to translate them into customer – desired offerings through leading edge R&D. in 2008, Tata Motors unveiled its People’s car, the Tata Nano, which India and the world have been looking forward to. The Tata Nano has been subsequently launched, as planned, in India in March 2009. In May 2009, it introduced ushered in a new era in the Indian automobile industry, in keeping with its pioneering tradition, by unveiling its new range of world standard trucks called Prima. Tata Motors is equally focused on environment – friendly technology in emissions and alternative fuels. It has developed electric and hybrid vehicles both for personal and public transportation. It has also been implementing several environment-friendly technologies in manufacturing process, significantly enhancing resource conversation.

2. Merger and Acquisition

Companies tends to favour Merger & Acquisition for market expansion, financial strength, general profit, own growth plans, strategic objectives, corporate friendship, desired the level

of integration, procurement of supplies, brand building and improvement of production facilities. The post-liberalization policy has ushered in stylish and attractive Cars in India. Companies are in a perpetual race to upgrade cars, technically and physically. Passenger car of India and commercial vehicle manufacturing industry 6th largest in the world with annual sales in the domestic and International market for November 2022 stood at 75480 vehicles compare to 62200 units during November 2021[1]. Automobile sector mainly passenger vehicles, commercial vehicles, three wheelers and two wheelers. Passenger vehicles include passenger cars, utility vehicles and multi-purpose Vehicle [1]. Tata Motors Limited is the largest automobile company in India with a consolidated revenue of Rs 240000 crore (USD 47.5 billion) in 2019-2020 [2]. Leading in commercial vehicles in each segment, and between the top three in passenger vehicles with winning products compact, midsize car and utility vehicle segments [2]. Afterwards Acquisition of foreign brands, Tata Motors has emerged as an international automobile company. Jaguar and Land Rover (JLR), was a business composed of the two iconic British brands which was acquired in 2008 [2]. Tata Motors acquired the two brands for US$2.3 billion [3]. Present study is an attempt to analyze the motive of Tata Motors Limited for acquiring foreign brands and also tries to study the post merger financial performance of the company.

3. Research Design

The Profile of the study unit - Tata Motors Ltd.

Data - secondary data and primary data

Source – Annual Report Websites - www.tatamotors.com

Period of the study - 2015 to 2020.

Tools of analysis - Ratio analysis

4. Research Objective.

1. To understand the benefits earned by Tata Motors Ltd. in the post Merger & Acquisition.

2. To comprehend the significance of 25 parameters involved in evaluating the financial performance such as: Profit Before Depreciation, Interest and Tax (PBDIT); Profit Before Tax (PBT); Profit after tax (PAT); Equity Dividend; Net Worth; Capital Employed; Return on Net-Worth (RONW); Return on Capital Employed (ROCE); Quick Ratio; Current Ratio; Interest Coverage Ratio; Earning per share (EPS); Dividend Per Share (DPS); Debt-Equity Ratio; Operation Margin Ratio; Gross Profit Margin Ratio; Cash-Profit Margin Ratio; Total Debt to Owner’s Fund Ratio; Debtors Turnover Ratio (Debtors T/o); Inventory Turnover Ratio (Inventory T/o); Fixed Assets Turnover Ratio (Fixed Assets T/o), Total Assets Turnover Ratio (Total Assets T/o) and Economic Value Added (EVA), margin of safety ratio (MOS), profit volume ratio (P/V Ratio).

5. Research Methodology.

In order to accomplish the mentioned objectives, descriptive research design was adopted to evaluate the post Merger & Acquisition financial performance. Non-probability based judgemental sampling was adopted for the study. Sampling element consisted of Indian automobile companies which had undergone Merger & Acquisition in the time slot of 2015-2020. Sampling unit comprised of the top automobile company (Tata Motors Limited) listed on BSE which had undergone Merger & Acquisition. The reason for selecting Tata Motors Limited for research was that the Tata group is most significant for acquiring the higher value firms like Daweoo Commercial vehicle, Korea and Hispano Carrocera SA, Spain. This provides a room for discussion that whether the recent acquisition of Jaguar and Land Rover

brands was fruitful Merger & Acquisition or not. The secondary data was collected from various sources like newspaper, magazines, books, periodicals, TATA motor site, annual financial statement of TATA motor Company etc. Websites especially of Bombay Stock Exchange (BSE), money control, Center for Monitoring Indian Economy (CMIE), business beacon were referred to for gathering data. Data was also retrieved from Ace Analyzer and Capitaline databases. Data was managed through Statistical Package for Social Sciences (SPSS 17) and Microsoft Excel 2007. Inferential statistics like repeated measure t-test was applied for analysis. The major limitation of the study was that Tata Motor's past Merger & Acquisition deals could have been cross compared with the recent one. More than 25 financial parameters could have been used in the study.

5.1 Synergies Expected from the Deal

Tata Motors received many synergistic benefits on acquisition of JLR. Acquiring JLR provided significant potential for revenue synergies, including giving Tata greater international distribution, broader product range and better customer service skills. Tata gained access to world-class engineering capability. The deal had strengthened relationship between Tata's steel and motoring businesses. Tata Motors developed the strength in technological and product development, innovation capabilities to address the changing market trends. Company got the benefit of sharing best practices in manufacturing and quality assurance systems and processes. It also received enhanced human capital and managerial talent along with potential operational synergies. Acquiring JLR assisted the company to expand and diversify the international sales market, allowing it to reduce excessive reliance on Indian market. It helped to broaden the existing product portfolio of utility vehicles and sports utility vehicles and cross offerings.

Table No. 1. Test statistics for repeated measure T-test

Pre-post financial parameter	P - value	Decision	Result of M & Acquisition
PBDIT	0.29	H_o can not be rejected	No significant Difference
PBT	0.40	H_o can not be rejected	No significant Difference
PAT	0.62	H_o can not be rejected	No significant Difference
Equity dividend	0.40	H_o can not be rejected	No significant Difference
Net worth	0.025	H_o is rejected	Significant difference
Capital employed	0.01	H_o is rejected	Significant difference
Return on capital employed	0.049	H_o is rejected	Significant difference
Quick ratio	0.9	H_o is rejected	Significant difference
Current ration	0.19	H_o can not be rejected	No significant Difference
Interest coverage ration	0.60	H_o can not be rejected	No significant Difference
EPS	0.19	H_o is rejected	significant Difference
DPS	0.60	H_o can not be rejected	significant Difference

Source:- Annual financial statement of Tata motor

H1 1: The performance of Tata Motors Limited significantly differs before and after acquiring international automobile brands.

As mentioned in Table 1 of test statistics for repeated measure T-test, at 95% level of confidence it may be inferred that for the financial parameters where the p-value 0.05, H0 is not rejected, i.e. the performance of Tata Motors Limited do not significantly differ before and after acquiring international automobile brands.

5.2 Post Merger & Acquisition Evaluation of Financial Parameters of the Deal

In order to compare the statistical significance of financial parameter pre & post Merger & Acquisition deal, repeated measure T-Test was applied. The hypothesis for applying T-test is as follows. H0 1: The performance of Tata Motors Limited does not significantly differ before and after acquiring international automobile brands.

6. Findings and Conclusion

It can be observed that overall analysis of financial parameters is done for Tata Motors Limited post M&A. Interpretation of ratio and its implication is discussed in the table. It can be concluded that by acquiring Jaguar brand, Tata has entered the premium product segment especially the luxury performance car segment. Acquisition of Land Rover has enabled the company to broaden its portfolio. It can be deduced that Tata now has presence in the segments of cars viz., economy car or people's car (Nano) and luxury car (Jaguar).

Conclusion

TATA MOTORS has helped us to arrive a valuable suggestion through the analysis of secondary data. This study recommends various suggestions like aware of its competitors adopt innovation in their product, take measures for increasing promotional activities etc. Moreover, **Merger and acquisition of TATA Motor Co. Ltd** is very helpful to predict and improve the future sales of their products.

7. References

1. Wikipedia. Automotive Industry in India. [Online]. Available: http://en.wikipedia.org/wiki/Automotive_industry_in_India

2. Tata Motors, Company Profile. [Online]. Available: http:// www.tatamotors.com/know-us/company-profile.php

3. Bajaj V., Business-Companies: Jaguar turns the corner with Tata, The Hindu, 2012. Available: http: //www.thehindu.com/ business / companies/article3851201.ece

4. Tutor2u., Business Studies. 6 Essential M&A Cases: Tata Group Buys Jaguar Land Rover. Available: http:// www.Tutor2u.net/blog/index.php/business-studies/ comments/6-essential-ma-cases-tata-group-buys-jaguarland-rover

5. Investopedia, Dictionary. Available: http://www.investopedia. com/dictionary/#axzz2C4nueNan

ममता कालिया की कहानियों में स्त्री की पारिवारिक स्थिति (सन्दर्भ : चयनित कहानियाँ)

लक्ष्मी कुमारी
ई–मेल : lakshmijha1391@gmail.com

शोध–सार : अपनी कहानियों में ममता कालिया ने परिवार में स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति को बहुत ही संवेदनशील रूप से चित्रित किया है। ममता कालिया ने अपनी कहानियों में दर्शाया कि दोयम दर्जे की प्राणी होने के कारण परिवार और समाज में स्त्रियाँ शोषित रही हैं, समाज में स्त्रियों के पुरुषों पर आश्रित होने का कारण उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति है। चाहे संयुक्त परिवार हो या फिर एकल पुरुष हमेशा से स्त्रियों को अपनी संपत्ति समझता आ रहा है। स्त्री की देह और मन पर पुरुष का अधिकार रहा है उसका नियंत्रण पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहता है, अतः हमारे समाज की बनावट ही ऐसी है कि स्त्री का शोषण हर कहीं होता है। परिवार से बाहर प्रत्यक्ष रूप में तो परिवार में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में स्त्रियों का अपमान होता है। ज्यादातर स्त्रियाँ परिवार में रहकर भी शोषित और अपमानित रहती हैं।

बीज शब्द : स्त्री, पुरुष, सम्बन्ध, परिवार, अधिकार, शोषण, सत्ता, व्यवस्था

शोध आलेख : ममता कालिया ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत कविता से की थी, लेकिन बचपन में सुनी कहानियाँ कैसे उनके मन को कहानी के प्रति संस्कारित करती रहीं, इसका एहसास उन्हें काफी बाद में हुआ। कविता की दुनिया में रचते–बसते कैसे वह कहानी के सम्मोहन से बंधी कहानी की दुनिया में आ गईं, जिसका जिक्र उन्होंने अपने आत्मसंस्मरणात्मक गद्य 'कितने शहरों में कितनी बार' में कहतीं हैं कि ''लिखती तो थी मैं कविता पर सारे समय कहानियों से आंदोलित होती रहती थी। हर कहानी पढ़ने के बाद भी मन में उस कहानी का एक क्रमशः बनता जाता। कविता का खगोल और भूगोल मुझे सीमित दिखता।' ममता कालिया की संपूर्ण कहानियाँ दो खंडों में है। जिनमें से पहला खंड स्त्री अभिव्यक्ति का आख्यान सा लगता है। 'मैं' की शैली में लिखी इन कहानियों में मध्यवर्गीय परिवार के ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो घर और बाहर पितृसत्तात्मकता के झूठे प्रपंचों, प्रलोभनों, लोलुपता और दोगलेपन से जूझ रहे हैं। दूसरे खंड की कहानियाँ, स्त्रियों की कहानियों के माध्यम से समाज के व्यापक सरोकारों की कहानियाँ है, जिसमें समाज की असंगत स्थितियों के समान ही स्त्रियों की वेदनाओं का रंग विविध है।

परिवार संस्था का जैसा भी स्वरूप रहा हो चाहे वह संयुक्त परिवार हो या फिर एकल परिवार सत्ता केवल एक व्यक्ति के हाथ में केंद्रित हो कर रहे हैं, संयुक्त परिवार में सत्ता घर के मुखिया के पास होती है और दूसरे सदस्य हाशिए पर धकेल दिए जाते हैं, वहीं एकल परिवार में सत्ता पति के पास होने पर पत्नी की स्थिति गौण हो जाती है। स्त्री को इस व्यवस्था में उसकी इच्छा की परवाह किए बिना धकेल दिया जाता है और वह यही मर–खप जाती है। इस प्रकार इस स्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता कि परिवार संस्था में स्त्रियों की स्थिति शोषित एवं दोयम दर्जे की है।

कृष्ण मोहन लिखते हैं– ''घर नाम की संस्था हमारे समाज की बड़ी उलझी हुई गुत्थी है। परंपरा के अग्रगामी और जीवंत तत्वों से हमारी जान–पहचान अक्सर इसी के माध्यम से होती है जो सच्ची आधुनिकता की अनिवार्य पूर्वशर्त है। लेकिन जैसे ही इससे उत्पन्न चेतना आगे बढ़ती है और अपनी स्वाभाविक दिशा में छलांग लगाने को होती है, यह संस्था परिवार, समाज, जाति, क्षेत्र, वर्ण और ऐसे ही हजारों मूल्यों की लंबी श्रृंखला के साथ किसी अजगर की तरह उसका दम घोंट देते और उसे निगल जाने को उद्दत हो जाती है। परंपरा और आधुनिकता के बीच हमारा समाज त्रिशंकु अवस्था में फंसा हुआ है, उसके लिए इसकी सर्वग्रासी जकड़ भी बहुत हद तक जिम्मेदार है। स्त्री की देह और मन

पर पुरुष का अबाध अधिकार इस संस्था का केंद्रीय मूल्य है जिसे उसकी "पवित्रता" की रक्षा के अधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है। इस मूल्य प्रणाली का बदतरीन शिकार हमारा निम्न मध्यवर्ग है।'[1]

ममता कालिया की कहानी 'बोलने वाली औरत' में पितृसत्ता को कायम रखने के लिए स्त्रियों को विभिन्न प्रकार के रुढियों में घेरकर उन्हें घर के बाहर इस दुनिया में क्या चल रहा है जानने का अवकाश तक नहीं मिलता है, एवं इन बातों को आधार बनाकर स्त्रियों को अपमानित किया जाता है, यह हमें शिखा की सास के इस वक्तव्य से पता चलता है–

''यह झाडू सीधी किसने खड़ी की?'' बीजी ने त्योरी चढाकर विकट मुद्रा में पूछा।

''मैंने रखी थी बीजी'', शिखा ने आँगन में आते हुए कहा।

''क्यों रखी थी! तूझे इतना नहीं मालूम कि झाडू खड़ी रखने स्व दलिद्दर आता है, कर्ज बढ़ता है,रोग जड़ पकड़ लेता है।''

''जाने कौन गाँव की है तू! माँ के घर से कुछ भी सीख कर नहीं आई।''[2]

कहानी में शिखा एक तर्कशील एवं स्वतंत्र व्यक्तित्व रखने वाली महिला है एवं इस रूढ़ि के लिए वो अपना सटीक पक्ष रखती है, लेकिन परिवार में उसके तर्क का कोई मूल्य नहीं है–

''मेरा ख्याल है झाडू गुसलखाने के बीचोंबीच भीगती हुई, पसरी हुई छोड़ देने से दलिद्दर आ सकता है। तीलियाँ गल जाती है, रस्सी ढीली पड़ जाती है और गंदी भी कितनी लगती है।''[3]

अधिकांश स्त्रियों को अपने साथ हो रहे अन्याय का ज्ञान तक नहीं है। वो एक अच्छी गृहणी बनने के प्रक्रिया में स्वयं को भूलती जाती हैं। ''बोलने वाली औरत'' कहानी में ममता कालिया कहती हैं– 'अधिकांश औरतों को इस ऊब और कैद की कोई चेतना नहीं थी। वे रोज सुबह साढ़े नौ बजे सासों, नौकरों, नौकरानियों, बच्चों, माली और कुत्तों के संग घरों में छोड़ दी जातीं, अपना दिन तमाम करने के लिए। वही लंच पर पति का इंतजार, टी.वी. पर बेमतलब कार्यक्रमों का देखना और घर–भर के नाश्ता, खाना, नखरो की नोक पलक सँवारना चिकनी महिला पत्रिकाओं के पन्ने पलटना, दोपहर को सोना, सजे हुए घर को कुछ और सजाना, सास की जीहुजूरी करना और अंत में रात को एक जड़ नींद में लुढ़क जाना।'

विवाह से पूर्व कपिल को शिखा के स्वतंत्र व्यतित्व ने ही शिखा से विवाह करने के लिए आकर्षित किया था, किंतु अब वही व्यक्तित्व उसे नहीं भाता है। इस कहानी में एक स्त्री को किस प्रकार घर के चारदीवारी में एक बने–बनाए ढाँचे में ढालने की पूर्ण कोशिश की जाती है एवं इस प्रक्रिया में एक स्त्री के मनःस्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है इसपर परिवार संस्था सोचता तक नहीं। अतः, उसे एक अच्छी गृहणी, पत्नी बनाने की प्रक्रिया में लग जाता है।

''बोलने वाली औरत'' कहानी में शिखा कहती है कि–

''घर को सुचारू रूप से चलाने के लिए सिर्फ दो शब्दों की दरकार थी– जी और हाँ जी'।

''कल छोले बनेंगे?''

''जी, छोले बनेंगे।''

''पजामों के नाड़े बदले जाने चाहिए।''

''हाँ जी,पाजामों के नाड़े बदले जाने चाहिए।''[4]

इस प्रकार, 'बोलने वाली औरत' कहानी में एक अच्छी पत्नी की परिभाषा चुप रहने को बताया जाता है– ''शिखा को एक अच्छी पत्नी की तरह चुप रहना चाहिए, खासतौर पर माँ के आगे।''[5] इस व्यवस्था के अनुसार अगर परिवार को सुचारू रूप से चलाना है तो घर की स्त्रियों को चुप रहना होगा, बिना कुछ सोचे–समझे सिर्फ और सिर्फ सहमति भरनी होगी।

स्त्रियों की पारिवारिक संस्था में दोयम दर्जे की स्थिति है, यंत्र की भांति बिना किसी प्रश्न के अपने मन में आने वाले विचारों की हत्या करनी पड़ती है। उनकी मनःस्थिति को कोई समझने का प्रयास तक नहीं करता है। एवं वह घुट–घुट के रहने के लिए अभिशप्त हो जाती हैं। परिवार में महिलाओं को अपना मंतव्य तक रखने का कोई अधिकार नहीं होता है। स्त्रियों को इतना टोका जाता है, इतना अधिक नीचा दिखाया जाता है कि वह स्वयं में दोष देखने लगती हैं जो कि कहानी के इस वक्तव्य से प्रतीत होता है– ''शिखा को लगता उसी में शायद कमी है जो वह इस तरह संतोष से लबालब भरकर 'मेरा परिवार महान' राग नहीं अलाप सकती।''[6]

परिवार संस्था किस प्रकार से एक मौलिक सोच वाली स्त्री को यांत्रिक बना देता है, जो उन्हीं के हिसाब से चलें, परिवार में महिलाएँ घटनाहीन जीवन बिताने को अभिशप्त हो जाती हैं। अतः स्त्री जब बराबरी का अधिकार चाहती है, तो उसे रोग बता दिया जाता है अतः इस प्रकार स्त्री का मानसिक शोषण भी परिवार में चलता रहता है, ''बोलने वाली औरत'' कहानी में कपिल कहता है कि–

''तुम अपने दिमाग का इलाज कराओ मुझे लगता है तुम्हारे होर्मोन बदल रहे है?''

''तुम्हारे अंदर बराबरी का बोलना एक रोग बनता जा रहा है। इन ऊलजलूल बातों में क्या रखा है।''[7]

अंततः इस सबके बीच ही दाम्पत्य जीवन का भी विघटन होता जाता है। अधिकतर दम्पतियों का सम्बंध परिवार की शर्तों पर रहते–रहते मात्र एक औपचारिकता बन कर रह जाती है।

ममता कालिया ने अपनी कहानी ''इरादा'' में यह दिखाया है कि परिवार द्वारा स्त्रियों की जिम्मेदारी को कैसे ससुराल तक ही सीमित कर दी जाती है एवं उन्हें कठपुतली की तरह अपने इशारे पर नचाते हैं। कहानी में वे आगें दिखतीं हैं कि स्त्रियों के द्वारा अपने लिए कुछ माँग करने पर उनको चरित्रहीन साबित कर दिया जाता है, फिर भी उस दमघोंटू माहौल में रहने के लिए स्त्रियाँ मजबूर रहती हैं। ''इरादा'' कहानी में शांति की माँ बीमार रहती है एवं वह अपनी माँ को देखने के लिए जब भी जाती है उसका परिवार उसे एक दोषी की तरह उससे व्यवहार करता है, जैसे उसने कितना बड़ा अपराध कर दिया हो। परिवार एवं समाज के अनुसार विवाह के पश्चात स्त्रियों की सबसे अधिक जिम्मेदारी ससुराल की तरफ होती है, चाहे उसकी जरूरत उसके मायके में हो।

'शांति मुश्किल से दस दिन को मैके जाती कि पति की चिट्ठी आ जाती, जल्दी चली आओ,सबको परेशानी हो रही है।'[8]

इस समाज में महिलाओं का स्वयं पर कोई अधिकार नहीं होता है, घर की स्त्री को कहाँ जाना है? यह भी उसका पति ही तय करता है, अतः इसे बड़प्पन के तौर पर लिया जाता है और अन्य स्त्री को उसके समकक्ष रख कर उसके अच्छे भाग्य का बखान किया जाता है, इसका उदाहरण ''इरादा'' कहानी में शांति की माँ के द्वारा जब उसे समझाया जाता है–

'वे कहतीं 'शांति, मैं बिल्कुल ठीक हूँ, तू जा! तू आ गई, तुझे आँख भर देख लिया यही बहुत है। यह तो उसका बड़प्पन है कि तुझे हर साल भेज देता है, नहीं तो मालूम है न तेरी बड़की मौसी की क्या दशा थी! एक बार शादी होकर गई तो कभी पीहर की दहलीज पर पांव नहीं रख सकी। जाने कौन बात से उसके ससुराल वाले नाराज थे, बस कभी भेजा ही नहीं तेरी नानी आखिर तक उसके लिए कलपती रहीं, पर वह उनके मरने पर ही आई! तू शाम ही की गाड़ी से चली जा।'[9]

समाज एवं परिवार में स्त्रियों द्वारा घर में किये गए कार्य का कोई महत्व नहीं होता है। स्त्रियाँ वर्षों से एक ही 'रूटीन' का अनुपालन कर रही हैं, वही कमरतोड़, उबाऊ काम में लगी रहती हैं। स्त्रियों की दुनिया घर से रसोईघर तक ही सीमित होकर रह जाती है, स्त्रियों को सुस्ताने व बीमार तक पड़ने की अनुमति नहीं होती है। ''इरादा'' कहानी में 'शांति सारा दिन घर में फिरकी की तरह नाचती। अगर किसी दिन वह अपनी थकान का इजहार करती, उसका पति त्यौरी चढ़ा लेता, सारा दिन घर में पड़ी रहती हो, उस पर भी चोंचले। आठ घंटे दफ्तर में ड्यूटी बजाओ तो पता चले, क्या होती है थकान?''[10]

परिवार में स्त्रियों के केवल कर्तव्य होते हैं एवं उनके काम की समय सीमा नहीं होती है उसी उबाऊ एवं नीरस से काम को करने के लिए स्त्रियाँ मजबूर होती हैं, उन्हें एक दिन का भी अवकाश नहीं होता है।

समाज एवं परिवार में स्त्रियों की यह स्थिति उनके आर्थिक पराधीनता के कारण भी है। उनके द्वारा वर्षों से घर में किये गए कार्य का कोई मूल्य नहीं है उनके आर्थिक रूप से पराधीन होने के कारण भी बार–बार अपमानित किया जाता है, 'इरादा' कहानी में शंकर कहता है– 'शंकर ने ऐंठ कर कहा, 'सीधे–सीधे बता दो, साल में कितनी बार तुम्हारी सवारी निकला करेगी, उसी हिसाब से कमाई किया करुँ?'[11]

स्त्रियों के मन पर उसके पति द्वारा कितने ही गहरे चोट किये गए हो या उसके चरित्र पर उँगली उठाई गई हो, वो दुबारा स्वयं को उसी रिश्ते को निभाने के लिए तैयार कर लेती हैं। ''इरादा'' कहानी की नायिका बीमार माँ को देखने के लिए मायके जाना चाहती है, पति उस पर तोहमत लगाता है कि वह माँ से मिलने के बहाने किसी और से मिलने मायके जाती है नायिका निर्वाक, निस्पंद अपने पति को देखते हुए सोचती है ऐसे रोगी के साथ सारा जीवन कैसे बीतेगा। ममता कालिया स्वयं मानती है ''यह स्थिरता नारी तभी पा सकती है जब वह अपने आदि संवेगों पर विजयिनी बन पुरुष की सबल बाँहों का मोह झुठलाने साहस संजोले तब उसे अपनी किसी स्थिति के लिए पुरुष के सामने जस्टिफिकेशन की आवश्यकता नहीं होगी।''

पारिवारिक संस्था के केंद्र में सदैव पुरुष रहता है, अतः पुरुष पूरे घर पर अपना आधिपत्य जमाकर रखना चाहता है एवं स्त्री और बच्चे उससे डर के रहे उसमें अपना सम्मान मानता है इसका दृ ष्टांत ''वर्दी'' कहानी में रमाशंकर एक सिपाही है और वो अपनी पत्नी को डरा कर अपने वश में रखने को गर्व की बात मानता है। ''जब से राजू समझदार हुआ था, आशा को भी लगने लगा था कि उसका पति अन्य आदमियों के मुकाबले कुछ ज्यादा ही डपटता था। छोटी–छोटी बात पर वह थाली उठा कर फेंक देता, हाथ में जूता उठा लेता या गालियों की बौछार करने लगता। फिर वह अपना डंडा उठा गश्त पर चल देता। मार फटकार खाने के बाद देर तक राजू और उसकी माँ मुँह लटकाए बैठे रह जाते। होता यह कि एक को डाँट पड़ती तो दोनों उदास हो जाते।''[12]

'वर्दी' कहानी की आशा भी आर्थिक रूप से अपने पति पर पूर्ण रूपेण आश्रित है, उसके पुत्र द्वारा एक छोटी से रकम माँगने पर भी आशा कहती है–

''शाम को तेरे पापा आएँगे तो उनसे कह देना, दोनों चीजें ला देंगे।

मेरे पास पैसे नहीं हैं। आशा ने कहा।

''कह दिया न, नहीं है।' आशा ने बन्द अलमारी की ओर देख कर कहा, जिसकी चाभी रमाशंकर जेब में रखता था।''[13]

स्त्री के व्यक्तित्व पर आर्थिक आत्मनिर्भरता का बहुत ही सकारत्मक प्रभाव पड़ता है, इससे वह स्वतन्त्र फैसला लेने में सक्षम होती हैं एवं उनके व्यक्तित्व का चहुमुखी विकास होता है।

मुख्य बात तो यह है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पक्षधर स्त्री को तरह–तरह के प्रलोभन देकर परिवार की परंपरागत स्थिति को बनाए रखना चाहते हैं कि परिवार के स्वरूप में उन्हें विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकार मिले होते हैं, जिसका वह मनमाना प्रयोग कर सकते हैं। इसी संदर्भ में ''कमला भसीन'' कहती हैं कि ''हमारे समाज में पुरुष सूर्य के समान है और स्त्रियां उपग्रहों के समान। सूर्य की अपनी चमक होती है, लेकिन उपग्रह अपनी चमक सूर्य से पाते हैं। ठीक इसी प्रकार सास–बहू, ननद सभी श्पुरुषश से चमक, पद, इज्जत पाने की कोशिश कर रहे हैं।'' ''उमस'' कहानी की नायिका रानी दिन रात मेहनत करती है, परंतु जरा सी झपकी लग गई तो उसकी सास ताने देती है। उससे कोई गलती ना हो इस बात का खास ख्याल रखती, लेकिन इतनी मेहनत के बावजूद उसका स्थान सिर्फ रसोई तक ही माना जाता है।

वर्तमान समय में भी स्त्रियों को बोलने व अपना पक्ष रखने का अवसर नहीं दिया जाता है। नारी अस्मिता के निर्माण के लिए नारी की चुप्पी को कैसे तोड़ा जाए। नारी अस्मिता के सामने उसकी सबसे

बड़ी चुनौती पितृसत्तात्मक संबंध, मूल्य और समाज है। नारी को कभी अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं करने दिया जाता है, उसे समाज, माता–पिता और पति की इच्छानुसार ही अपना जीवन व्यतीत करना होता है। ''उमस'' कहानी की रानी जब अपने पति के दोस्तों की महफिल में कोई सही बात कह देती है, तब भी उसका पति उस पर गुस्सा करता है। उसका घर में कोई स्थान नहीं है उसके बच्चे भी उसे हड़का देते हैं और सास तो बार–बार उपदेश दिया करती थी परिवार में स्त्री की उपेक्षा किस तरह की जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर स्वस्थ एवं सुखी परिवार का निर्माण स्त्री–पुरुष दोनों मिलकर ही कर सकते हैं, जिसमें न कोई छोटा हो न ही कोई एक–दूसरे को अपमानित करें, परिवार के हर सदस्य के काम को सम्मान की दृष्टि से देखा जाए। इसी संदर्भ में 'कमला भसीन', ने अपने साक्षात्कार में कहा था– ''अच्छे गुणों वाले पुरुष समानता से नहीं डरते हैं। उन्हें अपनी मर्दानगी साबित करने के लिए किसी को पीटने की जरूरत नहीं है।आप पाएंगी कि सारे प्रबुद्ध पुरुष के भीतर मर्द के साथ स्त्री भी बसती है। वे न मर्द हैं, न स्त्री। वे आधे पुरुष हैं, आधे स्त्री। उनमें मर्द और स्त्रियों के सर्वोत्तम गुण हैं।''[14]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. स. ज्ञानरंजन, पहल, जनवरी–फरवरी–मार्च, 2004, पृ. 76
2. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.125
3. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.125
4. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.128
5. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.127
6. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.128
7. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.130
8. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.116
9. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 116–117
10. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.117
11. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.118
12. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.94
13. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 94–95
14. साक्षात्कार : पुरुषों को यह समझना होगा कि पितृसत्ता ने उन्हें अमानवीय बना दिया है (thewirehindi.com)

आधार ग्रन्थ

1. कालिया, म. (2009). ममता कालिया की कहानियाँ (खंड–2). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

सहायक ग्रन्थ

1. ज्ञानरंजन. (2004, मार्च). पहल.
2. भसीन, क. (1997, जून–जुलाई). क्या औरत ही औरत कि दुश्मन है? सबला.
3. शर्मा, व., साठोत्तर, हिंदी उपन्यासों में नारी के विविध रूप.
4. https://thewirehindicom/10179/a&candid&conversation& with&kamla&bhasin&on&feminism&patriarchy&and&globalization/

भारत में कुपोषण के शिकार बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन

वैदेही कुमारी
शोध छात्रा
गृह विज्ञान विभाग
तिलका मांझी विश्वविद्यालय भागलपुर किरण माला
महिला कॉलेज, खगरिया

"पहला सुख निरोग काया" यह मात्र कहावत नही बल्कि शत प्रतिशत सच है। परन्तु निरोग रहने के लिए उत्तम पोषण आवश्यक है। उत्तम पोषण की प्राप्ति हेतु आहार में सभी पौष्टिक तत्वों का उचित मात्रा एवं अनुपात में रहना बेहद जरूरी है। कार्बेज जहाँ ऊर्जा प्रदान करता है वहीं प्रोटीन शरीर निर्माणात्मक कार्यो का सम्पन्न करता है, विटामिन एवं खनिज लवण सुरक्षात्मक एवं नियंत्रणात्मक कार्यो को करते है एवम पौष्टिक तत्वों की अधिकता एवं कमी, दोनों ही उत्तम स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है। अल्प पोषण के कारण जहाँ व्यक्ति बेरी–बेरी स्कर्वी रिकेटस प्रोटीन कैलोरी कुपोषण से पीड़ित होकर स्वास्थ गवां देते है।

शिशु का स्वास्थ्य उसके पोषण पर निर्भर करता है। उचित पोषण से शिशु की शारीरिक वृद्धि एवं मानसिक विकास होता है। पौष्टिक आहार से उष्मा की उत्पत्ति होती है जो जीवन को बनाये रखने के लिए अति आवश्यक है। शिशु को क्रियाशील (Active) प्रसन्नचित, उत्साहित एवं स्वास्थ बनाये रखने में आहार का अमूल्य योगदान है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बच्चों में आहार की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिसे कदापि नकारा नहीं जा सकता है। यदि जाने अनजाने में माता द्वारा आहार को नकारने की चेष्टा भी की जाती है तो इसका दुष्परिणाम शिशु के जीवन पर पड़ता है। जीवन के प्रारम्भिक काल में यदि शिशु कुपोषित या बीमार रहता है तो इसका दुष्प्रभाव, उसके सम्पूर्ण जीवनकाल पर पड़ता है।

प्रति वर्ष लगभग करोड़ों बच्चों की मृत्यु पांच वर्ष से कम आयु में ही हो जाती है। इसमें से अधिकांश मौते कुपोषण के कारण होता है।

कुपोषण का प्रभाव न केवल व्यक्ति के शारीरिक विकास पर पड़ता है। बल्कि इसके कारण मानसिक, सामाजिक तथा बौद्धिक विकास भी प्रभावित होता है। उसमें सीखने तथा याद करने की क्षमता का भी ह्रास होता है। बालक का मन पढ़ने लिखने, खेलने कूदने में नहीं लगता है। वह चिड़चिड़ा, क्रोधी अशांत एवं बेचैन रहने लगता है। 1770 में डॉबिंग तथा सैण्ड्स (Dobbing and sandas) ने अपने शोधों एवं प्रयोगों कि बताया कि बच्चों के मस्तिक के विकास पर कुपोषण के कारण भेद अस्वीकार्य (Vulnerable conditions) उत्पन्न हो जाती है, जिसका विवरण इस प्रकार है।

(1) समय से पूर्व जन्मे बच्चों (premature child) में मस्तिक अत्यन ही भेद (Vulnerable) होता है।

(2) अर्द्ध विकसित शिशु (Undey Developed) का मानसिक विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है।

(3) कुपोषित माताओं से उत्पन्न बच्चे का वजन भी कम होता है। अतः बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास कम होता है।

(4) वीनिंग (weaning) दूध छूड़ाने के पश्चात यदि बाल्को की पर्याप्त मात्रा में आहार नही मिलता है तो उनके मस्तिष्क के कोषों, उताको तथा तन्तुओं की गुणन क्रिया कम हो जाती है। अतः मानसिक विकास कम होता है। 1–5. वर्ष की अवस्था में बालकों का सर्वाधिक शारीरिक विकास होता है। 2–3 वर्ष की उम्र में सर्वाधिक मानसिक तन्तुओं हो जाते है।

(5) शारीरिक दोष (Physical Defects) :– बालको में शारीरिक प्रेस जैसे– कटे–फटे होठ एवं तालु (left palate) होने से बालकों का भोजन निगलने में परेशानी होती है। जिसके कारण कुपोषण हो जाता है।

हाल ही में किये अध्ययनों से ज्ञात होता है। कि बच्चो की सीखने की क्षमता तथा स्मरण शक्ति पर कुपोषण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

कुपोषण के कारण शरीर में कई गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती है। कुछ गड़बड़ियां ऐसी होती है, जो ऊपरी सतह पर दिखाई देती है। जैसेः– आँख, नाक, कान, त्वचा, हाथ, पैर, चेहरा, बाल आदि। परन्तु कुछ गड़बड़ियाँ आन्तरिक अंगों में होती है, जिसे महसूस किया जाता है। जिसके कारण सामान्य दिनचर्या में गड़बड़ी, उत्पन्न हो जाती है। बच्चो का शारीरिक एवं मानसिक विकास उन अवस्थाओं मैं भी अवरुद्ध हो जाता है। जब उसमें न्यायचाय– त्यन, दोष, हारमोन सम्बन्धी अवस्था तथा आन्तरिक अंगों में दोष, उत्पन्न हो जाते है। कुपोषित व्यक्ति न ही ठीक सहा हो सकता है न बैठ सकता और न ही चल सकता है। उनकी शारीरिक संस्थिति हमेशा ही दोषपूर्ण होती है। उसकी छाती भीतर की ओर धंसी हुई तथा पेट बाहर की ओर उभरा हुआ दिखाई देती है। कंधे झुके हुए होते हैं। सिर का ललाट वाला भाग अधिक उभरा हुआ दिखाई देता है।

पोषण की कमी और बीमारियों के सबसे प्रमुख कारण अशिक्षा और गरीबी के चलते भारतीयों के भोजन में आवश्यक पोषक तत्वों की कभी ही जाती है। जिसके कारण कई प्रकार के रोग, तथा बच्चों की मृत्यु तक ही जाती है। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता श्री पाल कुषण का कारण है। सरकारी आंकड़ो मुशबिक भारत में लगभग 1700 मरीजों पर एक डॉक्टर उपलब्ध हो पाता है। जबकि वैश्विक स्तर पर 1700 मरीजों पर 15 डॉक्टर होते है। कुपोषण का बड़ा कारण लैंगिक असमानता भी है। भारतीय महिला के निम्न सामाजिक सर कारण उसके भोजन की मात्रा और गुणवत्ता में पुरुष के भोजन की अपेक्षा नहीं अधिक अंतर होता है। लड़कियों का कम उम्र में विवाह होना और अल्पायु में अपरिपक्व बच्चे का जन्म भी कुपोषण को बढ़ावा देता है। स्वच्छ पेयजल की अनुपलब्धता तथा गंदगी भी कुपोषण का एक बड़ा कारण है।

एक युवा कार्यशील जनसंख्या वाले देश में कुपोषण जैसी समस्या आर्थिक महाशक्ति बनने के प्रयासों में बाधक है। वर्ष 2015 की ग्लोबल हंगर इंडेक्स में भारत भूख से प्रभावित 20 सबसे बड़े देशों में एक था। दक्षिण एशियाई देशों में ही यह कंवल अफगानिस्तान और पाकिस्तान ये ही पीछे था। कुपोषण के कारण जी०डी०पी0 के 64 प्रतिशत हानि की वजह से भारत इंडोनेशिया और फिलिपिंस जैसे देशों से बहुत पीछे है। जहाँ जी0डी0पी0 क्रमशः 23 प्रतिशत और 15 प्रतिशत ही कुपोषण की भेंट चढ़ता है। तीव्र आर्थिक संवृद्धि के बावजूद भाग में कई दशकों से कुपोषण एक प्रमुख सामाजिक आर्थिक चुनौती के रूप में विद्यमान है। 2012 में विश्व बैंक द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार स्वच्छता की कमी तथा कुपोषण के कारण होने वाले रोगों की वजह से भारत को हर साल तकरीबन 53.8 अरब डालर का नुकसान होता है। बीते कुछ वर्षो में भारत में कुपोषण को लेकर नए सिरे से चर्चा कुछ शुरू हुई हो अक्टूबर 2019 में जारी वैश्विक भुखमरी सूचकांक में भारत 117 देशों में से 102 के स्थान पर रहा जबकि 2018 में भारत 103 वे स्थान पर था। देश में कुपोषण की समस्या का मुद्दा हाल ही में वित मंत्री का बजट भाषण में भी देखने को मिली थी। वर्ष 2017 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 में जारी की गई थी, जिसमे नागरिकों की उत्पादकता पर कुपोषण के नकारात्मक प्रभाव और देश में मृत्यु दर मे योगदान पर प्रकाश डाला गया था।

विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन में कुपोषण के विभिन्न स्तरों पर भारत का प्रदर्शन असंतोषजनक रहा है। यूनिसेक (UNICEF) के अनुसार वर्ष 2017 में सबसे कम वजन वाले बच्चों की संख्या वाले देशों में भारत 109 स्थान पर था। इसके अलावा वर्ष 2019 में द लैसेट नामक पत्रिका द्वारा जारी रिपोर्ट में यह बात सामने आई थी। भारत में पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की 1.04 मिलियन मौतों में से दो–तिहाई की मृत्यु का कारण कुपोषण है। देश में फैले कुपोषण को लेकर उपयुक्त आंकडे काफी चिन्ताजनक हैं। अपनी हालिया रिपोर्ट में विश्व बैंक ने कहा था कि वर्ष 1990 से वर्ष 2019 के बीच भारत गरीबी से लड़ने के लिये अतुलनीय कार्य किया है। इससे देश में गरीबी दर में काफी गिरावट दर्ज की गई है। किन्तु कुपोषण और भूख की समस्या आज भी देश में बरकरार है। हाल ही में

जारी द स्टेट ऑफ द वर्ल्डस चिल्ड्रेन 2019 रिपोर्ट के अनुसार विश्व में 6 वर्ष तक की उम्र में प्रत्येक 3 बच्चों में से एक बच्चा कुपोषण अथवा अल्प वजन की समस्या से ग्रस्त है। पूरे विश्व में लगभग 200 मिलियन तथा भारत में प्रत्येक द्वारा बच्चा कुपोषण से किसी न किसी रूप से ग्रस्त हैं। वर्ष 2018 में भारत में कुपोषण के कारण 6 वर्ष से कम उम्र लगभग 8.8 लाख बच्चों की मृत्यु हुई थी। ऑकडे ये भी बताते हैं कि भारत में 6 से 23 महीने के कुल बच्चों में से मात्र 9.6 प्रतिशत को ही न्यूनतम कुल बच्चा स्वीकार्य आहार प्राप्त हो पाता है।

अर्थशास्त्र में नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्यंयन का कहना है कि देश में कुपोषण और भूख पीडित बच्चों की स्थिति काफी खतरनाक है और इससे निपटने के लिए जल्द से जल्द विकल्प खोजा जाना चाहिए। भारत में बच्चों का न तो सही ढंग से इलाज हो पाता है और न ही उन्हें टीकाकरण का ही लाभ मिल पाता है। ऐसी स्थिति में समान्या और जटिल हो जाती है।

भारत सरकार द्वारा इस समस्या से निपटने के लिए 1993 में राष्ट्रीय पोषण नीति बनाई गई यह संस्था पोषण के स्तर की निगरानी करती है। मिड–डे–मिल कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 1995 में केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित की गई। वर्ष 2004 में इसके कार्यक्रम में व्यापक परिवर्तन करते हुए मेनू आधारित पका हुआ गर्म भोजन देने की व्यवस्था प्रारम्भ की गई। महिला और बाल विकास मंत्रालय ने वर्ष 2019 में भारतीय पोषण की कृषि कोष की स्थापना कुपोषण की करने के लिए ढाँचा विकसित करने विविध फसलों के उत्पादन पर जोर दिया। वर्ष 2017 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने देश भर में कुपोषण की समस्या की संबोधित करने के लिये पोषण अभियान की शुरुआत की थी। इसका उद्देश्य देश भर में बच्चों, किशोरियों और महिलाओं में कुपोषण तथा एनिपिया की चरणबद्ध तरीके से कम करना है।

भारत को अधिकांश गरीब जनता की प्रतिदिन सुबह–शाम भरपेट दाल रोटी भी नसीब नहीं होती है। अतः वे प्रोटीन कैलोरी कुपोषण से भयंकर रूप से पीडित होते हैं। कुछ गरीब परिवार के बालको को भरपेट भोजन भी नही मिलता है। परिणामतः उनके शरीर में ऊर्जा उत्पादन भोज्य तत्वों की भी कमी होती है तथा वे निर्बल, कमजोर, निशक्त एवं थके थके दिखाई देते है। गर्भवती तथा धात्री माता की दशा भी कम दयनीय नहीं है।

भारत में 70–80 प्रतिशत में 1–5 वर्ष तक के बालक तथा गर्भवती माताएं रक्त अल्पता रोग से ग्रस्त होती है। (Under nutrition is the result of deficiency of one or of the essential nutrients in the diet). इसमें कोई सन्देह नही है कि भोजन में पोषक तत्वों की कमी सबसे प्रमुख कारण हो किंतु समाज के एक बड़े हिस्से में इस संबंध में जागरूकता की कमी स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। आवश्यकता है कि कुपोषण संबन्धीत समस्याओं का जल्ह से जल्द आवश्यक कदम उठाएं जाएं ताकि देश के आर्थिक विकास में कुपोषण के कारण उत्पन्न होने वाले बीमारियों को समाप्त किया जा सके।

भारत में कुपोषण की समस्या के समाधान हेतु सरकार के विभिन्न प्रयासों के बावजूद यह देश में एक गम्भीर समस्या के रूप में विद्यमान है। आज के समय में कुपोषण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिये चिंता का विषय बन गया है। सामान्य रूप में कुपोषण को चिकित्सीय मामला माना जाता है और हममें से अधिकतर सोचते है कि चिकित्सा का विषय है। वास्तव में यह कुपोषण बहुत सारे सामाजिक–राजनैतिक कारकों का परिणाम है। जब भूख और गरीबी राजनीतिक एजेण्डा की प्राथमिकता नही होती है बड़ी तादाद में कुपोषण सतह पर उभरता है। भारत का उदाहरण ले जहां कुपोषण उससे अधिक गरीब और कम विकसित पड़ोसियों जैसे बंग्लादेश और नेपाल से भी अधिक है।

विभिन्न विभागों की जिम्मेदारियाँ:

(1) सभी बच्चों का पूर्ण टीकाकरण सुनिचित करना ।

(2) डायरिया और निमोनिया के लिए दवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना।

(3) किशोरियों और माताओं के लिए आयरन की गोलियां एवम् बच्चों के लिए विटामिन की कमी और पेट के कीड़े मारने की दवा की उपलब्धता सुनिश्चित कराना।

(4) अति कुपोषित बच्चों का उपचार सुनिश्चित कराना।

(5) अगला बच्चा न चाहने वाले या अगला बच्चा देरी चाहने वाले सभी दम्पतियों परिवार नियोजन की सेवाएं उपलब्ध कराना।

(6) बच्चों को, खासतौर पर 6 माह से तीन बार तक के बच्चों को पोषण युक्त पूरक आहार उपलब्ध कराना समय–समय पर बच्चों की पोषण स्थिति की निगरानी करना।

केवल कुपोषित बच्चे की पहचान कर इलाज करके कुपोषण को घटाना ठीक वैसी ही है जैसे पानी का स्त्रोत बन्द किए बिना, फर्श को सुखा रखने के लिए बार–बार पोछा लगाना। इसके लिए पानी के स्रोत को बंद करना ज्यादा बुद्धिमानी पूर्ण कार्य होगा। बच्चों को कुपोषित होने से रोकना यह कम प्रयास में अच्छा परिणाम देगा। केवल कुपोषित बच्चे की पहचान और उपचार करना कुपोषण दर को कम नहीं कर सकता है। कुपोषित बच्चों की संख्या कम करने का केवल यही उपाए है कि किसी भी बच्चों को कुपोषित होने ही न दिया जाए।

संदर्भ सूची :

(1) बाल कुपोषण मुक्त बिहार – पेज नः 6,7, 20,21

(2) आहार विज्ञान एवं पोषण – ले० – डॉ0 वृद्धा सिंह, पेज नं. 498,485, 486, 499,

(3) बाल विकास : – ले. – डॉ० प्रीति वर्मा, पेज नं. 146, 138

(4) पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा की सामुदायिक कार्यनीतियां, पेज नं. 25, 26, 28 35

(5) जन स्वास्थ्य और स्वच्छता, पेज नं. 5,15, 27

(6) इन्टर गृह विज्ञान, ले० डॉ0 वर्मा एवं पाण्डेय, पेज नं. 108, 109

(7) दैनिक जागरण (सेहत) – 11 जनवरी 2019, पेज नः 8,9

(8) इन्टरनेट (गूगल)

बच्चों को बीमारियों से बचाने का सबसे सरल माध्यम है "टीकाकरण"

पूर्णिमा कुमारी
शोधार्थी
गृह विज्ञान विभाग
मंगल विश्व विद्यालय बोधताया, गया
एवं
डॉ0 सत्य रतन प्रसाद सिंह
मनोविज्ञान विभाग
मगध विश्वविद्यालय बोध गया, गया

बच्चे राष्ट्र के धरोहर होते हैं। राष्ट्र का विकास स्वास्थ्य बच्चो द्वारा ही संभव है। अतः बच्चों को स्वास्थ्य रखने के लिए उनकी उचित देखभाल होनी चाहिए। इस क्रम में उन्हें संतुलित पोषण के साथ–साथ सही आयु एवं सही समय पर टीके लगाना अति आवश्यक है।

जब भी हम किसी शिशु का मुस्कुराते हुए या अठखेलिया करते हुए देखते है। ती बरबात ही हमारे लबों पर भी मुस्कान आ ही जाती है, अपनी ही धुन में मस्त थे बच्चे कल देश की बागडोर संभालने वाले जिम्मेदार नागरिक बनेगे और देश का उज्जवल तथा विकासशील भविष्य देने में मददगार साबित होगे ।

प्रत्येक वर्ष लगभग एक करोड़ से अधिक पाँच वर्ष कसे कम आयु के बच्चों की मृत्यु हो जाती है। इनमें से अधिकांश मोते टी. बी. खासरा, डिपलीरिया, टायफायड हेपेटाइऐस, अतिसार जैसे रोगी के कारण होती है। इनमें से सभी रोग घातक नही हो पोलियो जैसे रोगों का प्रभाव विकलांग बना देने वाला होता है। बाट अवस्था में समय पर टीकाकरण कारक इन रोगों की रोक–नाम की जा सकती है। इससे बच्ची में गंग प्रतिरोधक क्षमता विकसित रहती है। तथा उन्हें रोगों के दुष्प्रभावो से बनाया जा सकता है। ये टी उपनार पुरक होने की अपेक्षा प्रतिरोधात्मक होते है, क्योकी रोग के आक्रमण से पहले ही कारगर होते है। अतः इन टीका ला ठीक समय और ठीक मात्रा में ही दिया जाना चाहिए।

टीकाकरण बच्चों का सबसे बड़ा सुरक्षा कवच हाता अगर सही समय पर बच्चों की सभी टीक दिए जाएँ उन्हें कई बिमारियों से जागरुकता का बचाया जा सकता है। लेकिन, अभाव में कुछ अभिभावक अपने बच्चा टीकाकरण नही करते है। देश के भविष्य बच्चों का सबसे बड़ा सुरक्षा स्वंय टीकारण हो।

इससे बच्चे विभिन्न बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं जबकि कई बीमारियों से बच्चों की बनाया जा सकता है।

'टीके कैसे करते हैं। बचाव 12 – टीका रोगाणु के विशिवह रोगों का पहनानन वाले एंटी बीड़ी बनाकर रोज बहने ला अभ्यास कराते है। यह एक तरह का सुरक्षा कवच है। जी विभिन्न बीमारियों से शरीर की रक्षा करते हैं। अधिकांशतया लोग किसी रोग के प्रारंभिक लक्षण पहचान नही पाते और परिणामस्वरूप रोगी की देखभाल और ईलाज सही नहीं हो पाए। इसमें अन्य लोगों तक रोग फैलाने का खतरा बढ़ जाता है। अतः रोग के लक्षन से काल (Incubation a period) राज और रोग के पश्चात देखभाल का ज्ञान होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

(1) कारण टीकाकरण के महत्व को समझने में।

(2) रोग विरोधी क्षमता और संबंधित शब्दावली की परिभाषा देने में।

(3) विभिन्न प्रकार की रोग विरोधी क्षमताओं की व्याख्या काटने सामान्य बाल्यकाल के रोगों की उनका बघना और संप्रतित काल सहित सूची बनाने हैं।

(4) बीमारियों की रोमयाग और रोगी की देखभाल के सुझाव देने में।

(5) जन्म से तीन वर्ष के कार्य के लिए टीकाकरण कार्य तैयार करने में।

इस विषय की स्पष्ट रूप से समझने में कुछ शब्द से परिचित होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संक्रमण– शमा आर्च है। शरीर मे तिन्ही गंगापुआ न प्रवेश, रोगी के शरीर में प्रि भारत में सक्षम है। वह प्रकार का संक्रमण पर सिर रोग संक्रम रोग कहलाते है।

संक्रामक रोग– जो रोग किन्ही विशेष पहिरितिया क व्यक्ति कि दुसरे व्यक्ति उन फैलाई है। उन्हें संक्रामक का रोग कहते है।

रोग वाहक– रोगवाहक व्यक्ति बाल रूप मे स्वस्थ्य व्यक्ति होता है। परन्तु बिना रोग के लक्षणों के वह अपने शरीर में किसी विशेष संक्रमण रोग के रोगाणु लिए होता है। व अन्य स्वस्थ्य व्यक्ति का संक्रमित करने में भी सक्षम होता है।

संपादित काल 1– जब कोई व्यक्ति संक्रमित होता है। तब रोगरानू उसके शरीर में छिपे रहते है और उस शक्ति व्यक्ति में कुछ समय तक रोग के लक्षण प्रकट नही होते। संक्रमित होने के कारण और रोग के वास्तविक लक्षण प्रकट होने के बीच का समय संप्राप्ति काल (Incubation Period) कहलाता है, उदाहरण के लिए खसरे का संप्राप्ति काल 7 से 10 दिन तक है।

टीकाकरण किसी व्यक्ति में रोग विरोधी क्षमता विकसित करने की प्रक्रिया है। जिसमें शरीर की कोशिकाओं का उनजित करने या इसके बिना रोगी के शरीर में रोगाणुओं को प्रवेश करान गाई लड़ने की क्षमता को उत्पन्न करवाया जाता है। रोग ध क्षमता किसी योग के प्रति शरीर में प्रतिरोधक क्षमता की रोग विष (Immunity) कहते है। रोग विरोधी क्षमता दो प्रकार की होती है।

(1) प्राकृतिक रोग विरोधी क्षमता (Makarad Immunity)

यह शरीर का प्राकृतिक प्रतिरोध होता है। जी. या में जन्म से ही शरीर में होता है। या अभिवृद्धि के दौरान शरीर में इतना निर्माण होत हैहै। उदाहरण के लिए यदि एक रोगाणु कई व्यक्रिया के समूह पर आक्रमण करता है। तो उनमें से जो रोजग्रसित नहीं होते, उनमें रोग के प्रति प्राकृतिक रोग विरोधी क्षमता होती है

(2) अवात रोग विरोधी क्षमता (Acquit Ac suited Immunity)

किसी बाल उद्दीपन की सहायता से शरीर द्वारा प्राप्त रोग विरोबज क्षमता की आवात्त रोग विरोधी क्षमता कहते है। से अर्जित की जा सकती है। यह क्षमता निम्न तरह से अर्जित की जा सकती है।

(1) यदि कोई व्यक्ति पहली बार किसी रोग से ग्राप्त हुआ हो, तो दूसरे आक्रमण होने पर वह व्यक्ति उस रोग के प्रति अपसंधा विकसित कर लेता है। उदाहरण के लिए चिकनपोक्रम या धारी माता होने पर यदि कोई व्यक्ति एक बार संक्रमित हो चुका हो से वह इस रोग के लिए अवरोधन अर्तित कर लेता है। और उस दुधारा विकलसंक्रम रोग के आक्रमण का प्रभाव का पड़ता है।

(2) कई बार कम अवधि के लिए किसी व्यक्ति में रोगी विरोधी क्षमता एंटीबॉडिज वाले सीरम कई प्रवेश कर विकसित की गयी है। उदाहरण के लिए हेपेटाइटिस का, टीका द्य यदि 0.1, और 6 माह के अंतराल पर दिया जाए ही उससे 5 वर्ष के लिए रोग विरोधी, क्षमता प्राप्त हो जाती है। किन्तु कुछ टीके जीवन मर के लिए रोग विरोधी क्षमता प्राप्त हो जाती है। किन्तु कुछ प्रदान कराते है। उदाहरण के लिए बी०सी०जी० का टीका जीवन भर के लिए ती० बी० रोग के लिए प्रतिरक्षा प्रदान करता है।

(3) बच्च, में माता के दूध से बी रात्र विरोधी क्षमता होती है। बच्चे की जन्म के समय एक पहला पीले रंग का पदार्थ माँ के स्तन से निकालता है। जिम कॉलस्ट्रम कहते है। इसमें एंटीबाडित होते है। जो बच्चों की रोगों से बनाते हैं।

रोग विरोधी क्षमता के प्रकार

प्राकृतिक प्रतिरोध उपार्जित प्रतिरोध

जनम से स्तनपान से रोग का पहले आक्रमण टीकाकरण

टीकाकारण की आवश्यकताः– टीकाकरण पटच के स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। क्योंकी की बाहयवान्या में होने वाले गंगा और अन्य संक्रामण रोगी व यह बच्चे बचाता है। कुछ बाल्यकाल के रोग बढ्चे में लायी विकलांगता का जन्म देते और कुछ से बच्चों की मृत्यु तक हो जाती है। किन्तु टीकाकरण बच्चों की रोत्रा से लडन की क्षमता प्रदान क्या है। और उन्हें उस रोग के हानिकारक प्रभावों से बनाता है यदि अधिक से अधिक लाग को किसी विशेष रोग का टीका लगा दिए जाए तो उनमें उस रोग के उपलब्ध, रोगाओं 'का संग्रह कम होगा। विकसित देशा में पोतिया को वृहद टीकाकरण अभियान के कारण जा से मिटा दिया गया है। हमारे देश में श्री इसी प्रकार का प्रयास नियमित अंतराल पर पोलियो उन्मूलन शिविर लगा कर किया जा रहा है।

Immunisation	time table
Birth	BC-G oral Pollo vaccine &1 dose
Hepaititis	B vaccine &1 dose
6 weeks	DPT &1st dose
Oral Pollo	vaccine 2nd dose
Hepaitits B	vaccine 2nd dose
10 weeks	DPT& 3 dose
Oral Pollo	vaccine & 2nd dose
14 weeks	DPT& 3rd dose
Oral Pollo	vaccine & 4th dose
6&9 Months	Oral Pollo vaccine & 5th dose
Hepaitits B	vaccine & 3rd dose
9 month	Measles vaccine
15&18 month	MMR [Measles] Mumps] Rubella
DPT &1st booster dose	
Oral Pollo vaccine &6 dose	
5 years	DPT 2nd booter dose
Oral Pollo	vaccine &7 dose
10 years	TT [Tetanus] & 3rd booster dose
Hepaitits B	vaccine & booster dose
15&16 years	TT [tetanus] 4th booster dose
B-c-t-	वैसिलम केहमेट ज्वैटिन (टी.बी के लिए)
D-P-T	डिम्बीटिया परट्यूसिस (काली सांगी) टेटनस
M-M- R-	खरारा, मंपस, स्वौला (जर्मन मीतल)
H-I-B	एच इनलुएंजा टाइप बी

(1.) यदि हेपटाइटिस किसी का टीका पहले नहीं दिया आयु में प्रारम्भ किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए 0–1–6 के चक्र का अनुसरण किया जाना चाहिए। (प्रत्येक वर्ष के बाद 3 खुराकों के चक्र को दोहराये जाने की जरूरत है।

(2) हेपेटाइटिस का होला 01/12, 12 माह के अन्तराल पर भी दिया जा सकता है। जो 8 साल की रोग प्रतिरोधक क्षमा प्रदान का है। शिष्ठ में राग निरोधक क्षमता का अभाव रहता है। माँ के गर्भ आने ल 'के बाद से बहुत बड़े संसार में स्वान बनाना पड़ता है। बाहर जी रोगजनक जीवाणुओं से भरपूर रहता है। संक्रामक रोग क जीवाणु अति शीघ्र वर्ष संक्रमित कर सकते है। आस–पास में घर पर, मुहल्ले में प्राप्त, बीयारियां होती रहती है। शिशु की इन सब का एकाएक सामना करना पड़ता है। और साथ ही साथ उसकी रक्त शक्त अभी बहुत कम ही रहती है रोमन जीवाणुओं के संक्रमण से शिशु की असमय मृत्यु हो जा सकती है। चिकितता जीवाणुस कमन से लियु की विज्ञान ने बच्चों की हांगा से बचाने में कृतिम विधि से राज प्रतिक्षमता बढ़ाने की व्यवस्था की है, रोग प्रतिरोधक टीका और सूई देकर की जाती है। चैनक ला टीका जन्म के कुछ सप्ताह बाद ही लगा देना चाहिए। 2–4 महीने के भीतर ही पहली बार टीका (Priaminy Vaccination) दिलाना चाहिए। टीका जाड़े में या वंसत में दिलवाना चाहिए। पहला टीका बहुत फुलता है शिशु की कुछ दिनों तक बड़ा कष्ट होता है। माँ को भी बडी परेशानी होती हो परन्तु बड़े होने पर दिलवाने से कष्ट और भी बढ़ जाता है। टीका लगवान से पहले डॉक्टर की राय पूछ लेनी चाहिए 1 पूर्ण रूप से स्वास्थ्य रहने पर ही प्रथम बार टीका लगवाना चाहिए।

पहले टाका से कभी–कभी इपर भी आता है परन्तु इस सप्ताह ही टीका, दबने लगता है, और कष्ट, श्री कम ह जाता है। की मकरवी आदि से बचाना चाहिए। टोक में खुजलाहट बहुत होती है। अतः बच्चे के हाथों को साल कपड़े से लपेट देना, चाहिए। सोते समय बच्चे पर ध्यान रखना चाहिए जिससे टीक पर रगड़ न लग जाए। इस प्रकार पूर्ण रूप से सुख्खा तब तत्क करनी चाहिए जब क वह पूरी तरह से सुछ न जाए। जब हालों का बांधा न जा सके। सब टी पर स्वच्छ महीन कपरा हहले से बांज देना चाहिए। प्रथम साल्ट टीले के बाद दुबारा टीका, निश्चित अवधि के बाद लगाया जाना चाहिए। प्रथम वैक्सीनेशन तीन वर्ष पर दिया जाना चाहिए। परत महामारी (epidemic) की हालत में प्रत्येक वर्ष टीका लगवान से चैवन के प्रतिरोधक प्रतिक्षिमा अनुबाधित (Loosteofuf) होती है। बच्चों में रोग प्रतिकारक शक्ती उत्पन्न करने के लिए यह प्रबंध अत्यंत लाभकारी होता है। यह बरने की का उत्तम व प्रबंध है। इसके अलावा अधिकांश बाल्यकाल ले रोग या हो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क द्वारा फैलते है, 'लक्षणों की पहचान कामी कठिन कार्य है। प्रत्येन रोग की रोग विकाम अवधि और आपके लक्षण रोग का पहचानने में सुरक्षात्मक उपाय करने में और समुचित देखभाल करने में सहायता करते हैं।

बच्चों की डॉक्टरी जॉन लहराते रहना चाहए। समय समय पर उनका वजन लेते रहना चाहिए। आवश्यकतानुसार हामिक तथा विता मिन आदि है। रहना चाहिए। बच्चों के रोगी व्यक्त से दूर रखना चाहिए। उन्हें निश्चित मात्रा में आराम और निद्रा मिल सके। इसकी लिए उन्हें टीक, हवा, इंजेक्शन, वैक्सीनेशन आदि दिल्याांत रहना चाहिए। जन्म के तुरंत बाद, प्राइमरी वैक्सीनेशन, विपित एन्टीजन और पलिया ड्राटस देनी चाहिए। इन सभी के विषय में विशेष रूप से संचीत रहने से तथा इनका प्रबंध करते रहने से रोगों से बहनों बच्चों की रक्षा की जा सकती है। फिर भी कभी संक्रमण जाए में तुरन्तु ही चिकित्सक को दिखाना चाहिए और उनके आदेशानुसार काम करना चाहिए। मामूली सी अज्ञानता असावधानी कभी–कभी भयंकर रूप धारण कर लेती है। शरीर का रक्त शुद्ध और शक्तिशाली होने से ये रोग बढ़ नहीं पाते है। इनके उपचार के लिए डोक्टर द्वारा निर्धारित दवाएं देनी चाहिए।

एक बार में दिए जा सकते हो टीकेः– बच्चों के एक बार में कई टीके दिए जा सकते हैं। इससे शरीर की किसी प्रकार का नुकसान नही होता है। बल्कि पूरे शरीर में एक सुरक्षा कवच विकसित हो जाता है। सभी आवश्यक टिके लगने के बाद बच्चे को शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास हो जाता है।

डॉक्टरों का कहना है कि सामान्यतः स्वस्थ्य बच्चे को ही टीका देना चाहिए। इससे बीमारी होने की संभावना कम रहती है। टीकाकरण बच्चे की हमेशा स्वस्थ्य रखता है। टीका बीमारियों से बनाने का सबसे सरल माध्यम है। एक बार अगर बच्चे बीमार हो जाते है। तो उसे ठीक करने में काफी पैसे खर्च

होते हैं। आन में परेशानी बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि बीमारी बच्चे को होने वाली परेशानी पूरे परिवार पर असर डालती है। पूरा परिवार जब तक बच्चा ठीक नही हो जाता, परेशान रहता है।

विशेषज्ञ बताते है कि टीकाकारण के बाद बच्चों की बुखार आना, लाती आना, या सूजन होना सामान्य बात है। टीकाकरण का बच्चे के शरीर पर कोई बातक परिणाम नही देखा जाता है। कई जाँच रिपोर्ट से स्पष्ट हो गया हो कि टीकारण से न तो बच्चों को तबीयत खराबा होती है। न ही मौते होती है। कई बार बच्चा बीमार होता है। और उस समय टीका देव से बच्चा अपनी बीमारी के कारण मृत्यु हो जाती है। और टीका के नाम पर आरोप लगा दिया जाता है।

जानकार बताते है की अगर बच्चे का सही तरीके है टीकाकार कराया जाए तो 90 से 95 प्रतिशत बीमारियों पर पर काबू पाया जा सकता है।

सन्दर्भ :

(1) मतादर्श अगस्त 2009, पृष्ठ संख्या 74

(2) प्रायोगिक गृह–विज्ञान पृ० सं– 10, 11

(3) दैनिक जागरण (सेहत) 12 जुलाई, 2018 पृ.सं. 16

(4) कुस्तुति – अक्टूबर 2008 पृ० सं. 45, 46, 47

(5) गृह विज्ञान (लेखिका अंजु चोहान) पृ० सं. 45 46 47

(6) विज्ञान मानव विकास। वर्मा एवं पाण्डेय पृ.सं. 75 76, 77, 78

(7) Tripathaga Research Journal 2018 P-No– 98,99

(8) इन्टरनेट (गूगल)